जल झुका हिरन

शांति सुमन

जल झुका हिरण

डॉ० शांति सुमन

स्मृति प्रकाशन
१२४, शहरारबाग, इलाहाबाद–२११००३

© लेखिका

स्मृति प्रकाशन
१२४, शहरारावाग
इलाहाबाद

●

प्रथम संस्करण
१९७६ ई०

●

मूल्य : दस रुपये मात्र

●

आवरण
शिव गोविन्द पाण्डे

●

मुद्रक
एकेडमी प्रेस
दारागंज, इलाहाबाद

कुछ अपने

संस्कृत में रचनाकार मात्र कवि कहा जाता था। उनके लिए गद्य की अनिवार्यता नहीं थी। संभवतः आज की तरह वहाँ जीवन की विभाजक रेखायें भी नहीं थीं, इसीलिए कविता में सब कुछ कह देना आसान था। आज की प्रचलित कविता-सीमा में अपना बहुत-कुछ ऐसा है जो अनभिव्यक्त रह जाता है। अस्तु, उस बहुत-कुछ में से थोड़े-बहुत को अभिव्यक्त करने की दिशा में यह लघु उपन्यास ही सशक्त माध्यम हो सकता है।

बंगला के अमर कथा-शिल्पी शरत बाबू से जब लघु कहानियों की माँग की गई तो उन्होंने सविनय उत्तर दिया, मैं प्रारम्भ करता हूँ तो कोई चरित्र जो मेरे ही प्राणों से निर्माण प्राप्त करता हुआ भी मेरे वश के बाहर हो जाता है और अपना मनोवांछित विस्तार माँग लेता है। फलतः वह उपन्यास की शक्ल ले लेता है।

रवीन्द्र ने महाकाव्य रचना के सन्दर्भ में भी यही उत्तर दिया था कि मैंने अनेक बार महाकाव्य रचने की चेष्टा की, लेकिन हर बार वह माँ भारती के नूपुरों से टकराकर नन्हें-नन्हें गीतों में बदल गया।

मैं रवीन्द्र या शरत् की सीमा को अपनी सीमा नहीं मानती और न मेरे पास उनके अनुरूप कोई आनुभूतिक या रचनात्मक बाध्यता ही है। पर आधुनिक कथा-साहित्य में कहानी, लम्बी कहानियाँ और लघु उपन्यासों की जो विभाजक रेखायें खींची गई हैं, उनके मध्य प्रस्तुत कृति मेरी अनकही अकुलाहट की ही कथा है। जो मैं कविता में नहीं कह

सकी या जिनको कविता में कहा नहीं गया क्योंकि उनका कहना सम्भव नहीं हुआ, उन्हीं अप्रस्तुतों को मैंने इस कृति में प्रस्तुतता देने की चेष्टा की है। वे अनेक पात्र जो अपना आकार मुझसे माँग रहे थे, मैंने उनमें से कुछ को संदर्भित करने की कोशिश की है।

'जल झुका हिरण' लघु उपन्यास ही हो सकता है। अंग्रेजी में छोटे उपन्यासों को नॉवलेट कहा गया है। देशकाल का विस्तार से चित्रण इसमें सम्भव नहीं होता। उसकी शैली में आत्माभिव्यंजना अधिक होती है। लघु उपन्यास में कथा के किसी न किसी पात्र के साथ उपन्यासकार अधिक सहानुभूति के साथ जुड़ जाता है। फलतः संवेदनात्मक तीव्रता और भावात्मकता में मुखरता आ जाती है। अपेक्षाकृत छोटे फलक पर लिखे जाने के कारण प्रस्तुत जपन्यास भी जीवन का खंड चित्र ही उपस्थित कर सकता है। विचरण की संकुलता इसमें नहीं मिले तो आश्चर्य ही क्या है ?

वैसे लघु उपन्यास में लेखक की आत्माभिव्यक्ति अधिक होती है, पर इस कृति में अतिरिक्त वैयक्तिकता से बचा गया है। यह भी कहा गया है कि 'लघु उपन्यास किसी व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूति से प्रेरणा पाकर रचा जाता है, जैसा कि गेटे ने लोट ब्रफ के गम्भीर प्रेम की स्मृति से प्रेरित होकर 'सॉरोज ऑफ वर्कर' नामक लघु उपन्यास की रचना की थी। उन्होंने स्वीकार भी किया कि उनकी व्यक्तिगत अनुभूतियों ने उसे जन्म दिया। इसी क्रम में बेंजामिन कांस्टैण्ड को 'एडाल्फ' नामक लघु उपन्यास लिखने में अपने एक अन्तरंत मित्र से प्रेरणा मिली थी। जो भी हो मेरी इस कृति में आत्म-परिचय देने की कामना से कुछ भी नहीं कहा गया। मैं इसमें कहीं नहीं हूँ। सिर्फ मेरा 'रचनाकार' है।

आज लघु ऊपन्यासों का चलन बहुत अधिक है। उसकी लोकप्रियता उसकी समीचीनता को रेखांकित करती है। यह भी सीमांकन

नहीं किया जा सकता कि जो लघु-उपन्यास लिखता है, बड़ा उपन्यास नहीं लिख सकता। क्योंकि वैसी स्थिति में 'निर्मला' जैसे उपन्यास लिखने वाले प्रेमचंद से 'गोदान' जैसा महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखना सम्भव नहीं होता। अतएव बात इतनी ही है कि लघु उपन्यास में किसी एक प्रश्न या एक समस्या को विस्तार मिलता है। 'जल झुका हिरण' में सम्भवतः ऐसा ही हुआ है।

अन्त में इतना ही कहना चाहूँगी कि प्रस्तुत उपन्यास आपको जैसा भी लगे, वैसा कहने का अधिकार आपको है।

अपने संघर्ष के जिन दिनों में यह उपन्यास लिख रही थी, उनमें पुत्र मुकुल और पुत्री चेतना का अन्यतम सहयोग रहा था। कालेज से नित्य प्रति ऊबी मनःस्थिति लेकर लौटती थी, उधर रचनात्मक तनाव से मन बेचैन होता था। लिखने की स्थिति नहीं होती थी और लिखे बिना रहा नहीं जाता था। वैसे कठिन क्षणों में मैंने कष्ट को आत्मीयता दी और पक्ष-विपक्ष सबको अपना बना लिया। जीवन के प्रति आत्म-विश्वास तभी मुझमें जागा था। उन तमाम तनावों और प्रतिरोधों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरी रचनात्मक क्षमता को सम्पन्न किया।

अस्तु, शेष फिर।

हिन्दी विभाग,
एम० डी० डी० एम० कालेज,
मुजफ्फरपुर।
(बिहार)

शान्ति सुमन
वसंत पंचमी
५-२-७६

माँ

और

बाबू जी को

एक

अकेली जब कभी कमरे में होती है सुमि तो दावात का ढक्कन खोल कलम में स्याही भरती है। उसको लगता ही नहीं कि दबाने पर एक बार में ही स्याही पूरी तरह भर जाती है कलम में। वह बार-बार दबाकर स्याही भरती और निकालती रहती है। कई बार मुझको बड़ी खीझ होती है इससे और मैं कलम छीनकर परे फेंक देती हूँ। जाने क्यों सुमि का चेहरा मलिन हो जाता है और इतना पिघला हुआ कि अभी-अभी बर्फ की नदी तैरकर आई हो। इधर वह बोलती भी बहुत कम है। मैं अक्सर कहा करती हूँ कि 'देखो सुमि तुम्हारी जैसी खूबसूरत लड़की केवल दो मौके पर ही चुप रह सकती है—या तो वह किसी चक्कर में आ जाए या कोइ शॉक लगे। बताओ, इनमें से कहाँ हो तुम !' ऐसा पूछने पर सुमि कभी लजाती या संकोच नहीं करती—सीधे देखती रहती है। क्योंकि उसको मालूम है कि किन्हीं खास स्थितियों में चुप-चुप देखते रहने से अधिक धारदार भाषा नहीं हो सकती। मैं चकित हूँ कि सुमि इस तरह बिना पलक गिराये मुझमें क्या देख रही है। कहीं मेरे ब्लाउज के बटन तो खुले नहीं रह गए, पर मैं तो पीछे बटन वाला ब्लाउज पहनती हूँ। सो आगे से सुमि उसको क्या देखेगी ! मैं हल्के से मुस्कराकर उसको पकड़ती हूँ और कमरे में ले जाती हूँ।

'हें, क्या हुआ तुम्हें ?'

.....

देखना, बस, देखना। अचानक मेरी नजर टेबुल पर कुछ देखती हुई-सी रुकती है। हाय, कितनी खूबसूरत लिखावट है उस पत्र पर। लगता है, मोती झर गए हैं, अंजना उंगलियों से। मेरे मन में कोई और बात नहीं है—पर जाने क्यों लिखावट ने मेरे मन में जो ढेर सारे कमल खिला दिए—मैं हाथ से छूकर उसको देखना चाहती हूँ;—शायद लिखने

वाले हाथ की मुलायमियत का पता कुछ चल सके। सुमि अब भी स्थिर है—कोई हलचल नहीं। मुझे विश्वास नहीं होता--सुमि का यह कौन-सा चेहरा है। बरसात के दिन से जानें उस पर कौन से बादल घिरे हैं। अचानक सुमि उठती है। मुझको लगता है कि वह अब कुछ कहेगी—कहेगी नहीं तो कुछ पूछेगी ही। मैं उसके मन के ताप को छूना चाहती हूँ कि देखती हूँ, सुमि उसी लिखावट के दूसरे पत्र को मुझे पकड़ाकर कहती है—'बता न, मैं क्या करूँ ?'

जबसे दिल्ली से रचनाओं के साथ उसका चित्र भी प्रकाशित हुआ—जानें कितने पत्र आये—रंगीन चाहतों और सुखद कल्पनाओं से भीगे हुए। पर यह पत्र जो आया तो आता ही रहा। सुमि ने तय कर लिया था कि कोई एकान्त होता है, कोई निजता जिसको चुनने का हक हर व्यक्ति को होता है। निजता के उसी सुख के लिए लखनऊ से भेजे गये ये पत्र, ढेर सारे पत्र भरे पड़े हैं। सुमि उनका क्या करे। कभी तो पत्र में ढेरों सवाल होते हैं, ढेर-सी जिज्ञासाएँ और कभी सुझाव और अपनापन से भींगी जरूर मान लेने योग्य सलाह। सुमि अड़बड़ा गई है। कुछ भी तो नहीं कर पाती। कई दिनों से यह भी नहीं हुआ कि पत्र का जबाब ही ही लिख भेजे। परसों जैसे ही लिखने बैठी थी कि कूदता हुआ उसका बेटा आया था और यह कहते हुए कलम छीनकर भागा कि पहले नाश्ता दो—खेलने जाऊँगा। कल कलम ही तलाश रही थी कि बेटी ने आकर तंग किया 'माँ बाजार कब जाओगी।' और उसको कसकर गुस्सा आया था अपने पर, समूचे घर पर, उस माहौल पर जिसमें जीती है। कोई चीज कहीं रख दो तो झट से मिलती नहीं। और जब तब खोजो सौ आफतें इकट्ठा हो जाती हैं। आज उनके दफ्तर जाने तक भाग-दौड़ करती रही है और अब जाकर कहीं फुर्सत मिली है तो सूझता ही नहीं कि खत का जवाब क्या लिखें। कहाँ-कहाँ की बातें करता रहता है वह भी ! भला उसे कब सोचने की फुर्सत रहती सार्त्र या कामू को। कब वह समय दे पाती है अपने घर से बाहर के किसी काम पर ?

मैं पत्र पढ़ना शुरू करती हूँ —'सुमि, तुम्हारा नाम सुमि क्यों हुआ ? तुम्हारा नाम कुछ और भी तो हो सकता था जहाँ मेरा कोई आकर्षण पहुँच नहीं पाता।' लगता है कई पत्रों के अनुत्तरित रह जाने के बाद का पत्र है यह। तभी तो कई पंक्तियाँ आत्मदया में डूबी हुई हैं। मैं पढ़ती हूँ—'तुम्हें इन पत्रों की अपेक्षा है या नहीं···फिर भी लिख रहा हूँ, कि शायद मुझे ही लिखना था। तुमने 'सर्जना' भेजी थी—मैंने उसमें तुम्हारा वातावरण पाया। मुजफ्फरपुर मैं कभी आया नहीं हूँ—पहले सोच नहीं पाता था कि--'कैसा है !' अब मैं सोचता हूँ यह ऐसा शहर होगा जहाँ कोई ऐसे पुस्तक विक्रेता नहीं होंगे कि अत्याधुनिक यूरोपीय और इतर विदेशीय साहित्य को खरीदा जा सके—पढ़ा जा सके। शायद Encounter, Twentieth Century, Poetry आदि पत्रिकाएँ नहीं मिलती होंगी—और शायद कुछ पुरानी (आधुनिक ही) किताबें भी नहीं मिल पाती होंगी—यथा Kafka, Rilke, Lorca आदि। मैं सोचता था तुम पत्र लिखोगी तो पूछूँगा यही सब कि क्या-क्या मिलता है और कुछ उसी हिसाब से बातें की जाती—जो कुछ मैं जानता वह तुमसे कहता और तुझसे कुछ सुनता जिसे मैंने पढ़ा नहीं है—सुना नहीं है—देखा नहीं है।···इसी तरह मैं पूछना चाहता था 'कल्पना' के लिए। 'कृति' की पुरानी प्रतियाँ तुमने देखी ही होंगी—महसूस किया होगा कि कैसी पत्रिका थी, फिर बन्द हो जाने पर शायद दुखी भी हुई होगी। 'लहर' अब भी निकलती है—पर जितना अच्छा होना चाहिए हो नहीं पाती। पता नहीं 'कल्पना'—हैदराबाद तुम्हारे कार्यालय में आती है या नहीं !···घर (जौनपुर) में मेरी छोटी बहन है (मुझसे दो साल छोटी) कांति, (बी० ए० प्रथम वर्ष की छात्रा) उसने मुझसे कुछ पढ़ने को माँगा था और मुझे मात्र 'कल्पना' ही नजर आयी। सुमि, मैं तुमसे भी यह पूछना चाहता था।

'सर्जना' देखी। तुम्हारे एक और व्यक्तित्व से साक्षात्कार हुआ। समझ नहीं पाता कि कैसे तुम प्रकाशित-सम्पादित कर रही हो एक

मासिक साहित्यिकी को। उधर फाइनल परीक्षा और सृजन की समस्याएँ! तुममें तुम्हारी प्रतिभा! एक छटपटाती हुई आत्मा जो हर महान् रचनाकार के प्रारम्भिक जीवन में रहती है! बस एक ही चीज खटकती है—तुम्हारा वातावरण। आश्चर्य होता है—तुम जी कैसे रही हो! सुमि मुझे रोना आता है कि तुम हाथ-पाँव मार-मार कर, तड़प-तड़पकर अपने को लाख 'अक्लेमेटाइज़' करो पर फिर भी मर जाओगी। आश्चर्य होता है 'सर्जना' का प्रकाशन कैसे कर लेती हो। बुरा मत मानना, इसकी ज्यादातर रचनायें वाहियात हैं—खासकर कहानियाँ, नयी कविताएँ तथा दो-तीन लेख। फिर भी, तुम्हारा प्रयत्न सराहनीय है कि असाहित्यिक वातावरण में भी तुम एक पत्रिका प्रकाशित कर रही हो जो आज नहीं तो कल अवश्य ही एक रोशनी होगी।'

.....'(सुमि मुझे दुख है कि तुम्हारी ही प्रशंसा करनी पड़ रही है। क्या करूँ शेष मुझे अपार दुख दे रहा है।)'

मैं चौकती हूँ कि मेरी आँखें पढ़ती हैं—'इस पत्र के साथ मैं एक स्पेनिश कविता, अपने दो चित्र तथा क्षमा याचनाएँ भेज रहा हूँ।

मैं चित्र देखने लगती हूँ—और सुमि को झकझोर कर कहती हूँ कि 'हे'देख न तू भी, कैसा बाँका है! मैं इस तरह उसके रूप की प्रशंसा करने लग जाती हूँ जैसे उसने मेरे ही लिए चित्र भेजा है और उसके सारे तीखे नाक-नक्श मुझे ही सुख देने के लिए हैं।

पत्र तो कब का पढ़ चुकी होती मैं—किन्तु एक-एक वाक्य में डूबते-उतराते इतना वक्त हो गया है कि लगता है समय कहीं ठहरा हुआ है और मुझे कहीं आना-जाना नहीं सिर्फ पत्र ही पढ़ते रहना है—सुमि का पत्र और सुमि जितनी मगन नहीं, है उतनी मगन तो मैं हूँ; हो रही हूँ। शायद इसलिए कि उस बँधाव को मैं महसूस नहीं कर पा रही जो सुमि के लिए एक समस्या बन गई है।

उसने एक पत्रिका निकालने की योजना भी दी है, नाम भी, मूल्य और वार्षिक चन्दा भी। उसने एक प्रकाशन संस्थान को जन्म देने की बात

भी की है जो प्रतिवर्ष कम से कम दस पुस्तकें प्रकाशित कर सके जो साहित्य की आधुनिक प्रकृतियों का स्वस्थ निर्वाह करती हो।

मेरा रोम-रोम भींगने लगता है। मैं सुमि को घूरती हूँ और प्यार से घुड़कते हुए कहती हूँ—'बदमाश कहीं की, तू पत्र का जबाब क्यों नहीं देती रे? पत्र का जवाब लिखना तो 'कर्टसी' या 'मैनर' के अंतर्गत आता है, तुम इस शील का निर्वाह भी नहीं कर पाती। यह गंध को पुकारती हुई यहाँ तक तुम्हारे पास आती है—क्या सबके लिए है। कोई माँगते मर जाता, कुछ नहीं मिलता, पर तेरे अनमाँगे ही यह कुछ···इतना··· इतना···। मैं पंक्ति भी पूरी नहीं कर पाती कि लगता है, किसी झील में बहती मरी हुई तितली के पंख मेरी आँखें ठहर जाती हैं। मैं उस पत्र को बिन पढ़े ही समाप्त कर देना चाहती हूँ, पर सुमि मेरी कालेज की दोस्त है और मैं उसकी किसी बात से अनजान भी नहीं हूँ—उसने स्वयं मुझको अनजान रहने नहीं दिया है। स्कूल से लेकर कालेज तक में किसने उसको फूल से मारा, रास्ता रोककर खड़ा हुआ, पढ़ने के आदान-प्रदान के साथ पत्र-व्यवहार का सिलसिला शुरू किया—सब तो बताया है सुमि ने। आज भी तो उसने ही पत्र के करीब किया है मुझे। मैं सहानुभूति से कन्धे तक झुक आती हूँ।

मैं पत्र का निचला हिस्सा पढ़ रही हूँ—मेरी आँखों में किसी ने मुट्ठी भर अबीर झोंक दिया है। फिर भी मुझे पढ़ना ही है क्योंकि मुझे विश्वास है कि सुमि ने पूरा पत्र कभी भी धैर्य के साथ नहीं पढ़ा होगा।

'···तुमने मेरे पिछले पत्र का कुछ भी Response नहीं दिया। यदि यह पत्र भी तुम्हारी ओर से मात्र मौनता लायेगा तो शायद मुझे विश्वास करना पड़ेगा कि तुम्हें इनकी अपेक्षा सचमुच नहीं है।'

कविता—हुआन रेमान हेमेनेज़' की है—

'·····Intelligence, give me
The exact name and your name,
And their name and my name for things.'

खिड़की से देखती हूँ। गलियों में काँच की गोलियों से खेलते बच्चों का शोर बढ़ रहा है। दो बच्चों में किसी बात पर झड़प हो गई है और देखते ही देखते दोनों आपस में गुँथ गए हैं। मैं उन को डाँटने के लिए होती हूँ, पर नहीं डाँटती, क्योंकि मैं उस मनःस्थिति से उबरना नहीं चाहती जिसमें सुमि की जीवित अकुलाहट कैद है। और वह रूझान जो पुकार बन कर लगातार सुमि का पीछा कर रही है और जिससे वह अब तक अनसुनी है। पर सुमि ने उसको सुना कैसे नहीं ? यह उदासी, यह चुप्पी आखिर है किसलिए ? क्या वह भीतर ही भीतर टूट नहीं रही उस स्वर-सम्मोहन को अपने भीतर बाँध नहीं पाने के कारण ? तो क्या सुमि बँधना चाहती है।

आँगन में बर्त्तनों की खटर-पटर सुनाई देने लगी है। शायद दाई आ गयी है। सुमि पर्दा के पार से झाँकती ही नहीं बाहर चली जाती है। देखती हूँ कि सुमि ने अपनी डायरी में कागज के छोटे से टुकड़े को करीने से सँभालकर रखा है। किसी चीज को इस तरह सँभालकर रखने की कैसी अच्छी आदत है सुमि में और जितना ही आज तक उसने अपने को, दूसरे को सँभाला है, लगता है नियति ने कोई तेज आँख रख दी है उस पर। उसकी छटपटाहट न तो कमरे की सीलन पर उतरती है न बाहर की हवाओं पर। ऐसी आग जो खुद को जलाये, पर दूसरे को उसका ताप भी महसूस न हो।

मुझे सुमि से लगाव है। सुमि के अलावे कोई और होती तो शायद मैं उसे क्षमा करती कि नहीं। पति और बच्चों के बीच तीसरा वह कौन-सा नैतिक विन्दु है जहाँ कोइ स्त्री अपने को स्थापित करती है ? मगर मैं सुमि को जानती हूँ उस हद तक जितना अपने को भी नहीं। प्रणय की वह प्रस्तावना इतनी नम रही होगी कि वह विवश हो गई। अन्यथा कैस-कैसे अंतर्विरोधों को सहा है सुमि ने ! उल्टी हवाओं ने भी उसके आँचल को नहीं उड़ाया है।

डायरी में उजले कागज का एक छोटा चौकोर टुकड़ा इस तरह रखा है कि उसके सँजोने के महत्त्व को समझा जा सकता है। उस पर कोई

तिथि नहीं है। दूसरी ओर देखती हूँ ऐसे सारे रंगे हुए कागज जो उनको कभी भेजे नहीं गये जिनके लिए लिखे गए।

मेरा मन फिर पिघलता है और कागज का यह छोटा टुकड़ा कई पर्त्तों में मेरी आँखों में फड़फड़ाने लगता है। मैं कसकर आँखें मूँद लेती हूँ। मुझको सुमि के पत्र-मित्र की मानसिक पीड़ा जैसे सालने लगती है। अचानक देखती हूँ कि सुमि कठिया गई है। उसने देख लिया है कि मेरे हाथों से उसकी डायरी जा लगी है और मेरी उँगलियों में कागज का वही छोटा टुकड़ा फँसा है। मैं उस पर अपनी आँखें टिकाती हूँ—

'मैं इन्तजार करता रहा, कि जबाब आएगा...

फ्रैंज काफ्का के एक खत की दो पंक्तियाँ सुनोगी ?

"What's your guess ? Can I still get a letter by Sunday ? It shall be possible. But its crazy, this passion for letters. Isn't a single one sufficient ? Isn't knowing once sufficient ? Certainly, it is sufficient, but nevertheless one leaves far back and drinks in the letters and is aware of nothing but that one doesn't want to stop drinking."

और एक दूसरे खत की भी···

"Writing letters···means to denude oneself before the ghosts, something for which they greedily wait. Written kisses don't reach their destination, rather they are drunk on the way by the ghosts."

सोचता हूँ शायद इन आत्माओं का शैथिल्य कभी किसी क्वाँरे चुम्बन को मुझ तक पहुँच आने दे और मैं पी लूँ···और शायद यह भी एक कारण है जिसने पत्रों के लिये थोड़ा crazy बना दिया है।

दूसरी ओर यदि तुम्हें पश्चाताप हो रहा हो, कि 'ऐसा पत्र सम्बन्ध हुआ ही क्यों'—तो लिखना, मैं तुम्हारे सारे पत्र तुम्हें भेज दूँगा—और आइन्दा फिर कभी अपने को denude न करूँगा।

रात में सुमि के बगल में सोते हुए मुझ को लगता है कि उसकी आँखों के सैलाब में मैं डूब जाऊँगी। सोचती हूँ सुमि ने देर कर दी, कर भी रही है। उसे आगे बढ़कर रिश्ता को थाम लेना चाहिए। ऐसे ही जिन्दगी में शाम करने से क्या मतलब? लेकिन नहीं, मैं उसको कहना चाहती हूँ कि अभी-अभी तो सुबह हुई है। पर क्या सुमि मानेगी?

अकेलापन—पहाड़ जैसा जमकर बैठा हुआ, मन को घोंट देने वाला अकेलापन। इस तरह मन को अकेलेपन की घाटियों में लावारिस छोड़ देने से क्या? एक समय था जब पति और बच्चों के सिवा कुछ भी न था उसका। आज इतनी सारी बीरानगी उसके पास है कि उसको तोड़ने की जरूरत है, उससे उबरने में ही उसका भला है। अन्यथा लिखने-पढ़ने के जिस शौक को बचाने के लिए उसको पढ़ाई जारी करनी पड़ी—आज उसका कुछ मतलब नहीं दीखता। अतीत काले समुद्र की तरह उसको घेर लेता है।

सुमि ने जब-जब चाहा है कि उसका संसार इस घर तक ही सीमित है और बाहर कुछ भी नहीं है, तब-तब उसको अपनी राय बदल लेनी पड़ी है। सुमि मुँह दाबकर हँसती है कि कैसे कभी-कभी आदमी को अपनी राय बदल लेनी पड़ती है।

करवट बदलते मैं महसूस करती हूँ कि सुमि की बाँहों में कसाव आ गया है। उसकी साँस मन की छटपटाहट लेकर बाहर निकल रही है। मैं सुमि की देह पर हाथ रखती हूँ—लगता है, यह देह नहीं कोई जलता अंगार हो। मेरा मन सिहरता है—अब कभी सुमि की देह पर हाथ नहीं रख सकूँगी।

मैं बुदबुदाती हूँ—दो नावों पर पाँव मत रखो सुमि। किसी एक ओर हो जाओ। जिन्दगी आवोहवा को झेलने के लिए है। इस तरह किसी टूटी मशीन की तरह दिनचर्या खतम करने से क्या मतलब? मेरी आँखें अँधेरे में डूबने लगती हैं और मैं तकिये को नीचे दबाकर लेटी रहती हूँ।

मुझे अपना ही अतीत पंखड़ियों की गंध की तरह हवाओं में फैलता

दीखने लगता है। सुमि मेरी उकस-पुकस में जग न जाए इसीलिए सोने का यत्न करती हूँ।

प्रायः ऐसा हुआ है कि सुमि के एक खत के जबाब में उसको तीन-तीन या कभी-कभी अधिक ही, पत्र लिखने पड़े हैं। क्या यह इसलिये, कि उसका एक पत्र इसको सन्तुष्ट या संतृप्त करने में असमर्थ रहता है या सुमि पत्रोत्तर में विलम्ब कर भावनाओं के आवेग को अति तीव्र होने से बचाना चाहती है या कूछ और।

सुमि को अनमनी देखकर मेरा जी भारी हो जाता है। ढेर-सी बातें होती थी हम दोनों में, पर अब तो कोई चट्टान ही टूटकर जैसे दीवारों से घेर गई है। काफी उझकने के बाद ही कुछ बातें कर सकती हूँ।

दुपहर के खाने के बाद निश्चित होने पर सुमि से एक क्षण के लिए बात हुई तो कहने लगी—'मेरे लिए बहुत मुश्किल है उसको नकार देना जहाँ मैं हूँ और उसको स्वीकार लेना जो मेरा होना चाहता है। एक स्वीकार के बदले मुझे कई-कई नकारों का अभिशाप झेलना पड़ सकता है। मैंने उसके बारे में पूछा तो बोली—'क्या करूँ, वह लिखता है कि शरद मेरे लिये सुनहरे पत्रों का शमशान-सा लग रहा है। उसका वह मित्र जिसे कनाडा जाना था—चला गया। वहाँ से पत्र लिखा था कि पतझड़ में एडमाण्टन बहुत अच्छा लग रहा है...।

सुमि को कभी-कभी चिढ़ होती है कि साहित्य पर वह ढेर-ढेर सी बातें उससे क्यों करता है। लिखने के लिए क्या और विषय उसको नहीं। प्यार की सहज बातों में यह साहित्य कहाँ से आ जाता है! साहित्य के प्रति मेरा लगाव जानकर उस लगाव पर तो वह खड़ा होना नहीं चाहता?

मुझको मेरा एक मित्र याद आता है जिसकी याद अब पानी से सेंवार बन गई है। वह अक्सर मुझको कहा करता था कि 'तनु, तुम शायद महसूस करती होगी कि—साहित्य और कविता से गठबन्धन कर हम कभी खुश नहीं रह सकेंगे। खासकर नयी मान्यताओं के प्रति आस्थावान् होने पर तो और भी Isolation मिल जाता है—जिसे तुम कविता मान खुश होना चाहोगी उसे लोग देखना तक नहीं चाहेंगे। समाज तो दूर की चीज हैं,

तुम अपने परिवार में अकेली हो जाओगी। तुम्हारी पसन्द की पत्रिकायें औरों के लिए किसी काम की नहीं होंगी—तुम्हारी पुस्तकें बस तुम्हें ही अच्छी लगेंगी।

व्यावहारिक रूप से देखा जाय तो इससे बड़े फायदे भी हैं--जैसे तुम मार तमाम पत्रिकायें और पुस्तकें खरीदने से बच जाओगी—तुम्हारे पुस्तकालय की एक भी पुस्तक या पत्रिका उधार न माँगी जायगी।

किन्तु यह Isolation !'

'सुमि, मैं बहुत घबड़ाने लगा हूँ। ऐसी परिस्थितियों में मैं अपने घनिष्ट मित्रों से नियमित पत्रोत्तर चाहूँगा। दुर्भाग्यवश यह भी नहीं हो पाता।'

कालेज से आते वक्त मैंने देखा सुमि पाँव के आगे-आगे देखती चल रही है। पहले तो वह ऐसे नहीं चलती थी। आते या जाते, कभी भी सड़क पार करते उसकी आँखें सड़क की दोनों ओर टँगे साइन बोर्डों पर टँगी, रहती थी। मैंने कई बार टोका भी था -- 'यह क्या बार-बार एक ही साइन बोर्ड को पढ़ना और पढ़ते जाना। अभी तक तो नाम याद हो गए होंगे तुमको। कुछ इरादा है क्या ?'

आज सड़क पार करते हुए मेरी सारी किताबें हाथ से छुटकर गिर पड़ीं। सुमि ने कहना चाहा है कुछ, पर आदतन एक अर्थपूर्ण मुस्कान छोड़कर चुप रह जाती है। गोया कह रही हो कि फड़कना तो मुझे चाहिए, फड़कते तेरे अंग हैं। क्या फर्क पड़ता है मैं नहीं, तुम सही। सहसा मुझे याद आती है। मैं मोड़ की पानवाली दूकान से कुछ आगे जाकर उसको कहती हूँ—'देखती हो न, लोग पान खाते हैं और पीक फेंकते हैं !' सुमि कहती है—'क्या मतलब ?'

मैं खुद भी नहीं समझती कि इसका क्या मतलब। मगर एक बात थी जो कह दी। क्या वैसी बात कही नहीं जाती ? वह अधिक हलकापन महसूस करती है और जैसे तालाब के पानी को छुआ जाय, छूकर मुझे कहती है--'कहो न, कुछ भी।'

'मैं कैसी लगती हूँ ?'

'कैसी लगती जा रही हूँ ?'

मैं उसको आश्वस्त करना चाहती हूँ—'कैसा लगना चाहिए तुम्हें ?'

सुमि पंखड़ियों पर जैसे खुल-खुल पड़ती है—कितने दिनों का बँधा पानी बाँध तोड़कर बह निकलता है। आँख से पहले उसके होंठ नम हो उठते हैं। मेरे हाथों को सहलाती हुई वह कहती जाती है—'मेरी कविताओं की बड़ी उत्सुकता से उसने प्रतीक्षा की। कई बार पूछा कि हिचकिचाहट किस बात की है—लिखा भी नहीं। उसने इस संशय को भी खोल दिया कि हो सकता है तुम न चाहती हो कुछ बातें···किन्तु क्या मुझे भी उनके दर्शन के लिए कोई पाबन्दी है ?'

सुमि ने बात को आगे बढ़ाया—'और जानती हो कई बार पत्र उसने लाल स्याही में लिखा तो उसके लिए सफाई देने की क्या जरूरत थी ! एक ओर तो घनघोर अपना-पन, एक प्राण दो देह मानने की स्थिति और दूसरी ओर बात-बात में सफाई ! मुझे तो इससे भी कभी-कभी अटपटा लगने लगता है वह ! अभी हाल में ही लिखा था—'पत्र लाल स्याही से है—कोई खास बात नहीं। दुर्भाग्यवश कमरे में नीली स्याही समाप्त हो गई थी।

मैंने बीच में ही काटा। यह कमरा-कमरा क्या लगा रखा है। कहीं पढ़ता-वढ़ता है तुम्हारा चहेता क्या ?

मैंने सुमि को कई दिनों के बाद आज दुल्हन-सी शरमाते देखा इसके पहले भी कई बार सुमि को जब शरमाते मैंने देखा है तो युवती होने के बावजूद मुझे उसमें रस आया है। सचमुच क्या खूबी हासिल है सुमि को उसमें। नमिता, सुनीति और तरू ने भी कई बार उसके शरमाने की चर्चा की है और गीति ने तो अनुकरण तक कर लिया था। पर सुमि का वह अंदाज उसमें नहीं आया। लड़कियाँ भी क्या होती है ! कहीं किसी बात की चर्चा होती है तो पिल पड़ती हैं उसके पीछे। ताज्जुब तो तब होता है जब कितनी ही लड़कियाँ सुमि को नितम्ब उभारने वाली साड़ी का स्टाइल अपनाने कहती है क्योंकि इससे उसका सौन्दर्य और भी बाँध तोड़कर

निखरेगा। पर सुमि ने उसको टालने या विरोध करने के लिए कभी किसी शब्द का प्रयोग नहीं किया। उसके लिए उसकी एक अर्थपूर्ण मुस्कान ही काफी होती है। इसीलिए तो सहेलियाँ भी उसको पूरी तरह नहीं पहचानने के कारण उसको रहस्यमयी आदि विशेषणों से जड़ देती हैं। सुमि ने कभी उसका बुरा भी नहीं माना।

पर आज वह एकदम बदली हुई लगती है। एलबम छुओ तो नाराज, पत्र पढ़ने की कोशिश करो तो सीधे दबोचने की मुद्रा में आ जाती है। मैं यह सब देख रही हूँ और मन ही मन खुश भी हो रही हूँ। चलो, एक स्थिति की जड़ता तो टूटी। एलबम में जब से उसका चित्र सटा है—सुमि कुछ छिपाने-सी लगी है। मैं सोचती हूँ कि जब वह छिपाने लगी है तो बात कहीं बढ़ ही जाएगी। जब तक वह तटस्थ भाव से हर बात को झेलती रही थी, तब निश्चय ही उसमें कोई विकार नहीं आया था।

मैं उससे मजाक करती हूँ—'आखिर आ गई न चपेट में उसने ? उसने पटा ही लिया न तुमको ?' सुमि एक मुस्कान फेंककर बालों को झटक देती है।

मगर बालों को झटक देने से क्या वह सही बात को झटक देगी ? मैं टोह लेने की मुद्रा में कहती हूँ—'ठहरी तू गँवार, वरना आना ही था तो मैदान में पहले ही आ जाती, उससे भी पहले—सबसे पहले।'

सुमि जैसे कुहर उठती है।

'तुम्हें क्या मालूम कि मुझे बड़ी खुशी है कि उसके उस धृष्ट पत्र के साथ ही एक रूमानी परम्परा का अंत हो गया।....'

उस पर से बनता है कि मेरे पत्र मिलने के कुछेक दिन बाद तुम्हारी परीक्षाएँ होंगी। नए वर्ष से हमें बड़ी आशाएँ है। मैं सोच नहीं पा रहा हूँ कि कुछ ऐसे भी कारण होंगे जिससे तुम्हें सफलताओं के प्रति अनास्था हो गयी हो।'

फिर नहले पर दहला ठोंकता है कि 'पत्रोत्तर में शीघ्रता इसीलिए कर रहा हूँ कि यदि मेरे पत्रों से कुछ क्षोभ हुआ हो, तो उसे मैं मिटा सकूँ। और मैं सहायता ही क्या कर सकता हूँ ?'

अंतिम वाक्य कहते-कहते सुमि की आवाज मद्धिम पड़ गई। लगता है, किसी अन्याय से उसने अपने आपको बचा लिया है। काश, उस क्वाँरे क्षितिज पर कभी पहुँच पाती सुमि ! कितनी प्यास लिए वह लिखता है, पर सुमि के पास पहुँचने तक वह किसी जलते तवे पर छन्न हो जाती है।

जाने पीड़ा की किस गहन गुफा में सर टकराने के बाद उसने लिखा है कि 'मैंने पिछले किसी पत्र में रेनर मारिया रिल्के की चर्चा की थी। आजकल उन्हें पढ़ रहा था। चाहता हूँ कुछ तुम्हें भी सुनाऊँ—

'Everyone carries inside him his own death.'

उसने फिर सुमि को साहित्य, जीवन, दर्शन समझाने की चेष्टा की है। जाने वह भी कैसा सिरफिरा है। वह बौद्धिक दृष्टि से क्यों सम्पन्न करना चाहता है। सुमि को ! शायद उसको पता नहीं कि बौद्धिकता के आते ही प्रेम किस दरवाजे से भाग खड़ा होता है। अगर वह प्रेम करना चाहता है तो उस पर विद्वत्ता का भूत क्यों सवार है। क्यों नहीं वह प्रेम की ही दो-चार कहानियाँ लिखकर भेज देता। हाय, सुमि को भी किस गुरुजी से पाला पड़ा ! प्रेम करने के लिए क्या रिल्के या कामू को पढ़ना जरूरी है। यह प्रेमी है कि आफत है ! मुझको एक बार भी भेंट हो जाती उससे तो अवश्य ही कामू का भूत उतार देती उस पर से। लगता है प्रेम नहीं, कविता का ही दौरा आता है उसको।

सुमि भी क्या करे। सोचती है कि इतनी ढेर सारी जगह साहित्य के नाम पर रँगने से प्रेम तो परवान नहीं चढ़ जाएगा। उसके बदले वह रंगीन रस भरी बातें ही लिखता तो क्या बिगड़ जाता उसका।

किन्हीं बेचैन लमहों से विवश होकर उसने अपने एक अन्तरंग मित्र को सुमि का पता दे दिया था जो पटना किसी कार्यवश आया। पटना से मुजफ्फरपुर है ही कितनी दूर ! सुमि हँसती-हँसती दुहरी हो गई है यह बताती हुयी कि उसके मित्र ने भी उससे यही कहा कि उसने पूछा है कि वह रिल्के को पढ़ती है या नहीं ? और उसके मित्र ने चाय पीते, सिगरेट फूँकते यही चर्चा की कि स्थूल को सूक्ष्म में रूपान्तरित करने में ही रिल्के

अपनी रचना प्रक्रिया की सार्थकता मानता था। उसके लिए जीने की प्रक्रिया ही रचना प्रक्रिया थी। उसकी समस्या थी कि अन्तर एवं बाह्य जगत की एकता को वह काव्य में किस तरह प्रकट कर दे।···

मैं हँसूँ कि चुप रहूँ—मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता है। मगर सुमि अभी रुकने वाली नहीं है। वह बात को आगे बढ़ाती है।

'···और इसीलिए उसने ऐसे प्रतीकों की खोज की जो दोनों जीवनों के सामंजस्य को पूरी सक्षमता के साथ कह लेने के साथ ही कुछ और गंभीर वक्तव्य दे जायें जो स्वीकारोक्तियों के माध्यम से कभी संभव नहीं हो सकते।···

सुमि बीच में टोकती है—'काफी ठण्डी हो गई है आपकी। दूसरी प्याली लाऊँ? तो बगैर सहमति या असहमति के वह चर्चा को ही आगे बढ़ाने में व्यस्त रहता है।

'रिल्के जीवन के ध्येय को भी storing of impressions ही मानता था। सुमि फिर बीच में आती है—'मगर यह तो बताइए कि आप क्या मानते हैं? आप लोगों को जीवन जीना भी रिल्के ही सिखाएगा।

मैंने सुझाया कि सुमि ऐसा करो तुम पाल वैलेरी की बातें किया करो। शायद उसको वह नहीं पढ़ा होगा या पढ़ रहा होगा। जब अपनी बातें कहने से अधिक वह कविताएँ सुनाने में ही रस लेता है तो फिर तुम भी वही करो। शायद तुम्हें पता होगा कि नार्सीसस की प्रति छवि को लेकर कवि ने चिन्तन के लिये गीत लिख लिया है। शायद शुद्ध चिन्तन असंभव है क्योंकि इसकी शुद्धता दूसरों की वासनाओं एवं चिन्ताओं से गंदी हो जाती है।

सुमि को बोर करने के ख्याल से मैं कहती हूँ--'जी चाहता है, एक कविता है—उसे पूरा-पूरा लिखकर तुम्हें सुना दूँ—'Cemetery by the sea' यदि अभाग्यवश पढ़ा न हो तो सूचित करो, सुमि, बहुत अच्छी कविता है और यदि पढ़ा भी हो तो कुछ पंक्तियाँ फिर से सुनो—

'···Even the fruits in the enjoyment fades
And with its absence a delight pervades
The mouth in which it form lost shape, I breathe
The vapours of the future; and the sky
Sings to the soul in its extremily
The transformation of the shores beneath.....

हवा में अकस्मात् एक सुगन्ध भर उठती है। मैं गर्दन मोड़ती हूँ तो एक बड़ा ही शालीन युवक अभिवादन की मुद्रा में हाथ जोड़ देता है। मैं सुमि को आँखों के इशारे से पूछती हूँ। सुमि आगे बढ़ आती है और मुझको उससे परिचित कराती है।

'ये हैं मिस्टर शील, यश के मित्र।'

कहते ही वह घबड़ाकर परे भाग जाती है। जैसे उसने नाम क्या ले लिया कि अनबंधों की स्वीकृति की मुहर ही दाग दी। मेरे मन में एक क्षण को कौंधता है—नाम—किसका नाम—शील का तो नहीं—सामने जो था! नहीं न, यश···यश का नाम—पहली बार जो जीप पर आया था। कभी सामने में इस तरह नाम लेकर पुकार सकेगी क्या? सपने भी कैसे अजीब होते हैं। कुछ सिलसिलों को जोड़कर धीरे-धीरे उसका क्षरित होना भी देखते रहते हैं—मगर सपनों का सिलसिला···कहीं अन्त है उसका?

शाम की गाड़ी से वह लौटना चाहता है। लौट ही जाता है। सुमि फिर चुप। मैं हिलते हाथों से उसको अभिवादन देती हूँ। वह सब कुछ को पीता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। मैं दूर तक उसको जाते हुए देखती रहती हूँ। जाते हुए लोगों को पीछे से देखते रहने का भी कैसा अनुभव होता है। मुझको लगता है कि सुमि से अधिक वह मुड़-मुड़कर मुझको ही देखता जाता है। उसका यह देखना मुझको अच्छा लगता है। काश, उसको पता हो जाता कि मुझको उसका यों देखना कितना अच्छा लग रहा है। सुमि से कहूँगी कि उसको पत्र में यह बात लिख दें। नहीं; तब तो सुमि हर बात को मेरे ही नाम से लिख दिया करेगी। मुझे हर

अच्छी बात अच्छी लगती है, पर उन अच्छी बातों के लिए अभिभूत होकर दिवानगी तक उतर आना पसंद नहीं। बहुत दिनों के बाद सुमि कोई फिल्म देखने की इच्छा व्यक्त करती है। मैं उसको 'शारदा' देखने के लिए कहती हूँ जिसमें मीनाकुमारी ने अपने प्रेमी की माँ की भूमिका पूरे अभिशापों और तापों के साथ निभाई है। सुमि कुछ सोचने लगती है तो मैं तुरत 'साहब बीबी गुलाम' का नाम सुझाती हूँ। मीना कुमारी इसमें भी है पर भूमिका बदली हुई है। सुमि झट मान लेती है तो मैं उसको छेड़ने के लिए कहती हूँ, बेबी, इसमें भी वह अभिशापों से मुक्त कहाँ है? सुमि कहती है—अभिशापों से मुक्त हम सब हैं कहाँ, यही अभिशाप तो हम लोगों की जिन्दगी है—इसी को जीते रहना है।

चलो सब ठीक है।

दो

मैं हॉस्टल लौटना चाहती हूँ और सुमि को बताती हूँ कि वहाँ की अधीक्षिका हैं तो सीधी और भली, पर कानून तो कानून है। मुझे उनके प्रति आदर है—इसलिए अपनी किसी बेहिसाबी से उनको शिद्दत में डालना नहीं चाहती। सुमि झट मान जाती है तो उसको लगता है कि इस भूमिका की जरूरत ही नहीं थी। मैं हॉस्टल में आकर पहले अपने कमरे को ठीक करती हूँ फिर नीचे उतर जाती हूँ अधीक्षिका से मिलने। लड़कियों की निगाहें मुझे घूर रही हैं—चार दिनों के बाद जो लौटी हूँ और जाते समय सिर्फ गेटबुक में भरकर चली गई थी। दीदी थीं नहीं और प्रीफेक्ट

को खोजा तो मिली नहीं। सो मैं हड़बड़ी में एप्लिकेशन बाहर टेबुल पर छोड़कर ही चली गई थी। मेरे पीछे अवश्य कुछ लड़कियों ने मेरी शिकायत की होगी। इससे क्या ? दीदी से मिलकर सब कुछ बता दूँगी तो वे मान जाएँगी। कहूँगी, मेरे दोस्त की तबीयत खराब थी। वे इतनी अमानवीय तो नहीं हैं कि इस पर मेरे जाने का बुरा मान लें। फिर सुमि मेरी लोकल गार्जियन भी तो है ! उसके यहाँ जब जी चाहे, जा ही सकती हूँ। हर लड़की जाती है—दीदी किसको-किसको मना करती हैं ? चोट्टी सबको पता नहीं कि मैं सुमि के यहाँ गई थी जो शादी-शुदा है, जिसका अपना घर-परिवार है—दोस्त ही नहीं, अभिभावक भी है वह मेरी। इन लोगों की तरह किसी यार के साथ होटल में ठहर कर थोड़े आई हूँ ! चन्द्रा मेरी ओर देखकर बेमतलब हँसती है तो मैं भी उसमें अपनी हँसी घोल देती हूँ और ऐसे इतराकर सीढ़ियाँ उतरती हूँ कि उसको लगे मैं भी उसकी तरह किसी दोस्त से रात भर ठहरने का उपहार लेकर लौटी हूँ—लकमे, लिपस्टिक, रूमाल, ब्रेजिअर···। मैं सीधे दीदी के दरवाजे की ओर बढ़ती हूँ।

'आऊँ दीदी ?'

देर तक कोई आवाज नहीं आती। मैं दरवाजा हटाकर झाँकती हूँ। एक संभ्रान्त व्यक्ति बैठा हुआ है ड्राइंगरूम में। मैं सिर पीछे खींच लेती हूँ। बाथरूम से पानी गिरने की आवाज आ रही है। शायद दीदी नहा रही हैं। मैं दरवाजे की दीवार के साथ टिक कर खड़ी रहती हूँ। तभी मेस का बाबा जी आता है। मैं उसको मना करती हूँ अन्दर जाने से। वह फिर भी नहीं मानता और जाने लगता है। मैं उसको झिड़कती हूँ। अन्दर एक व्यक्ति बैठे हुए हैं—दीदी आयेंगी तो पहले उनसे बातें करूँगी। पर बाबा जी जल्दीबाजी में हैं। कहता है—'मेरा सब खाना खराब हो जाएगा। दीदी चलकर देख लेंगी तो ठीक रहेगा। मैं उससे घटना के बारे में जानना चाहती हूँ। वह हाथ भाँज-भाँज कर कहता है कि 'इस हॉस्टल में तो रहना मुश्किल हो गया है। सब लोग मना करते थे कि कोई दूसरा

धंधा कर लेना, पर गर्ल्स हॉस्टल का मेस मत चलाना। भुजिया में जब तक तेल नहीं चूता रहे तब तक किसी को रुचता ही नहीं। अभी देखिए दाल में फौरन के जले जीरे को दिखा कर कुछ लड़कियों ने हल्ला करना शुरू कर दिया है कि दाल में पिलुआ है और देखादेखी सभी लड़कियों ने दाल छोड़ दिया है। सभी भुजिया भात खाने लगी हैं। मैं उतना भुजिया कहाँ से लाऊँगा। बारह आने शाम में ही मुझको घाटा लगता है—उस पर से ये परेशानी।' मेरी समझ में सब कुछ आ जाता है। मैं उसको अन्दर जाने का इशारा कर देती हूँ। तभी दीदी का बेटा चम्पक निकलता है। मैं उससे दीदी के बारे में पूछती हूँ। वह बताता है—'माँ सुबह से ही हॉस्टल का ड्यूज रजिस्टर देखने में व्यस्त रहीं। अभी नहाने गईं और इधर एक मिजिटर भी आकर बैठा है।

मुझे दीदी की मानसिक परेशानी का खयाल हो आता है। दूसरे की बला अपने सिर पर रखकर आदमी चैन से रह भी कैसे सकता है?

उधर देखती हूँ कि दो-एक लड़कियाँ बिना परमीशन लिए अपने मिजिटर से मिल रही हैं। अभी तो मिलने का कोई वक्त है भी नहीं। पर कौन समझाए इन बलाओं को। कुछ कहने पर उल्टे सिर खाने लगती हैं। और मुझे दीदी का ध्यान आता है। कितनी शान्तिप्रिय हैं वे। इस जगह पर रहना कितनी मुश्किल है उनके लिए। इधर इसलिए काफी अस्थिर लग रही हैं वे। मुझसे जब कभी बातें होती हैं तो वे कहती हैं—'क्या करूँ? यहाँ भी आना ही था! जैसे जो होगा देखना ही है···'

उस दिन टहलते-टहलते दीदी के पीछे मैं गेट तक चली गई थी। अनायास उनकी चप्पल उखड़ गई। वे खोल ही रही थीं कि पीछे से मैंने उन्हें अपने हाथों में ले लिया।

'चलिए, पहुँचा दूँ।'

'नहीं, छोड़िए आप। यह ठीक नहीं है। कोई दाई आकर ले जाएगी।

मैं फिर कहती हूँ – 'क्या ठीक नहीं है? मैं तो कई बार इस तरह अपनी माँ और बड़ी दीदी की चप्पलें छत से नीचे और नीचे से छत पर

ले गई हूँ। और फिर आप तो यहाँ हमारी संरक्षिका ठहरीं। आपका ही विषय भी है मेरा। उसमें भी आप मेरा सहयोग कर सकती हैं।'

दीदी के चेहरे पर इन दिनों काफी तनाव रहता है। मैं उसका कारण भी जानती हूँ। पर यह नहीं जानती कि दीदी प्राध्यापिका हैं। कालेज की अच्छी-भली चैन की जिन्दगी के साथ हॉस्टल का यह जहर क्यों मोल ले लिया। मैं पूछ ही बैठती हूँ।

'दीदी, आप हॉस्टल में कैसे आईं? और इस हॉस्टल में जो विश्व-विद्यालय की जातीय राजनीति का सदैव अखाड़ा बना रहा है। आपके पहले भी दो अधीक्षिकाएँ थीं जो रो-रोकर यहाँ से गईं। एक की तो तनख्वाह भी बाकी थी जो कभी लेने नहीं आईं। ऐसी घृणा हुई उन्हें इस जगह से। और आप जैसी शांत और सहनशील महिला के लिए तो यह जगह और भी सूट नहीं करेगी। दीदी, आपको काफी सोचना चाहिए था यहाँ आने के पहले।'

'आप क्या सोच रही हैं कि मैंने सोचा नहीं? मेरे साथ ऐसी मुश्किल लाद दी गई कि मुझे आना ही पड़ा।'

'वह क्या? मैं सुन सकती हूँ?'

'छोड़िए, जरूरत ही क्या है?'

'फिर भी'

दीदी मेरे चेहरे पर नजर टिकाती हैं। लगता है उनकी आँखों की सुगढ़ अनुशासनयुक्त दीप्ति मुझे साहस और धैर्य का स्रोत थमा देती है। मेरे लिए दीदी पूजा-सी पवित्र लगती हैं। मैं बढ़कर उनके आगे कृतज्ञता से झुक जाना चाहती हूँ।

दीदी के मन में कोई हलचल-सी मच गई है। उनका अनकहा लोक उन्हें व्यथित कर देता है। वे मेरी पीठ पर हाथ रख देती हैं और हम दोनों साथ-साथ चलने लगती हैं। मैं अनायास एक मसृण आत्मीयता से भींग उठती हूँ। दीदी को लगता है कि हॉस्टल की इस वीरानगी में मैं उनके लिए फुर्सत के क्षणों की सहभागिनी बन सकती हूँ।

वे चलती हुईं गेंदा का एक फूल तोड़ती हैं और उसकी पंखुड़ियों को तोड़-तोड़कर छींटते हुए कहती हैं—

'जानती हैं तनु, एम० ए० में मात्र कुछ अंकों से मेरा गोल्ड मेडल छूट गया था। प्रथम श्रेणी मिली थी। किसी कालेज में पढ़ाने का बड़ा मन था उन दिनों। लगता था झट कहीं नियुक्ति हो जाए। फिर भी एक कायदे की जगह तो तलाशनी ही थी। उन्हीं दिनों महिला कालेज में एक जगह खाली हुई। मैंने इन्टरव्यू दिया चुनाव हो गया मेरा। गर्ल्स हॉस्टल तब एक समस्या थी विश्वविद्यालय के लिए। तत्कालीन वार्डेन के प्रति लड़कियों में विभिन्न तरह की अफवाहें थीं। वहाँ तत्काल एक छात्रावास अधीक्षिका की नियुक्ति अनिवार्य थी। सो जाने क्यों उपकुलपति ने विश्व-विद्यालय के हेडक्लर्क को भेजकर मुझे बुलवाया और बड़े ही अनुनय से कहा कि आप हॉस्टल का फार्म भी भर दीजिए। इन दिनों बहुत परेशान हूँ मैं उसके चलते। कोई यहाँ आना नहीं चाहती। आपको सब तरह की सुविधाएँ मिलेंगी। मेरा क्वार्टर भी नजदीक ही है। जब कोई दिक्कत हो पूछ लीजिएगा। आपको हॉस्टल में ज्वाइन करना ही है। मैं तो चकरा गई थी कि हॉस्टल क्या होता है। एक दिन भी हॉस्टल में रहने का तजुर्बा मेरा नहीं था। पर उस विद्वान् वयोवृद्ध उपकुलपति के जुड़े हुए हाथों ने मुझे संभ्रम में डाल दिया। मैं कुछ बोल नहीं सकी। उपकुलपति ने अंतिम अस्त्र का इस्तेमाल करते हुए कहा कि आप हॉस्टल जब तक ज्वाइन नहीं करतीं —कालेज का नियुक्ति-पत्र आपको नहीं मिलेगा। मैं घर आकर सुस्त हो गई। मेरा उत्साह छटपटा कर सोने लग गया। लोगों ने, घरवालों ने मुझे काफी समझाया। कुछ लोगों ने तो उन सुविधाओं का ध्यान मुझे दिलाया जो हॉस्टल में रहने पर मुझे मिलतीं—मुफ्त का क्वार्टर, बिजली, फर्नीचर, दाई-नौकर-एलौएन्स···। अपने से लड़ती रही मैं कई दिन, कई रात। पर अंत में दूसरों की मर्जी पर छोड़ ही देना पड़ा क्योंकि कालेज में पढ़ाने का तब बड़ा ही नया-नया शौक था। मैं उस शौक को अपने से छीनना नहीं चाहती थी। और फिर तो मैं आ गई इस युद्ध-मुख में।'

आज अभी दीदी निकलेंगी तो सारी लड़कियाँ उन्हें घेर लेंगी और एक कोलाहल सा मच जाएगा। कुछ चिल्लाकर कहेंगी कि इस बाबाजी को निकालिए मेस से। दूसरा बाबाजी ऐसा आए जो कम से कम इस तरह का गंदा प्लेट न लगाए। हम इतने पैसे देती हैं और बदले में हमें इतना रद्दी खाना मिलता है। उधर बाबाजी माथे पर हाथ पटककर कहेगा दीदीजी, मैं तो बर्बाद हो गया। रोज-रोज यही टंटा ये लोग करती हैं। हमेंशा दूध गरम करने, चाय बनाने और टोस्ट सेंकने दें चूल्हे पर तो ठीक, नहीं तो किसी न किसी बहाने यही उपद्रव करती है। दीदी सबकी सुनती हैं और कभी-कभी तो किसी को भी कुछ नहीं कह पातीं।

दीदी मिजिटर के साथ ही बाहर निकलती हैं। उनसे हॉस्टल की सीट के सम्बन्ध में बातें कर उनसे विदा लेकर मुड़ती हैं तो दरबान आकर शिकायत करता है कि शोभा दीदी बगैर कुछ कहे हॉस्टल से बाहर चली गई हैं। वीणा दीदी को मैंने लाख मना किया, फिर भी कालेज के उस लड़के से वे बतियाती रहीं जिसको इस तरह आने से आपने मना किया था। दाई कुछ खरीदने के बहाने हॉस्टल से बाहर जाती है और चिट्ठी पहुँचाया करती है। दस बजे के गए वह एक बजे लौटती है। कुछ लड़कियाँ कह रही थीं कि इस तरह दाई हॉस्टल से बाहर रहेगी तो हम दीदी से कहेंगे, उन्होंने कुछ न किया तो वार्डेन को लिखेंगे। दीदी सब कुछ सुन लेने के बाद आगे बढ़ती हैं तो देखती हैं कि गुलदाउदी के छोटे-छोटे पौधे कल शाम को लगवाये थे उन्हीं पर कुर्सियाँ रखकर लड़कियो ने घन्टों बातें की हैं। पौधे इसी से मर गये हैं। उधर छत के नीचे, बगल की दीवार के पास कुछ ब्लाउज, पेटीकोट उड़कर आ गए हैं। वे तब तक पड़े रहेंगे जब तक कोई दाई उठाकर ले नहीं जाएगी और उनमें से किसी के गायब होने पर फिर अधीक्षिका के पास शिकायतों के अम्बार लग जायेंगे कि अमुक दाई के पे में से इतने रुपये काट लीजिए। अमुक को ससपेण्ड कीजिए। वह दरबान गेट को ठीक से देखता नहीं; वरना हॉस्टल की कोई चीज चोरी कैसे चली जाएगी।

दीदी का मुँह कड़ुआने लगता है। वे दाँतों से होंठ काटती ही हैं कि मैं सामने आ जाती हूँ।

'दीदी, मैं जल्द लौट न सकी···मैं लोकल गार्जियन के यहाँ···'

'ठीक है, ठीक है, आप कोई बच्ची थोड़ी हैं। कैसे जाना चाहिए, कहाँ जाना चाहिए, खूब समझती हैं। दरअसल मेरे लिए समस्या यह नहीं कि कोई कहाँ जाती है। कम से कम औपचारिक कागज तो ठीक रहना चाहिए। आप कहीं जाती हैं तो आपके दूसरे-तीसरे मिजिटर के पूछने पर बिना किसी सूचना के हम क्या बता सकते हैं ?

मैं चुपचाप सुनती रह जाती हूँ। दीदी के बढ़ते ही चुपचाप ऊपर अपने कमरे की ओर भागती हूँ। टेबुल पर सुमि के साथ जो मेरा चित्र है, उस पर धूल की तहें दीखती हैं। मैं आँचल की कोर से उन्हें साफ करती हूँ। आइने में देखती हूँ। अब मेरा चेहरा काफी भयहीन और सुरक्षित है। लड़कियों की आवाजें भी दबने लगी हैं ? मैं आँखें बन्दकर फिर खोल लेती हूँ। संतोष की साँस लेते हुए पलंग पर लेट जाती हूँ। क्या यह हॉस्टल की भी जिन्दगी है ! अच्छी भली लड़कियाँ भी कुछ बहशी लड़कियों के कारण शंका की आँखों से देखी जाती है ! चेहरे पर किसके यह सूचना टँगी रहती है कि कौन अच्छा और कौन खराब है ? यहाँ तो एक के पचास-पचास मिजिटर। जाने कितनी कलाइयों पर राखियाँ बाँधी हैं इन लोगों ने ? सब भाई बनकर ही आते हैं। ऐसे में सचमुच के भाई पर भी कुदृष्टि पड़ती रहती हैं। सम्बन्ध कितने खोखले और काम चलाऊ हो गए हैं आज। आखिर ये पढ़-लिख कर करेंगी भी क्या ? यहाँ हॉस्टल को परेशान, घर में माँ-बाप इनसे परेशान, ससुराल जायेंगी साथ वाले परेशान। और उम्मीद ही क्या है। इनसे ?

४ बजने को आए। इस वक्त रोज सुमि के साथ चाय की चुस्कियाँ लेती हुई मुझे जाने किस निश्चिन्तता का एहसास होता रहता था। आज यहाँ हूँ तो कोई पूछने वाली नही। लड़कियों में तो यही होता है ! साथ घूमो फिरो तों ठीक, साथ सोओ तो ठीक, साथ बातें भी कर

लो। पर चाय या नाश्ते के समय वे दरवाजा भिड़का लेंगी और अकेली संतृप्त होकर जब बाहर निकलेंगी तो लीजिए न ढेर सारी बातें—आदमी नहीं; दीवार से भी। मेरी आँखें लगने लगती हैं आलस से अंग-अंग टूटने लगता है। मन होता है किसी दाई को बुलाकर कहूँ देह दबा दे। पर हिम्मत नहीं होती। सुमि के यहाँ से हरबार इतनी सुकुमार होकर लौटती हूँ कि खुद चाय बनाने के काबिल भी नहीं रहती। वैसे इस वक्त कमरे में सब कुछ है—केतली, चाय, चीनी। हाँ, दूध नही है। वैसे मोहन को पुकार दूँ तो वह दूध भी ले ही आएगा कहीं न कहीं से। पर पर मैं कुछ नहीं करती, लेटी रहती हूँ।

यह कोई सोने का वक्त नहीं है। सुमि हरदम कहा करती थी कि इस वक्त सोने से माथा भारी हो जाता है। मैं अपने को झटकती हूँ और उठकर खिड़की के पास आ जाती हूँ। मेरी खिड़की उधर खुलती है जिधर भूतपूर्व वार्डेन का बँगला है। देखती हूँ कि हर वक्त उनके बरामदे में लड़कों का मेला लगा रहता है। किस्म-किस्म के लड़के भाँति-भाँति की पोशाक, तरह-तरह के रूप-रंग। तो क्या इन्हें पढ़ने-लिखने से कोई मतलब नहीं? जब देखो, सुबह, दोपहर, शाम हाजिर हैं। यही इनकी पढ़ाई है, इसलिए तो आगे चलकर बेकारी की फसल भी काटते हैं। इनमें से जरूर कुछ लड़के होंगे जिनकी आत्मा पढ़ने के लिए, शांतिपूर्वक रहने के लिए छटपटाती होंगी, पर क्या करें वे! आना ही है उनको उन शोहदों के साथ। वरना उनकी चुगली खायेंगे वे और लाख, पढ़ो, मरो खपो, पर परीक्षा में दस लीडरों के नाम के बाद ही आएगा उनका नाम।

रोज नयी योजनाएँ बनती हैं उस बरामदे पर। कैसे उपकुलपति को साधना है। गर्ल्स हॉस्टल पर अपने प्रभाव को कायम रखना है। अमुक लड़के किस जाति के हैं। इस बार कितने को फर्स्ट क्लास आ रहा है? उनमें पहला-दूसरा नाम किसका है? लड़कियाँ ट्यूशन पढ़ने आएँ तो उन्हें कोई भी वक्त दे दिया जाए। किन लड़कियों के नाक

नक्स कितने तीखे हैं ? अमुक वर्ष की अमुक लड़कियों का किसके साथ सम्बन्ध है ? छात्रों में अधिक से अधिक प्रभाव कायम किया जाय और विश्वविद्यालय का लगाम हाथ से न छूटने पाए ।

सुनती और देखती भी रही हूँ । भूतपूर्व वार्डेन डॉ० गोयल इस गर्ल्स हॉस्टल पर काफी कुपित हैं । वहाँ से हट जाने के कारण सारा दुख अब क्रोध में बदल गया है और किसी बहाने वे यहाँ की तमाम व्यवस्था को परेशान करते रहते हैं । अधीक्षिका को खास मुसीबतें उठानी पड़ती हैं इससे । इतने अच्छे ढंग से हॉस्टल चलाने के बावजूद कितने ही बंधन इतने ढीले रह जाते हैं; कितने ही पहलुओं को इतना कमजोर कर दिया जाता हैं कि दस तरह की अफवाहें उठने लगती हैं । लड़कों की लाल-नीली-पीली बुशर्टों वाली सेना इसीलिए तो वहाँ नित्य प्रशिक्षित होने जाती है !

आइन्दे जाने कितनी तरह की घटनायें घट चुकी हैं । उस रात कोई दीवार फलांगकर आया था और किसी लड़की की खिड़की में झाँक रहा था । कल कविता के कमरे में सुबह-सुबह कागज से लपेटी गई एक ईंट मिली जिस पर भद्दी-भद्दी गालियाँ लिखी हुई थीं । वह शायद रात गए खिड़की से फेंक दी गई होगी । लड़कियों को सन्देह हुआ था कि इस तरह का रिस्क लेने बाहर से कौन आदमी आएगा । यह हॉस्टल की ही किसी लड़की की करतूत है । इतनी कूड़मगज़ तो होती ही हैं लड़कियाँ कि एक दूसरे की प्रतिष्ठा को किसी खास स्वार्थ के कारण सोच न सकें । वरना वे एकजुट होकर रहती तो यह मुसीबत ही क्यों होती ?

पिछले सप्ताह मैथमेटिक डिपार्टमेंट में वन्या का दुपट्टा खींच लिया था एक लड़के ने । खींचकर छोड़ भी देता तो भला, वह तो लेकर ही भाग गया । बेचारी वन्या का क्या हाल हुआ वहाँ ! वह तो संध्या दीदी ने उसको बचाया । सुना कि वे उसको गर्ल्स कामन रूम फॉर साइन्स ले गईं । फिर एक छात्रा को तुरन्त हॉस्टल भेजकर एक दुपट्टा मँगाया । तब कहीं जाकर वन्या क्लास कर सकी । यहाँ किसी की इज्जत से खेलना

तो आम बात हो गई है। लड़के या लड़कियों के लिए तटस्थ रहना भी एक समस्या है। वे इधर रहें तो उधर वाले तंग करेंगे।

परसों मैं तो सुमि के यहाँ थी। सुना यूनिवर्सिटी कैम्पस में दो दलों में जोर की भिड़न्त हुई। गोलियाँ तक चल गई थीं। एक गोली होस्टल की दाई के बेटे को लगी। तुरन्त उसको लापता कर दिया गया। दाई ने रोना चिल्लाना शुरू किया तो उसको सौ रुपए दे दिए गये और कहा गया कि तुम्हारा बेटा अस्पताल के एक डाक्टर के घर पर है। उसकी दवा हो रही है और वह ठीक है। ज्यादे हल्ला करेगी तो बस देख लोगी। डर के मारे दाई-दाई साफ झूठ बोल गई कि उसके बेटे को गोली लगी ही नहीं और उसका बेटा तो अपनी बहन के घर गया हुआ है। पूछने वाले भी निश्चिन्त होकर लौट गए। जिन लोगों ने थाने में सूचना दी थी, उनका ही मुँह छोटा हो गया।

परसों से ही कर्फ्यू भी लगी है। पर इससे क्या हुआ – रात को मिलने वाले लोग दिन में ही मिल रहे हैं। सरे आम शिक्षा का मुँह काला कर रहे हैं। शाम होते ही जो लोग अपने बरामदों और कमरों में बन्द हो जाते हैं वे भी इस कर्फ्यू की रात में खिड़कियों से बाहर ही झाँकते हैं। उत्सुकता वश बाहर निकल पड़ते हैं कि कहाँ क्या हो रहा है। कर्फ्यू के समय भी एक दल पूरी तरह निश्चिन्त है और लगता ही नहीं कि उसका घर उसी एरिया में है जहाँ कर्फ्यू लगा है।

इस तरह के कर्फ्यू को तो मुजफ्फरपुर ने कई घर देखा है। यद्यपि कल्याणी और सरैयागंज की सारी दुकानें बन्द हो गई हैं, फिर भी घूमते हुए लोग इक्के दुक्के दीख ही जाते हैं। सड़कें और फुटपाथ क्या इसीलिए बने हैं कि शाम होते ही लोग उन्हें आराम करने के लिए छोड़ दें।

विश्वविद्यालय के इन दोनों दलों में से कोई भी दूसरे को चकमा नहीं दे सकता। एक दूसरे की नीतियाँ स्पष्ट हो चुकी हैं। बैकवर्ड कहे जाने वाले लोगों के लिए समस्या है कि वे अपने को किस अभिजातवर्ग के नाम पर सलाम कर दें। लंगटसिंह कालेज से लेकर गर्ल्स हॉस्टल तक पुलिस

जवानों से भरी लारियाँ, सीधी तनी राईफलें और गाड़ियों की घर्र-घर्र सुनाई देती हैं। आंतकित सन्नाटा चारों ओर चीख रहा है। मुझको एक पल के लिए होता है शासन का खूंखार पंजा यहाँ क्यों आ गया है। इस तरह यूनिवर्सिटी ऑर्थमोमस वॉडी कैसे है? मुझे दो चीजों से नफरत की हद तक जाने क्या-क्या होने लगता है—लोहे की नाल ठुके बूटों की ठक-ठक और पुलिस का चेहरा। प्रजातन्त्र का गंदा पेशाब नजर आता है वहाँ!

क्या ताज्जुब है कि लोग पढ़ायेंगे एक ही यूनिवर्सिटी, एक ही कालेज में रहेंगे एक ही कैम्पस में और एक दूसरे को लहुलुहान भी करते रहेंगे। रात में प्लान बनायेंगे; सुबह अपने दल के लड़कों को तैयार करेंगे। दिन में कालेज में राजनीति ठोकेंगे और शाम होते ही झुरमुटे में मौका मिलते ही दूसरे को पछाड़ेंगे कैसे हैं ये लोग। इन्हें घृणा भी नहीं होती अपनी करतूतों पर। बेचारे लड़के और लड़कियों को क्यों ये हथियार के मानिन्द इस्तेमाल करते हैं। क्यों ये अपना गन्दा लहू उनमें उबल जाने के लिए छोड़ देते हैं?

लगता है, पूरी की पूरी नयी पीढ़ी सड़क पर आ गई है। क्या उनके लिए कोई चैन का घर नहीं? यह कठपुतली क्यों है? क्यो इनकी हरकतों से ऊबकर बार-बार जनतन्त्र को कर्फ्यू का पहरा देना पड़ता है?

अचानक शोर होता है। कुछ लड़कियाँ मेरे कमरे के दरवाजे पर थाप देती हैं जो भीतर से बन्द है। मैं अक्सर अपने को बचाती रहती हूँ इन सबसे मुझे इनकी चालचलन कत्तई पसन्द नहीं। लड़के तो लड़के, ये लड़कियाँ लड़कियों की तरह क्यों नहीं रहती? क्यों वे उनके हुजुम में शामिल होना चाहती हैं? मैं सोचती हूँ कि दरवाजे पर थापने वाली वही लड़कियाँ तो नही है जिनसे सिन्डिकेट के मेम्बरों ने उस दिन पूछ-ताछ की थी?

'आप हॉस्टल में क्या तब्दीली चाहती हैं?'

'हमारे डायरेक्ट वार्डेन बी० सी० हों।'

'सो तो हो गए हैं। और कोई बात ?'

'हमें शासन के शिकंजों से मुक्त कीजिए।'

'सो तो हैं आप।'

फिर भी मैं देखना चाहती हूँ कि बात क्या है ? दरवाजा खुलते ही पल्ला को धक्के देकर लड़कियाँ भीतर घुस आती हैं। उनकी साँसें रुकी की रूकी हैं। मैं उनसे पूछना चाहती हूँ कि आखिर यह बदहवासी क्यों ? मुझको विश्वविद्यालय, प्रोफेसर, थाना, पुलिस, सिन्डिकेट, कमीशन से जुड़ी कितनी कितनी बातें मन में आती हैं। फिर भी मैं उनको बाध्य करना नहीं चाहती। वे खुद कहेंगी तो कहेंगी, वरना जोर डालकर मैं पूछूंगी नहीं। कमबख्त ये कब किस चक्कर में फाँस लें ?

एक लड़की मेरे कान से मुँह सटाती है और फुसफुसाकर कहती है—

'कुछ सुना तुमने ? सिर्फ कविता ही करती रहोगी कि बाहर भी देखोगी क्या हो रहा है ?'

मैं अनमनी हो जाती हूँ। होगी कोइ वैसी-वैसी बात। कल यूनिवर्सिटी की सड़क पर एक लड़का और एक लड़की बेहद आपत्तिजनक मुद्रा में देखे गए। वह लड़की कोई और नहीं, डॉ० सिंह की भतीजी थी। वह लड़का उसके क्लास का टॉपर है। साली उसको एक्सप्लायट करना चाहती है। या कहेगी कल फिलासफी डिपार्टमेंट में एक लेक्चरर ने एक लड़की को अकेले में इसलिए बुलाया कि उससे बाहर मिलने का प्रोग्राम तय करना था। बातें तो यहाँ तक होने लगी हैं कि ट्यूशन पढ़ाने के बहाने लेक्चरर लड़कियों से रोमांस करते हैं और फिर उसके कितने ही दुखद अन्त सामने आते हैं।

मेरा कमरा उड़ने लगता है तरह-तरह की बातों से कितनी अटकल बाजियाँ भी भिड़ाई जा रही हैं। मुझे पूछना ही है, नहीं तो ये छोड़ेंगी नहीं। मैं पूछती हूँ—'कहो क्या गुल खिले हैं ?'

'तो तुम्हें मालूम है ?'

'नहीं रे, गुल कह दिया तो समझी मालूम है ? बताओ तो।'

'रह गई तू सब दिन ऐसी की ऐसी। अरी, कुछ प्रेम-प्यार का पहाड़ा भी

सीख। जानती हो, उस दिन दीदी उखड़ी-उखड़ी क्यों थी ? साइकोलौजी ऑनर्स में आई थी न दुबली-पतली एक लड़की जो बहुत दिनों तक हॉस्टल में कभी नहीं रही। दो महीने पर आकर सिर्फ हॉस्टल का ड्यूज भर जाती है। पता नहीं और दिन कहाँ रहती है। कभी सुनती हूँ कि अपनी बहन के यहाँ से क्लास करती है, कभी अपनी मौसी के घर से आती है। जब इतने सम्बंधी उसके इस शहर में हैं ही तो फिर हॉस्टल में पैसे क्यों बहाती हैं ?'

मैं बात को किसी अंजाम तक नहीं पहुँचते देखकर टोकती हूँ।

'आखिर हुआ क्या ! लड़की का हुलिया ही बताओगी कि उसके बारे में कुछ कहोगी भी ?'

'देखो न, ये दुबली-पतली लड़कियाँ तो सेक्स के मामले में और भी तेज होती हैं। कालेज की बाउन्ड्री वाल के पीछे जो मकान हैं उनमें से ही किसी में एक लड़का रहता है। इंगलिश फाइनल इयर का स्टूडेन्ट है। जाने कब से दोनों का घपला चल रहा था। उस रात जो सज-धज के वह बाहर निकली तो हम लोगों को लगा कि वह फिर किसी तीसरी बुआ के घर जा रही है, पर वह तो गई थी फुलझड़ी छोड़ने।'

सपना बात काटती है—

'पटाखा कहो, वैसी लड़कियाँ एकदम से पटाखा ही छोड़ती हैं। फुलझड़ी भी हो तो पटाखा की तरह ही छोड़ेंगी।'

'हाँ फिर···'

'दीवार के इस पार यह थी और दीवार के उस पार वह। लड़के ने उसकी माँग में सिन्दूर भर दिया और उसको जाने रात में कब तक घुमाता रहा। फिर स्टेशन से ही एक लड़के के द्वारा पत्र लिखकर अपने बाप को भेजा कि ऐसी-ऐसी बाते हैं। कहिए तो घर आऊँ, अन्यथा कहीं चला जाऊँ शहर छोड़कर। बाप भी क्या होता है इकलौता बेटे का ! शहर छोड़ने का नाम सुनते ही लहू राख होने लगता है। फिर तो रो-

धोकर दोनों को बुला लिया उसने। अब वह उसी लड़के के साथ रहती है।'

बीच में रेखा बोल उठती है—यह तो अच्छा किया उसने। न धूम न धड़ाका, दहेज की सौ झंझट, बाप की परेशानी। लड़की ने अपना ब्याह कर लिया।'

'मगर इस तरह से ब्याह होने लगे तो सड़क चलते पीछे से कोई सिन्दूर छिड़क दे तो हो जाना उसकी जोड़ू। है न ?'

'और फिर हॉस्टल की सोचो। उसका गार्जियन आएगा और पूछेगा तो दीदी क्या कहेगी ?'

'दीदी ने वैसी लड़कियों का एडमिशन ही क्यों लिया ?'

'किसी के चेहरे पर थोड़े लिखा होता है कि कौन कैसी है ?'

'लड़कियों के आचरण को वाच करना चाहिए दीदी को।'

'वाह सती सावित्री, तब तो सब से पहले तुम ही निकलोगी।'

मुझे इस घटना पर और कहना ही क्या है ? पर इतना कहती हूँ कि 'दीदी को क्या मालूम कि लड़कियाँ कालेज जाने के बहाने कहाँ जाती हैं ? कौन कहाँ गुलछर्रे उड़ा रही है ? दीदी क्या सब के पीछे-पीछे घूमेंगी ? असंभव है किसी के लिए भी इन सब तरह की बातों की एक साथ जानकारी रखना।'

इतना कहकर मैं चुप होना चाहती हूँ कि दीदी बरामदे में आती दीखती हैं। मुझमें घबड़ाहट भरने लगती है। अभी इस वक्त दीदी इधर क्यों आ रही है ? देखती हूँ कि दीदी कमरा नम्बर नोट कर रही हैं। प्रसन्ना भौमिक ने अपने कमरे की बत्ती जलती छोड़कर कमरा बन्द कर दिया है और आज उसके आने का तीसरा दिन बीत रहा है, जबकि वह एक दिन के बाद ही लौटने वाली थी। हॉस्टल में इस तरह की गैर जिम्मेदारी वाली बातें भी लड़कियों की ओर से होती रहती हैं। यह सही है कि सब ऐसा नहीं कर सकतीं। प्रसन्ना का सम्बन्ध उपद्रवी लड़कों के लीडर

से है। हॉस्टल में किसी प्रकार की सख्ती उसपर बरती गई तो वही लीडर देख लेगा सब को। प्रसन्ना इसलिए उतनी बेफिक्र रहती है।

'तो क्या सबको किसी लीडर के साथ हो जाना चाहिए।'

'मेरे कहने का मतलब यह कब हुआ ? मैंने बस इतना कहा कि इससे जहाँ भी रहो, दबदबा रहता है। दीदी भी इसलिए प्रसन्ना को नहीं टोकती कि कौन उस बेहया से लगे।'

'वाह, तब तो फायदा ही है।'

'उधर उस फूलकुमारी को देखो। घर से कोई लेने नहीं आया तो रो रही हैं। उनकी आँखें सूज गई हैं।'

'यह सब कुछ ही दिनों तक। पंख लगते देर नहीं कि ये भी हवा में उड़ती नजर आयेंगी। सब लड़कियों के साथ तो वैसा ही होता है। कुछ ही ऐसी होती हैं। जो पहले से ही ट्रेन्ड होती हैं। वरना अधिकांश तो यहाँ की संगति में ही सीखती हैं।'

'कितना बड़ा प्रशिक्षण केन्द्र है यह। पढ़ना-लिखना सीखो, सभ्यता-संस्कृति से लेकर टोस सेंकने और चाय बनाने तक, चोरी-चपाटी से लेकर प्रणय-लीला तक।

मुझको नहीं लगता कि इन बोलने वालियों में से सब की सब दूध की धोयी हैं। फिर भी कहना तो ठीक ही है। दीदी अब दूसरे वार्ड में चली गई है। मैं कान्ता को भेजती हूँ कि देखो उधर क्या हुआ ? उसको लौटने में चार दिन भी नहीं लगते। कहती है—'दीदी बहुत गुस्सा हो रही हैं। सारा बाथरूम इतना गंदा कैसे हो गया है ? सारे मासिक धर्म के गंदे कपड़े लैट्रिन के ऊपर ही क्यों फेंक दिये जाते हैं ? मेहतरानी एक ओर मुजरिम बनकर खड़ी है। बड़ी ही दयनीय होकर कहती है—दीदी जी, रोज तो लैट्रिन की सफाई होती है। रोज ये गंदे कपड़े फेंके, जाते हैं। फिर पता नहीं कहाँ से आ जाते हैं।'

एक लड़की चुहल करती है—'ऊपर से आ टपकते हैं।'

एक दाई भय और विनय से जिसके हाथ जुड़े हैं; कहती है—'दीदी जी सौ, सवा सौ लड़कियों के रहने में तो यही सब होगा। उस पर से भी० सी० साहब कहते हैं कि बगल के हॉस्टल की लड़कियों को भी इसमें लो। दूसरे कालेज की लड़कियों का एडमिशन भी इसमें करो। दीदी जी, ऐसा नहीं होने दीजिएगा। नहीं तो दिन भर एक मेहतरानी को लैट्रिन में बैठाना होगा।'

दीदी उसको डाँटती है। वह चुप लगा जाती है। मैं गीता को समझाते हुए कहती हूँ कि 'कितनी गंदी हैं लड़कियाँ, जी। टिन तो सब वार्ड के लैट्रिनों में रखे हैं। यदि कायदे से गंदे कपड़े उनमें डाल दिए जाएँ तो इतना अशोभन थोड़े लगेगा। इनमें से कुछ लड़कियाँ ही सबको उघाड़ करती हैं।'

जाने कब जाकर खाती हूँ और इतनी गहरी नींद आ जाती है कि कुछ पता नहीं चलता। रात गये एक बार नींद में ही ध्यान आता है कि 'गीतिका' के सारे गीत पढ़ाए नहीं जा सकते। निराला पर कुछ किताबें हैं पास में। कुछ किताबें कल कालेज लाइब्रेरी से इस्सू करवा ही लेनी हैं। वहाँ जो महादेव है न, हिन्दी सेक्सन का पिउन, बड़ा ही अच्छा आदमी है। कभी कुछ रुपए दे देने पर किताबें निकालने में, अनाकानी नहीं करता। जो लड़की उसको तंग करती है उसको वह भी तंग करने से बाज नहीं आता। किताबें आलमारी में होती हैं पर साफ झूठ बोल जाता है कि हैं ही नहीं। मेरे साथ उसने कभी वैसा नहीं किया। मेरे व्यवहार से काफी प्रभावित रहता है वह।

मैं करवटें बदल लेती हूँ। सटे हुए कमरे से दबा-दबा स्वर आता है। मैं चौकन्नी हो जाती हूँ। स्पष्ट सा कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता। पर अंदाजा चल जाता है। इड़ा और नीला को लाख मना किया गया कि वे एक कमरे में नहीं सोया करें, पर वे मानती ही नहीं। दोनों ने अपने दो कमरों में से एक को बेडरूम और एक को स्टोर रूम बना दिया है। हॉस्टल के नियमों की तो जैसे उन्हें परवाह ही नहीं। खाना सबको मेस में

खाना है, पर ये स्वयं बनाती है। इस तरह स्टडीरूम स्टोव के धुएँ से काला पड़ता जा रहा है। इस तरह हॉस्टल की डिसेन्सी को खराब करने का क्या मतलब है? यह तो और भी अजीब है कि हॉस्टल का प्रत्येक कमरा सिंगल सीटेड है। उस छोटे से बेड पर दोनों कैसे सोती हैं? दोनों के बारे में अजीब-अजीब बातें भी हवा में उछल रही हैं।···कि दोनों लेस बियन हैं···दोनों में असामान्य सम्बन्ध है, दोनों बड़े अमानवीय ढंग से रहती हैं। मोतीझील में कोई एक बड़ी दूकान है जिससे स्पेशल आर्डर पर ये कोई कृत्रिम साधन खरीदती हैं···।

मेरे मन में तहलका मचने लगता है। जाने कृत्रिम साधनों का इस्तेमाल वे कैसे करती हैं? मुझे तो यह सब रूचता नहीं। सपना इन बातों का पता लगा सकती है। कमबख्त है बड़ी तेज। किसी सुख का पता करना हो, सपना से बढ़कर कोई माध्यम ही नहीं यहाँ।

फिर भी मेरा मन जल में डूबते घड़े की तरह डुभ-डभ करता रहता है सोचती हूँ कि अगर ये बातें सच हैं तो इड़ा और नीला में से कौन किसकी उत्तेजना का अंग है। पता नहीं कैसे छूती है, क्या करती है। काफी मजेदार है दोनों। जब देखो एक ही तरह की मेंचिंग साड़ी ब्लाउज पहनेगी, घड़ी के बेल्ट एक होगें, चप्पलें और मेकअप भी। कभी दोनों के एक हाथ में ढेर सी चूड़ियाँ, दूसरे में एक भी नहीं। दोनों के चेहरे पर एक सी बदहवासी, एक सी अतृप्ति।

मेरा मन इतना असहज हो उठता है कि सोचने लगती हूँ—'नीला से पूछ ही लूँ तो क्या होगा? वह भली है। उस दुष्ट ने ही इसको फाँसा है।'

दोनों के होंठ सूखते रहते हैं। चेहरे की कांति कहीं खो गयी लगती है। अदम्य विलास और संपूर्ति की असुविधा ने उनको सोख लिया है जैसे।

मैं अपने से ही समझौता करना चाहती हूँ। जीने का सबका अपना ढंग है। लोग अपनी-अपनी तरह से मजे लूटते हैं। और फिर इसमें बुराई

ही क्या है ? लड़का लड़की में सम्बन्ध हो तो दस तरह की आफतें। इसमें अधिक से अधिक सुरक्षा तो होती है ! अफवाहें उड़ने को उड़ जाएँ, पर गड़बड़ी की संभावना ही क्या है ? पाकेट में निरोध रखने की जरूरत तो बिल्कुल नहीं।

मगर इस देश की सेहत को यह बात शोभती है ? मेरा सवाल ही जबाब बन जाता है—यहाँ विदेशीय क्या नहीं है ? एक भाषा को छोड़कर जो आज भी झगड़ा का विषय है। फुल पैंट पहनने में मत-विरोध नहीं; शराब पीने में मीन-मेष नहीं, बस भाषा का मसला है···दिन दिन पेचीदा होता हुआ।

कमरे की बत्ती बुझी हुई है। दीदी ने नोटिश घुमा दी है कि १२ बजे रात के बाद कमरे में बत्ती नहीं जले। कई लड़कियों ने उसका विरोध भी किया। विरोध करने में वे लड़कियाँ ही ज्यादा थीं जो रात गये आइने में अपनी विभिन्न मुद्राओं को देखती हुई किसी चुभती हुई मुद्रा का चयन कर बार-बार उसको निहार कर खुश होती थीं। अगली सुबह से लेकर ९ बजे रात तक उन्हें उस मुद्रा का प्रदर्शन करना होता था। ऐसे कई अवसर आते थे जब उस मुद्रा के बिना कुछ हो ही नहीं सकता था—जैसे लाइब्रेरी में घूमते हुए किसी प्रोफेसर पर नजर पड़ जाय, कालेज जाते या आते सड़क पर किसी मनचाहे लड़के का साथ मिल जाय। हॉस्टल के लान में सुन्दर कुर्सियाँ डाल कर बैठे हुए अपने क्लास के टापर से बतियाने का ढेर सारा जुमला मालूम हो।

मुझे अकस्मात् दीदी का चेहरा याद आता है। दरअसल आजकल उनके चेहरे पर जो खीझ है, गुस्सा है, दुख है – वह उनके किसी अंतरंग कारण से नहीं। लगता है हॉस्टल आकर वे धोखा खा गयी हैं। सचमुच हॉस्टल के भीतरी चेहरे की, असलियत की जानकारी ही किसी ने उनको नहीं दी। सभी ने सुविधाओं का ही नाम लिया। सुविधाओं ने कितना तोड़ दिया है उनको। जैसे-जैसे मैं सोचती जाती हूँ इस निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ, कि लड़के और लड़कियों में कोई फर्क नहीं है, फर्क सिर्फ बनावट

में है। वरना छोड़ दिया जाय तो वे क्या नहीं कर लेतीं—हड़ताल, तोड़-फोड़, नारे-जुलूस, पर्चाबाजी, गाली-गलौज और दलबन्दी तक।

फिलहाल यह पूरा प्रकरण ही मुझे उलझा हुआ मालूम होता है। मेरी आँखों में अब सुमि का चेहरा उठता है। हॉस्टल की इन गर्म-सर्द बातों से वह परिचित होगी ही। अपनी अन्तरंग व्यथा के बाद शायद उसकी परेशानी का कारण यह भी हो रहा हो। मगर सुमि इस बात से तो आश्वस्त होगी कि हॉस्टल चूल्हे-भाँड में भी चला जाय या बन्दूक की नोंक पर मैं कानूनी कार्रवाई में फँसने वाली नहीं। यहाँ रहने के सिवा यहाँ कि किसी नीति में मेरा कोई हिस्सा नहीं। और ये लड़कियाँ! हे भगवान्, जो लोग राजनीति को इनके बलपर नचाना चाहते हैं, उन्हें नहीं मालूम कि यदि ये आँख से ओझल हुईं तो फिर कभी देखने तक नहीं आयेंगी और छीना झपटी भी करें तो बीच में ही फुर्र···

मैं अपनी उलझनों को पायताने सरका मुँह ढँक लेती हूँ। अँधेरे में गिरगिट के खच-पच की आवाज आती है। कहीं कोई कागज खरखरा उठता है। मुझको लगता है, अब सुबह होने में थोड़ी ही देर है। मैं यों ही आँखें बन्द किए कल की दिनचर्या पर सोचने लगती हूँ।···

शील पहुँच गए होंगे···यश से ढेर सी बातें हुई होंगी। कुछ तो पता चलता कि उसने मेरे बारे में क्या कहा? मेरे बारे में उसने जरूर ही कुछ अच्छा ही कहा होगा। उसकी लौटती हुई आँखें अभी भी मेरे रुमाल पर जड़ी हैं। मैंने कितना सँभालकर रख लिया है उसको। जब कभी उससे दुबारा भेंट होगी तो कहूँगी यह रूमाल मेरा नहीं; आपका है, इसपर आपकी आँखों के साये हैं···

●

तीन

एक टुकड़ा मेघ हो या मेघों का पूरा काफिला, भटकना तो सबको है। कौन किस अंजाम तक पहुँच पाता है? अधूरे भोगने का दर्द सबको है। रात भर सुमि ने सपने में कच्चे-पक्के, नए-पुराने घरों को देखा है जिनके इर्द-गिर्द मंडराती रही है वह। उसने अपने मन पर जोर का दबाव महसूस किया है। इस तरह वह रात भर सपने में भी जागती और जागने में भी सपने देखती रही है। अब उसे किसी के सुझाव की जरूरत नहीं है। वह स्वयं यश को आगे बढ़कर थाम लेना चाहती है। उसकी आँखों का यह सुख बता देता है कि अनजाने आकाश का क्षितिज कितना रंगीन होता है। अनदेखा पाहुन कितना भला सा लगता है।

सुमि के हाथ में कलम है—थरथराती हुई। वह कागज पर ऐसे काँप रही है जैसे उसकी आत्मा साबुत कलम की नोंक पर उतर आयी हो। आज यश के तमाम खतों में उँगलियाँ डुबाकर वह लिख देना चाहती है यश के करीब अपना नाम—फूल-पत्तियों से सजा अपना नाम—सुमि। फिर जाने मन के निगूढ़ कोने में छिपी कितनी बातें रंग-रूप धरकर जनमने लगी हैं। कितनी बातें लिखनी हैं उसे। आज तक उसने अपने आपको दबाया, पर यह दबाव अपने आप आकाश लग गया है। हवा के झूले पर उड़ता हुआ चल रहा है सुमि का मन। बहुत सारी बातें लिखने के क्रम में वह महसूस करती है कि यह अनजानी दूरी उसका दम घोंट देगी। यहाँ से वहाँ तक का फासला क्या हो कि एका-एक कम हो जाए! जिसके लिए उतना ढेर सा बेगानापन पाल रही

थी, वह। लगता है, एक ही क्षण में जनम-जनम का मीत हो गया है वह। पत्र लम्बा होता चला जा रहा है···

···'बधिक तख्ता खींच दो
उस पर जीने की अवधि भी
एक अवधि होती है···'

बिना मिले किसी से विदा के क्षण की अनुभूतियाँ भी किलोल करने लगी हैं। मिला भी होता तो वही होता जो अभी नहीं मिलने पर ही हो रहा है।

दो दिनों तक सुमि की कितनी आँखें हो जाती हैं—सभी की सभी छत, बारजे, खिड़कियों, दरवाजों पर टिकी हैं। तीसरा दिन बड़ी बेचैनी में गुजरता है। आज चौथे दिन की साँझ हो रही है कुछ पता नहीं; पत्र कैसे पहुँचा, कैसे उसने खोला, कैसे पढ़ा, कैसा रखा···जवाब कैसे लिखा उसने? उधर जो पत्र आते थे तो सुमि स्थिर आँखों से उसको देखती रह जाती थी। फिर कोई एकांत तलाशकर तब धीरे-धीरे खोलती थी। उँगलियों को इधर-उधर नहीं होना था। फिर ठण्डी साँस लेते हुए कहीं छिपाकर रख देती थी—कोई वैसी जगह जो पति और बच्चों की पहुँच के बाहर हो।

मुझें मोतीझील से कुछ आवश्यक चीजें लेनी हैं। मैं बाजार जाने के पहले सुमि के यहाँ रुकती हूँ। चाहेगी तो उसको साथ कर लूंगी। अभी उसके पति दफ्तर में हैं और बच्चे स्कूल में। सुमि को अकेली होनी चाहिए थी, पर लगता है न तो वह खाली है, न अकेली। इन्तजार··· कितनी बँधी हुई व्यस्तता। आज छठा दिन है। दो दिनों में पत्र पहुँच जाता है। एक दिन बाद भी लिखा होगा तो आज पत्र को आना ही है। मैं सुमि से कहती हूँ कि वह नौकर को समझा दे और साथ चले। पर वह हिलती तक नहीं। मैं भी बाजार जाने का इरादा बदल देती हूँ। मैं सुमि के इस परिवर्तन से चमत्कृत हूँ। मैं खुश होती हूँ कि सुमि को अब सोचने और जीने के लिए वक्त की कमी नहीं है। मुझे न तो सुमि

की मानसिक अकुलाहट का पूरा पता है, न उस प्रसंग की कोई जानकारी जिससे अभी वह गुजर रही है। पर उसके चेहरे की आकुल चंचलता मुझसे छिपती नहीं है। मैं चुटकी लेते हुए कहती हूँ—'देख, राधा की तरह मत कर बैठना। जिस लड़के के साथ वह भागी थी, उसका नाम माधव था। उसके आकर्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु यही था कि उसको माधव मिल रहा था। चलो, मगर इतना तो आश्वस्त हूँ कि न तू राधा है, न वह माधव। लेकिन हाँ, तुम दोनों का एक शौक अवश्य मिलता है कि तुम्हें भी बड़े-बड़े चित्रकारों-मूर्तिकारों की कृतियाँ खरीदकर घर सजाने में आनन्द आता है।

घर का दरवाजा बन्द है। पर्दे को बगैर खोले बाहर से भीतर कर सिटकनी चढ़ा दी गई है। मैं सुमि के साथ ड्राइङ्ग रूम से सटे भीतर के बरामदे में हूँ। मैं अपने स्पेशल-पेपर की बात करती हूँ कि कैसे गत दो वर्षों से प्रेम-काव्य में एक भी छात्र नहीं आया। जायसी की अवधी तुलसी की अवधी से पुरानी और क्लिष्ट है। यों भी, पद्मावती का रूप-वर्णन पढ़ते ही बनता है। नागमती का विरह फैन्टेसी और आध्यात्मिक टच के कारण किसी सामान्य स्त्री का विरह नहीं लगता। सुमि को ये सारी बातें बकवास सी लगने लगती हैं। वह मुझको बरजते हुए कहती है—'चुप भी रहो तनु, अभी ये सब बातें नहीं रुचतीं।'

मैं झुँझलाने लगती हूँ। तो क्या मुझे किसी एपिसोड को डिक्टेट करना होगा। मुझे प्यास का अनुभव होता है। मैं ग्लास खोजते रसोई घर में जाती हूँ। ढेर सारे बर्त्तनों के बीच ग्लास दबा है। अब कौन इन सारे बर्तनों को बिलगाए। मैं वापस होती हूँ तो सुमि पूछती है--'पानी पियोगी ?'

'नहीं कोई खास जरूरत नहीं है।'

'तो क्या ढूँढ़ रही थी ?'

'कुछ भी।'

सुमि जान जाती है कि मैं कहीं से उदास हो गई हूँ। वह मुझे

मनाने की चेष्टा करती है। तभी घर में किसी चीज के गिरने की हल्की आवाज आती है। सुमि ऐसे उठकर भागती है कि मुझे एक क्षण को होता है कि वह सुमि नहीं, कोई तितली डाल के हिलते ही उड़ भागी हो। चार-पाँच दस मिनट···। सुमि को नहीं लौटते देखकर मैं भीतर जाती हूँ। उसके हाथ में एक अंतर्देशीय है।

'किसका पत्र है ?'

'किसका होना चाहिए ?

'सवाल से सवाल पैदाकर सकती हो तुम, जबाब नहीं दे सकती।'

'ऐसी भी क्या बेताबी है ? तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं लिखा है इस पत्र में।'

'मुझे तो अब तक पता नहीं कि पत्र कहाँ से आया, किसका है ? मैं अपने लिए उसमें कोई अपेक्षा क्यों ढूँढूँ ?'

सुमि मुझे एक चपत लगाती है। 'पढ़ो, लो, यश का पत्र है। जबाब तुम्हें ही लिखना है।'

मेरे हाथ में पत्र यश का है, पर आँखों में उभरती आकृति शील की है। पता नहीं, मैं कहाँ हूँ ? इतनी बेसुधि आई कहाँ से ?

'कैसे पहुँचा वह ? कुछ लिखा है इसके बारे में।'

सुमि मेरी मनःस्थिति में झाँक लेती है।

'हे, तुम क्या बोल रही हो ? मैंने तुम्हें पत्र पढ़ने कहा न ?'

मैं पत्र नहीं पढ़ती हूँ। मुझे लगता है कि इस स्थिति में सुमि से कितनी दूर किनार हो गई हूँ मैं। मैं कहाँ हूँ वहाँ, जहाँ सुमि है। मगर मुझको सुमि से ईर्ष्या नहीं। सुमि आकाश तक उठना चाहेगी तो मैं अपना कन्धा लगा दूँगी।

मेरा मन, पता नही, क्यों खिन्न हो गया है। बाजार भी नहीं जा सकी हूँ। एक हारलिक्स खरीदना था। भीतर कमजोरी लगती है। अपने ऊपर फिर बरसने लगती हूँ। क्या-क्या बातें मन में आ जाती हैं।

सुमि क्या सोचेगी ? एक ही चीज के बारे में दो तरह की मनःस्थिति कैसे अख्तियार कर लेती है तनु ! उस दिन तो मैं उसे चढ़ा रही थी, पर आज जब सिलसिला बँधने को आया है तो जाने क्या ऊटपटांग कर रही हूँ।

मैं अपने को बदल लेती हूँ। टेबुल पर रखा आइना उठाती हूँ और उसको ऐसे रखती हूँ कि सुमि का पूरा चेहरा उसमें आ सके। मैं सुमि के चेहरे पर उसी सन्तोष की भाषा पढ़ सकती हूँ। पर यह पढ़ना कितना कठिन है, सुमि मुझे उन वाक्यों को दिखाती है जहाँ यश ने लिखा है—'मैं आ रहा हूँ, आ रहा हूँ, आ रहा हूँ।'

अकस्मात मुझे याद आता है कि आज सेमिनार में चौबे निबन्ध पढ़ने वाला है। सुमि इन चीजों में कभी मेरे साथ नहीं रहती। उसे घर से फुर्सत ही नहीं मिलती। आज तो और भी नहीं जाएगी वह। मैं उसको छेड़ना नहीं चाहती। उसे कहकर चल देती हूँ।

मैं हॉस्टल और कालेज के बीच इतनी व्यस्त हो जाती हूँ कि सुमि के घर नहीं जा पाती। उस दिन ट्यूटोरियल में भी वह नहीं थी। सर पूछ रहे थे कि क्रमसंख्या ४१ को क्या दिक्कत है। उसे ट्यूटोरियल में रेगुलर होना चाहिए। मैंने कह दिया था कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है। सर ने दुबारा पूछा था —

'आप उनको जानती हैं ?'

मेरे मन में जैसे रसगुल्ले फूटने लगे थे। तो क्या सर भी उसके लिए'' अलग से उसके बारे में क्यों पूछ रहे हैं ?

'मेरी सम्बन्धिनी है।'

'अच्छा !'

सप्ताह से अधिक हो गया है। घर से पैसे नहीं आये हैं। सोचकर समय बर्बाद करूँ—इसके पहले सुमि के घर चल देती हूँ। सुमि औंधे मुँह लेटी हुई है। तकिया पर इस तरह लिखा है—यश—लगता है लच्छियों से कढ़ाई की गई है। कितनी बार कलम चलाया होगा सुमि ने। तब

इतने मोटे अक्षर उभरे होंगे। वैसे उसकी लिखावट बड़ी महीन होती है। सुमि मुझको देखते ही उठती नहीं, मुझको भी अपनी बगल में लिटा लेती है। मेरी देह गुदगुदाती है। अचानक यह सब क्यों ? सुमि की आँखें चमक रही हैं।

'जानती हो, यश आया और चला भी गया। मैंने तुम्हारे हॉस्टल एक लड़के को भेजा था, पर किसी लड़की ने बता दिया कि तुम नहीं हो।'

'पर कब'

'चौथे दिन।'

'मगर मैं तब तो वहीं थी। उसने लड़की का नाम नहीं पूछा था ?'

'तुम्हारा अभाव बहुत खला। मगर पूछोगी कि क्या हुआ ?'

'हाँ-हाँ बताओ न ! जरूर बहुत अच्छा हुआ होगा। मेरे बारे में तो नहीं पूछा ?'

'तुम्हारे बारे में उसको क्या मालूम ? पर मैंने सब कुछ बताया कि कैसे तुमने भरोसा देकर मुझे जीवित रखा है।'

'क्या वह तुम्हारे घर आया था ?'

'नहीं, वह होटल में टिका था और खोज करते हुए आकर मिला था।'

'अब मुझे नहीं पूछना कि आगे क्या हुआ। मगर अब क्या हाल है ?'

'जाते ही उसने लिखा कि मैं गया ही क्यों ? मैं तो पहली बार वहाँ यूँ ही गया था सिर्फ तुम्हारा अन्दाजा लेने। पर क्या मालूम वहीं रह जाऊँगा। देखो, पत्र खुद ही पढ़ लो।

मैं बहाना करती हूँ। रहने भी दो, मैं पढ़कर क्या करूँगी। वह सब सुख तुम्हारे लिये है। उसमें किसी को साझा मत करो सुमि। मगर वह पत्र खोलकर मेरे सामने कर देती है। मैं पढ़ते-पढ़ते डोलने लगती हूँ। सुमि, प्रिय सुमि···जाने कितनी बार यह आकुल सम्बोधन मेरी आँखों से गुजरता है। मैं तन्मय हो जाती हूँ। सुमि क्या सोचेगी, इस तन्मयता से, इसलिए, उबरने की कोशिश करती हूँ।

'तुम्हारी साँसों के तूफान को उसने सँभाल तो लिया था।'

सुमि लजाती है। फिर झिड़ककर कहती है, 'तुमने कसम खाई है क्या कि मैं जो कहूँगी, तुम वह न करोगी। अपने मन की तो हरदम करती हो, कुछ मेरे भी मन की करो, तनु। पहले पत्र पढ़ो। बताओ, मैं गुलमुहर की छाँह में तप नहीं रही हूँ ?'

मैं सुमि को कनखियाती हूँ। मुझे उसका कोई चेहरा अब नजर नहीं आता है। महज गुलाब की कुछ पंखुड़ियाँ जिन पर ओस की थिरकती हुई बूँदें। अधिक खुशी के मारे जी घबड़ाने लगता है।'शाम के पाँच'—मेरे मन में बात आती है कि वह यह सब क्यों लिखता है ? यश के लिए यह लिखना जरूरी क्यों है कि वह पत्र किस समय लिखता है ?

'आज सुबह ही तुम्हें एक पत्र लिखा है क्या ? पता नहीं। समय गुजारे नहीं गुजरता। हर पल तुम मेरे भीतर बजती रहती हो—एक उदास बाँसुरी सी—दिनों दिन खोखले हो रहे मेरे अन्तस में और-और गूँजती। तुम से दूर होकर मैं कितना कातर हो गया हूँ। कितना निरीह ! कितना असहाय ! कितना अकेला ! मृत्युमुखी !

'कभी-कभी सोचता हूँ बेकार गया था वहाँ—तुम्हारे पास। हाँ, यह सच है कि जो सुख उन कुछ दिनों में जिया है मैंने वह अनुपमेय है पर साथ वह एक ऐसी तेज उजली कौंध है जो एक बार दमककर और अँधेरा गहरा जाती है पीछे; रास्ता चौंधियाये पाँवों को नहीं दीखता; अभ्यस्त अँधेरा फिर पीड़क हो जाता है;—और अँधेरा जिसकी नियति हो उसके लिए—केवल एक पल को उजाले की उतरी आग और फिर उसका प्रत्यावर्त्तन - तुम क्या जानो कैसा है ! किसी चीज में जी नहीं लगता। बार-बार चारों तरफ की भूरी खामोशी को तोड़कर किसी चिड़िया की तरह उड़ जाने का मन करता है, वहाँ—तुम्हारे पास—तुम्हारे वक्ष की हरियर शाखों पर विरमने के लिए। पर जानता हूँ, वह संभव नहीं। और यह जानना कितना बेधक है। मेरा शैशव क्यों समाप्त हो गया ? कितना भला था मेरा अज्ञान।'

आगे की पंक्तियाँ मैं पढ़ नहीं पाती हूँ। किन्हीं क्षणों में मैं भी यही

सोचा करती हूँ कि क्या हो गए वे दिन ? रहस्य का रहस्य ही कितना प्रिय था मुझे ! वह शायद कुछ कम रहस्य था। रहस्य कितना गहरा गया है, अब जब कि मैं सोचती हूँ, कि उसके अंतर्लोक में मैं विचर आयी हूँ। नहीं, तो फिर क्यों यह बेचैनी, यह रिक्ति का अहसास, यह छटपटाहट···। यही अहसास पहले सुमि में था जो अब नहीं है। अब वह भीगी थर-थराहट भी उसके होंठों पर नहीं है जो तब स्वयं उसके और मेरे लिए अत्यन्त पीड़क थी। सुमि टेबुल ठीक करते हुए कहती है—'यश बार-बार कह रहा था कि तुम आओगी नहीं ? मुझे बुलाओगी नहीं ?'

मैं सुनते ही श्लथ हो जाती हूँ। लगता है, मुझसे अब कुछ संभव नहीं। मैं चीखना चाहती हूँ 'सुमि, सुनो, मुझसे अब कुछ संभव नहीं। मैं इम्तिहान भी नहीं दे सकती ! बिल्कुल नहीं। कितने दिनों से किताब नहीं छुई। न ऍकेडेमिक, न लिटरेरी। न कुछ लिखा ही। कुछ नहीं : एक शून्य में मैं हूँ, एक शून्य मुझमें है।'

दिल्ली में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम होने वाला है जिसमें हॉस्टल की कुछ लड़कियाँ भाग लेने जा रही हैं। उनमें मेरा भी एक नाम है। मगर अभी तक सूचना नहीं आई, दिल्ली कब जाना है। पर जैसा कि अन्दाजा है वह तारीख तीन सप्ताह बाद होगी।

'यश मद्रास जा रहा है, तनु। लिखा है, वहाँ से तुम्हारी पसन्द की क्या चीज लाऊँ ?'

सुमि न केवल धागे लपेट रही है, मैं भी उसमें लिपटी चली जा रही हूँ।

'तनु, उसने कितना लिखा है कि यद्यपि कुछ दिनों के लिये अपनी जगह से बाहर रहूँगा, पर तुम पत्र लिखती रहना। लगातार वे मेरे कमरे में सुरक्षित पड़े रहेंगे।'

'ठीक तो है, लिखती रहना।'

इतनी देर के बाद सुमि मेरी आवाज की ठण्डक को पकड़ पाती है। वह इस तरह देखने लगती है कि कभी मुझको देखा नहीं। मैं संभलती हूँ।

'उसने अपना संकलन भेजने के लिए तुम को नहीं लिखा ?'

'क्या फायदा बताने से ही ! बातें करती-करती तुम एकदम से कोल्ड क्यों हो जाती हो ? तुम्हें कुछ बुरा तो नहीं लग रहा । जब मैं अन्यमनस्क होती थी तो तुम मुझे गंध-राग सिखाया करती थी और आज ऐसे कर रही हो जैसे कुछ पता ही नहीं । तुम मुझे छीलना चाहती हो क्या ? सम्बन्ध प्याज नहीं होता तनु कि उसका छिलका-छिलका हटाकर देखा जाय कि उसके भीतर में क्या है ?'

मैं स्वयं पर दुखी हो उठती हूँ । ऐसा कौन सा पत्थर गड़ गया है जो मेरे और सुमि के बीच बहते सम्बन्ध के पानी को रोक रहा है । मैं खुश होने का प्रयत्न करती हूँ ।

'हाँ रे, तुमको तो इतना भय लगा मुझसे कि यश को मुझसे ही बचाकर रखा । मैं देख ही लेती तो क्या हो जाता ?'

वह अंदाज को बदलती नहीं और उसी तरह कह देती है—

'तू क्वाँरी जो है । कहीं मन चला जाता !'

'उसने तुम्हारी तस्वीर नहीं माँगी ? ले तो गया ही होगा !'

'नहीं, माँगी जरूर है, ले नहीं गया था ।'

'इसी तरह जवाब दोगी ?'

'तुम पूछोगी जिस तरह···वैसे विश्वास न हो तो पढ़ लो···।'

'एक तस्वीर भेजो और—जल्दी । तुमने एक ब्लाउज नहीं दी । बहुत से वादे तुमने झुठलाये हैं । क्या उसे भेजना सम्भव है ? पार्सल द्वारा । और सुनो, वह कागज भी भेज देना, जिन पर मैंने सफर के दौरान में लिखा है । तुम्हारे यहाँ से आने हुए ।'

शाम के सवा पाँच हुए हैं । आखिर कब तक, कब तक पढ़ती रह सकती हूँ पत्र—लौटना ही होगा अपने इस लोक में—पीले, करुण, उदास लोक में । लगता है, किसी भी उष्ण देह के करीब थी मैं अब तक किसी कन्धे पर झुकी हुई । लौट रही हूँ फिर अपने कमरे में—जहाँ पीत मुख किताबें हैं और तेलायी—ठण्डी दीवारें । यह मेरी नियति है । सुमि

से कहती हूँ—'तुम मेरे उदास होने का बुरा क्यों मानती हो ? यही मेरी नियति है मेरी दोस्त ! तुम इतना तो बहलाती हो मुझे। और क्या कर भी क्या सकती हो तुम ? अब बताओ—यहाँ से जाकर क्या करूँगी ? अभी क्या है मेरे पास करने को ? उचटे मन से पढ़ा भी तो नहीं जाता।'

अपने नहीं कुछ करने के सुख या दुख को फिर दुहराती हूँ कि सुमि ठीक से सुनले—'अभी क्या है मेरे पास करने को ? कुछ नहीं—'

मैं लौट जाती हूँ। रात भर मैंने केवल छत को निहारा है—क्योंकि ऐसे में कुछ भी हो नहीं सकता जब मन में कोई बात आड़ी तिरछी होकर अटक गई हो। मैं अपने मानसिक परिवर्तन से दुखी हूँ। लगता है इससे हमारी दोस्ती पर असर पड़ सकता है। मैं सोचती हूँ कल चाहे कालेज में भेंट हो या घर पर, नये सिरे से सिलसिला शुरू करूँगी बातों का—वह सिलसिला जो पिछले कुछ दिनों से डिस्टर्ब हो गया है। सुमि से अगर मन-मुटाव हो जाय तो मैं कितनी अकेली हो जाऊँगी। मैं सोचकर ही काँपने लगती हूँ। तभी दरबान आकर मेरे दरवाजे पर दस्तक मारता है।

'कौन'

दरवान मेरी आवाज पहचानकर चुप लगा जता है उसने गलत दरवाजे पर दस्तक लगा दी है। पैसेज में जीरो पावर का बल्ब जल रहा है और रोशनी रात गए इतनी मद्धिम लगती है कि ठीक से रूम नम्बर पढ़ा नहीं जा सकता। दीदी ने हल्के आसमानी रंग पर उजले से जो लिखा दिया है। मेरे मन में उत्सुकता जगती है, पर उठने का जी नहीं करता। सो मैं पड़ी रह जाती हूँ। बगल के किसी दरवाजे के खुलने की आहट आती है। कितना भी धीरे क्यों न खोलो, लोहे की छिटकनी इतनी बड़ी है कि आवाज हो ही जाती है। मैं सतर्क हो जाती हूँ। इतनी रात में किसका विजिटर आया ? दीदी नीचे हैं कि नहीं ? दरबान ने अवश्य उनको नहीं जगाकर लड़की को जगाया है। जरूर उसके विजिटर ने या तो कुछ रुपए दिए हैं या मारने की धमकी। बेचारा करे भी क्या ? जान और पैसे दोनों ही प्यारे हैं। इस वक्त अपने को इस सोच से काटना जरूरी लगता

है अतएव पूरी तरह अपने को भटकने की कोशिश में लगती हूँ। जैसे मैंने कुछ सुना ही नहीं। किसी को जाते देखूँ भी कि कह दूँ देखा ही नहीं। इस बेकार की चख-चख में कौन पड़े।

आठ बज गये हैं। मेरी नींद आज टूटने का नाम ही नहीं लेती है। एकाएक देखती हूँ कि रोशनदान से धूप मेरे कमरे को भिगो रही है। हर कहीं उजाला है - बिस्तर, टेबुल, अटैची पर। मैं अनमनी-सी उठती हूँ और बाथरूम जाती हूँ। सोचती हूँ ब्रश कर लूँ, पर नहीं करती। दरवाजा को वैसे उटका पेट के बल लेट जाती हूँ। थोड़ी देर के बाद किसी के आने की आहट का मुझे कुछ भी पता नहीं है, पर पीठ पर कोमल स्पर्श का पता चल जाता है। जानकर भी लेटी रहती हूँ जैसे यह पीठ मेरी नहीं, किसी और की है अचानक कान दुखता है कि हाथों से बचाने के लिए उलट जाती हूँ। मेरे कान पर हाथ सुमि का है। इतने सबेरे वह क्यों आयी है— कुछ पता नहीं चलता। पूछने पर बताती है कि उसके पति आठ चालीस की गाड़ी से पटना चले गए हैं। केवल फोर्थ पीरियड में ही एक क्लास है उसका। शेष सारे दिन खाली हैं। यदि मैं चलूँ तो सर से मिल लिया जाय। परीक्षा की तैयारी भी करनी है। मैं हँसकर पूछती हूँ—'दूसरी परीक्षा का क्या हाल है? तैयारी ठीक से तो चल रही है?'

'हटाओ बेकार की बात।'

'यह सब मुझे देखकर तो नहीं कह रही हो? चिट्ठियाँ आती हैं न? जानती हो कल पूरी रात तुम्हारे लिए ही सोचती रह गई। तुम कितनी··· कितनी···

'कहो न, बुरी हो।'

'नहीं, बहुत अच्छी हो।'

'रात भर तुमसे बातें करती रही हूँ और फिर तुमसे बातें करने को जी करने लगा है। तुम अन्दाजा लगा सकती हो आसानी से। बाहर कोई चोट लगी होगी। बाहर के जगत का कुछ बेध गया होगा। हाँ, थोड़ी देर पहले पूरी तरह झनझना उठी थी।···'

सुमि परिहास करने लगती है—'तुम तो कहती थी कि उस पर साहित्य का दौरा आता है। लगता है, तुम भी उसी चपेट में आ गई हो।'

'तुमने भी क्या बात कह दी। साहित्य की समस्याओं ने तो और भी तोड़ दिया मुझको। यहाँ तो कितने ही लोगों को अपने साहित्यकार होने का बड़ा मुगालता है।'

मैं शायद यह कहकर बातचीत का मुद्दा बदलना चाहती हूँ। पर साहित्य का नाम लेकर ही एक घनी उदासी में फँस जाती हूँ। क्या-क्या नहीं झेलना पड़ता मुझको इसके नाम पर? उन तथाकथित साहित्यकारों की टुच्ची हरकतों का क्या प्रतिकार मैं करूँ? उनकी नोटिश लेना भी मुझे नहीं शोभता। मेरे यहाँ रहने का अर्थ साहित्य-क्षेत्र से उनका विस्थापित हो जाना है, ऐसा वे समझते हैं। फिर मेरे पास अवकाश नहीं कि मैं उनकी दोस्ती कुबूल सकूँ और खुद को उनके साथ भटकाऊँ। नतीजा होता है विरोध। एक स्वनाम धन्य लेखक ने, पता चला है, मुझपर एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने यह साबित करने की पुरजोर कोशिश की है (केवल कसमों के द्वारा, प्रमाणों के द्वारा नहीं) कि मुझपर छायावादी कविताओं का गहरा प्रभाव है, यानी मेरी कविताएँ छायावादी कविताओं की छायायें लिए हुई हैं। अविनाश के बारे में भी लोग कहते हैं कि वे विदेशी कविताओं की उल्था भर हैं। मैं उसके बारे में यह भी सुनती रहती हूँ कि वह एक पूँजीवादी मस्तिष्क का व्यक्ति है (उनपर पैसे खर्च नहीं करता, इसलिए)। किसी कस्बे के किसी अज्ञात या अल्पज्ञात से पत्र में इन साहित्यकारों का लेख छप भी जाता है, पर इससे क्या? इन लोगों के विरोधों से तो और भी मैं सशक्त हुई जाती हूँ। मेरा एक ही लेख छपता है और ढंग का तो छपता है) सुमि के कन्धे पर सिर रखकर कहती हूँ। 'बताओ, मुझे क्या करना चाहिए?'

वह व्यक्ति जो कल तक पत्र-लेखक था, चाहता है कि उसको भी लोग साहित्यकार कहें। लेकिन क्या यह उसको अतिरिक्त गौरव देना नहीं हो जायगा? हाँ पर्दे के पीछे जो शख्सियत है, उसे बेनकाब होना जरूरी

है। मुखौटाधारियों के मुखौटे जब तक नीचे नहीं जायेंगे—हिन्दी साहित्य में आपाधापी मची रहेगी। फिर इनके तो ठोस सबूत हैं। इस पूरे तिलिस्म को अब अपना बायाँ हाथ हिला कर तोड़ा जा सकता है। इसका मुझे भरोसा है, यह कोई तर्कहीन गुमान भर नहीं। पर समय आने पर ही और वह समय अब बहुत करीब आ पहुँचा है।

मैं सुमि को सूचना देने भर के लिए कहती हूँ 'अब शायद मैं दिल्ली नहीं जा सकूँ। यदि हुआ तो ताजी लिखी कविताएँ वहाँ पढ़ी जाने के लिए भेज दूँगी—डाक द्वारा। कोई बहुत बड़ी बात नहीं यदि मुझे दो-चार दिनों के लिये घर जाना पड़े। कई तरह की उलझने हैं। पीछे विस्तार से बताऊँगी।'

मुझें याद आता है कि मैंने सुमि से हाल-चाल तक नहीं पूछा और अपनी बातों से उसको बोर कर रही हूँ।

'ठीक हो' बहुत-बहुत याद आती है तुम्हारी। 'सुबह करना शाम का है लाना जुए-शीर का'

सुमि मेरे गाल पर उँगली मार देती है। 'शायरी बघार रही हो?'

'कोई दिक्कत है तुमको?'

'हाँ, बहुत-बहुत।' सुमि की आँखें किसी गहरे एकांत में खो जाती हैं। पता नहीं वह क्या देख रही है। कितनी मुक्त थी मैं पहले? किसी के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं।

'लेकिन अब?'

'अब क्या?'

'सच कहती हूँ, कभी-कभी बहुत कमजोर महसूस करती हूँ खुद को। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। पता नहीं, कितने स्तरों पर लड़ती रही मैं बराबर। पता नहीं, कितना कुछ गँवाया है, क्या कुछ पाया है। पर कभी कोई आंतरिक बेचैनी नहीं रही। पर जब भी उसके विषय में सोचती हूँ, और ऐसा कब है जब नहीं सोचती हूँ (?), मन कहीं कमजोर हो जाता है। उसे पा सकूँगी हमेशा-हमेशा के लिए? नहीं, शायद नहीं।

कहीं कुछ है जो बीच में है। जो बीच में है और हमें अलग करता है। यह उस पर है कि वह इस अलगाव को कितना कम करता है, कितना कम कर सकता है। पर सवाल यह है कि कितना करना चाहेगा ? और यही वह जगह है जहाँ मेरे पाँव मुरकने लगते हैं।'

मैं सुनती रहती हूँ। क्या करूँ कि सुमि को लगे कि मैंने पूरा का पूरा सुना है जो कुछ उसने कहा है। सुमि इसमें मेरा क्या सहयोग चाहती है ? क्या मैं कुछ कर सकती हूँ इसमें ? मैं अगर यही सब किसी के बारे में उससे कहूँ तो वह क्या करेगी ? कुछ करेगी सुमि ? मगर पूछूँ तो कैसे ? मैं अपनी निजता खोलना नहीं चाहती।

लगता है कि मेरे रोम-रोम में गन्ध का झरना बहने लगता है। मैं अपने से कहीं दूर चली जाती हूँ। स्वयं से कहती हूँ—'क्या शील जानता होगा कि मैं अभी उसकी दिशा में मुँह करके बैठी हूँ—और उसकी अनजानी देह गन्ध में भींग रही हूँ। ये दीवारें और नदी फैलाव और यह जगत : कोई नहीं रोक सकता मुझे।'

मैं अपने से बाहर होती हूँ। 'सुमि लिख दो न तुम यह सब कुछ आज ही। जो महसूसती हो, लिख ही देना चाहिए। बातें मन में सड़ें और दुर्गन्ध फैलाएँ—इससे बेहतर है कि वे बातें मन से निकाल दी जाएँ। हो सकता है, बातें बेवजह नहीं जनमती हों, इसलिए तो और भी जरूरी है कि वे सारी बातें उसको लिख दो कि जब जब उसके बारे में सोचती हो तो तुम्हें कैसा लगता है ?'

सुमि कहने लगती है—अच्छा चलें, देर हुई। वह मुझे खींचकर निकालना ही चाहती है कि मैं चिचिया उठती हूँ—'अरे तैयार भी तो हो लेने दो—ऐसी ही ले जाओगी !'

मैं तैयार होने लगती हूँ। मोहन ऊपर आता है। 'आज खाना खाइएगा कि नहीं।

'बनाओ न, देखा जाएगा। नहीं भी खाऊँगी तो पैसे दे दूँगी।

मोहन फिर भी खड़ा है। मैं खीझती हूँ—'तुमने सुना नहीं।'

'बाबा जी ने कहा है, रानी दीदी के खाने का पैसा जोड़ देने के लिए। वह बहुत गड़बड़ करती हैं। पैसा देने में भी सात झंझट।'

'मैं क्या मेसइन्चार्ज हूँ जो पैसे जोड़ती रहूँ। किसी दूसरी लड़की से कहो। मुझे अभी फुर्सत नहीं। बाहर जा रही हूँ।'

सुमि को देखकर और भी जोर से बोलती हूँ कि उसको लगे हॉस्टल में काफी रोब जमा रखा है मैंने। मुझे गोल्डेन ब्राउन रंग बहुत पसंद है। पर सुमि कहती है, मुझे गुलाबी रंग पसंद है। मेरी पसंद के बारे में वह कैसे बता सकती है? मगर कपड़े की दुकान में जाती हूँ तो रंग पसंद करने में मुझे वक्त लग जाता है। रंगों की भीड़ में किसी एक रंग को पसन्द नहीं कर पाती। दरअसल रंग सभी पसन्द हैं मुझे, उड़ा हुआ रंग एक भी नहीं।

सुमि के साथ रास्ता चलने में ऐसा लगता है मैं कुछ और नहीं उसकी परछाईं होकर चल रही हूँ। मैं झट से साइड बदल लेती हूँ। अब मेरी परछाईं उसके ऊपर होकर चल रही है। मैं हाथ चलाकर बात करने लगती हूँ – ताकि परछाईं में भी गति आ जाय। मैं स्थिर नहीं रहना चाहती। मैं सुमि के ऊपर रहना चाहती हूँ। मैं कतई नहीं चाहती कि मेरे अस्तित्व के पानी पर वह तेल की बूंद सी पसर जाय। हॉस्टल से सुमि के घर, कालेज ···बराबर उसके साथ व्यस्त रहती हूँ, फिर अगले कुछ दिनों के लिए अलग हो जाती हूँ। राह में अकेली लौटते हुए महसूस करती हूँ रास्ता मुझ पर होकर ही चल रहा है। मैं कैसी हुई जा रही हूँ? अब नियमित रूप से पढ़ना चाहिए मुझे, कक्षा में बहुत नाम है मेरा। उसके अनुकूल रिजल्ट नहीं हुआ तो क्या कहेंगे। सुमि का तो रूप कुछ वैसा ही चलता रहेगा। परेशानी तो भी साथ है। हॉस्टल में पढ़ने के लिए ही तो भेजी गयी हूँ। हॉस्टल आकर पहले दीदी के कमरे में जाती हूँ। ड्यूज देखने में उनकी सहायता करती हूँ। फिर ऊपर आती हूँ। थकान से मेरा अंग-अंग टूट रहा है। मैं बगैर चाय पिये सोना चाहती हूँ। चादर से मूँह ढँकती हूँ तो

अपना ही चेहरा कई टुकड़ों में दीखने लगता है। मैं घबड़ाकर अपने माथे पर हाथ रखती हूँ। पसीना आ गया है वहाँ। रूमाल खोजने लगती हूँ, नहीं मिलता तो तौलिया से पसीना पोंछने लगती हूँ। पसीना में मुझको अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ बहती नजर आती हैं।

चार

रवीन्द्र-भवन का कमरा संख्या सात। टेबुल लैम्प जला है। बिस्तर पर एक ओर तीन-चार किताबें और कापियाँ हैं। खुली हुई कलम और एक कागज पर ढेर सारे अक्षर कटे हुए। कोने में एक कागज फड़फड़ा रहा है। जिस पर कोई आकृति बनते-बनते रह गई है। पर रेखाओं से सधे हुए हाथ का पता चलता है। खूबसूरत लिखावट लिखने वाला हाथ आकृतियाँ भी खींचता है। नीली खिड़कियों के इस कमरे में पीले पर्दे तीन ओर झूल रहे हैं। अपनी पसंद के रंगों को उन आकृतियों वाले हाथों ने अपने कमरे में भी सजा दिया है। मगर नीले-पीले रंगों को हमेशा उसने मृत्युमुखी स्थितियों के लिए ही चुना है। उसकी मानसिक उदासी और केवलता कमरे में हर ओर बिखरी हुई है। बेड से सटे दो रैक हैं जिनपर बड़ी ही तरतीब से पुस्तकें रखी हुई हैं। स्याही और पेपर वेट आदि रखने के ढँग से इस कमरे वाले की सुरुचि सम्पन्नता का पता चलता है। हैंगर पर झूलती हुई बुशर्ट, पैन्ट और बेल्ट दिन में कई बार कपड़े बदलने की सूचना देते हैं। किताबों में दोनों तरह की किताबे हैं—एकेडेमिक और

लिटरेरी। ढेर सारी देशीय-विदेशीय पत्रिकाएँ, कविता-संग्रह और उपन्यास। पुस्तकों का चयन बौद्धिक ऊँचाई का पता देता है। कमरे में कहीं ऐश-ट्रे नहीं है और न किसी कपड़े पर पीक के दाग। लगता है इस व्यक्ति ने कभी सिगरेट नहीं पी, न पान खाये। मगर और चीजों को देखने से उसके अभिजात्य की सूचना मिल जाती है।

आस-पास के कमरे में लड़के पढ़ रहे हैं, कहीं गप्पें चल रही हैं। गप्पों का ज्यादातर मुद्दा फिल्म या किसी हीरोइन पर टिका होता है कहीं चाय पीने के बाद प्यालियाँ असावधानी से लुढ़का दी गई हैं। सिगरेटों के अधजले टुकड़े कोने में इधर-उधर बिखरे और दियासलाई की तीलियाँ इधर-उधर कोफ्त पैदा कर रही हैं। किताबों में से एक बेड पर है तो दूसरी रैक पर, तीसरी बेड की बगल में लुढ़की हुई। ताश के पत्ते बिखरे पड़े हैं। जर्दा की शीशी अधखुली पड़ी है। कापियों के पन्ने फटे हैं। एक दूसरे के कमरे में जा-जाकर लड़के शोर बाँट रहे हैं।

यही है यश का वातावरण जिसमें वह रहता है—सबसे असम्पृक्त—एक अलगाव की स्थिति झेलता हुआ। यही लड़के दूसरे को डिस्टर्ब करते रहते हैं, पर यश को नहीं छेड़ पाते, क्योंकि यश किसी को लिफ्ट नहीं देता। ठीक लखनऊ चौक पर उसका छात्रावास स्थित है जो दिन भर सड़कों की शोर और भीड़ को पीता रहता है—पर वह शोर यश को कहाँ व्यापता ? भीड़ पर पैर रखकर वह चल लेता है और कमरे में आते ही रूमाल झाड़कर उसको झाड़ देता है। हैंगर में बुशर्ट लटकाते ही उसको यकीन हो जाता है कि—उसने दिन भर के गर्द को भी कहीं लटका दिया है। लड़कों से उसका बोलना चालना भी सीमित है। इसीलिए तो जिन लड़कों को साले के इस्तमाल के बिना एक वाक्य भी बोलने की आदत नहीं, वे लड़के भी पर्याप्त सम्मान देते हैं यश को और उसकी बौद्धिक बुनियाद को कबूल करते हैं। रात में बगल के कमरे में जब कोकाकोला की बोतलें टकराती हैं, तब यश अपने कमरे में अकेले होता हुआ भी अकेला नहीं होता। उस वक्त किसी कविता की तलाश रहती है

उसको और जब कविता की कोई गुंजाइश नहीं होती दिमाग के सादा और संतुष्ट रहने के कारण तो वह Eliot की Poetics लेकर बैठ जाता है। काफ्का, रिल्के, आदि को वह इन्हीं क्षणों में पढ़ता और गुनता है। औसत विद्यार्थियों से कितना अलग और ऊपर है, वह उसके चेहरे पर हमेशा एक बुजुर्गियत दीखती है जो संस्कार और अध्ययन से उत्पन्न है, वह कत्तई ओढ़ी हुई नहीं है।

सुबह से अध्ययन में व्यस्त रहा है वह। दस बजे कालेज जाकर ४ बजे लौटा है। चेहरे पर दिन भर की थकान और धूल है। कमरे में आते ही वह पहले वाश करता है। दीवार पर टँगे आइने के पास जाकर बाल सँवारता है। इतने में दो-तीन मित्र नाम पुकारते ऊपर चले आते हैं। यश अभी इस मनःस्थिति में नहीं है कि उनको इन्टरटेन करे, पर वह क्या करे, न तो लाचार होना चाहता है और न औपचारिक व्यस्तताएँ दिखा खुद को नकावपोश मानना चाहता है। उसकी आँखों में बेमन से किए गए समझौते के प्रति आत्मदया उभर आती है। वह कमरे को बन्द करने के लिए ताला ढूँढ़ने लगता है। मित्र उसकी सहायता करते हैं और सभी निकल जाते हैं। चौक से निकल कर सीधे वे अमीनाबाद की सड़कों पर आ जाते हैं। कहाँ बैठा जाय—यही नहीं सोच पाते। यश किसी बड़े होटल या रेस्तराँ में जाने से मना करता है क्योंकि व्यर्थ के कोलाहल से वह घबड़ाता है। मित्र उसकी हँसी उड़ाने लगते हैं—'अभी यह उम्र फिलासफर बनने की है क्या ? अरे, कुछ हम लोगों की भी सुनो। 'तुलसी' में 'गुड्डी' लगी है—क्या अभिनय किया है जया भादुड़ी ने, वाह।'

यश चुप ही रहता है। कुछ ऊपर देखता है, शायद बोलने की बातें तलाश रहा हो ! मगर तलाश कर भी क्या करेगा। उसको यही पता नहीं चलता कि शुरू कहाँ से करें। जया का अभिनय उसे भी पसंद है, पर बातचीत का विषय यही हो, उसे यह भी पसंद नहीं। अब वह हाईस्कूल का विद्यार्थी नहीं है। स्तर बढ़ने के साथ ही बातचीत का विषय बदल जाना

चाहिए। वह कुछ तंग सा महसूस करता है, पर चेहरे पर उसको प्रकट नहीं होने देता।

वे लोग 'कंचना' जाना चाहते हैं, पर यश उन्हें रोकता है। वह जानता है कि ये लोग बेकार की बकवास करेंगे और रेस्तरां के मालिक का दिमाग चाटेंगे—चाय में चीनी कम है, चीनी जरा सी अधिक है तो इसमें लिकर मिलाओ। यहाँ काजू क्यों नहीं रखते? 'कंचना' के साइन बोर्ड पर जिस प्रिंसिपल हिन्दी का प्रयोग किया गया है, लगता है उसका सम्बन्ध किसी बौद्धिक संभ्रान्त व्यक्ति से है। यश अपने मित्रों के बौद्धिक दिवालियापन का पर्दाफाश नहीं चाहता। अतएव वह सीधे उन लोगों को लेकर काफी हाउस पहुँचता है। हजरतगंज की भीड़ किसको कहाँ निगल जाती है, कुछ पता नहीं चलता। काफीहाउस के एक कोने में ये लोग बैठ जाते हैं। बैरा से पहले पानी का आर्डर करते हैं। यश नहीं समझता कि उन लोगों में कोई ऐसा है जो टेबुल का बिल चुका सके। इसलिये अपने को आगे लाना जरूरी समझता है।

'दो-दो पोच और एक प्लेट चिप्स सब के लिए लाओ।'

'अच्छा सा'ब।'

बैरा के जाते ही, वे लोग पहले काफीहाउस की आलोचना पर उतर आते हैं। वहाँ की टेबुल, कुर्सियाँ, प्लेट, प्याले, ग्लास और बल्ब से लेकर बातें बैरे की पोशाक तक जाती-जाती टूटने लगती हैं। यश चाहता रहता है कि इस तरह की बातों का सिलसिला टूटे तो वह कुछ अपनी बात करे। पर हाँकने में कम नहीं हैं वे लोग। उसका एक मित्र जमाने के खयाल से काफी चमत्कृत होकर कहता है—'मेरे मामा मारिशस गए थे एक ट्रिप लेकर। वहाँ के एक शानदार होटल में वे ठहरे थे। खाना खाने जब टेबुल पर गये तो पहले मीनू उठाकर देखा और जो सबसे कीमती डिश था, उसी का आर्डर किया। जानते हो उस डिश का नाम था, 'कैफेड'। मेरे मामा काफी उल्लसित थे कि आज जिन्दगी में वे सबसे कीमती खाना खायेंगे, पर जब डिश आया तो वह एक सादे रूमाल से ढँका था। रूमाल उठाकर

देखा तो वह किसी बछड़े का सिर था। मेरे मामा देखते ही भिन्ना उठे और टेबुल से भागने लगे, मगर बैरा ने उन्हें रोका और कहा कि आधा बिल तो उन्हें देना ही है क्योंकि यह आर्डर देकर बना है।'

यश से रहा नहीं जाता है। अपने पर कोफ्त होती है कि एक ही बात रोज बोलने से क्या इनकी जबान नहीं छिलती? 'बस, बस, कुछ ऐकेडेमिक बातें करो भई, उन बातों में रखा ही क्या है?'

'तुम्हें तो बस जब देखो ऐकेडेमिक, नहीं तो लिटरेरी—यही घिसते रहोगे। अरे, इसके बाहर भी तो कोई दुनिया है। महादेवी के गीतों में करुणा और दुखवाद है, इससे अलग भी तो बातों का विषय हो सकता है?'

'मैंने यह कब कहा कि उतना ही भर है। तुम यह भी क्यों नहीं कहते कि सार्त्र ने नोबल पुरस्कार लौटा दिया। बालकृष्ण राव वाइस चांसलर हो गए हैं। देश बाढ़ और सूखे के संकट से गुजर रहा है। मीनाकुमारी की शायरी का संकलन प्रकाशित हो गया है। तमिलनाडु द्वारा अतिरिक्त केन्द्रीय आरक्षित पुलिस की माँग की गई है। अथवा विएतनाम में युद्धविराम प्रस्ताव राष्ट्रपति थिउ को सिद्धान्ततः स्वीकार क्यों नहीं है।'

मित्रों का मुँह सिकुड़ता है। तभी बैरा टेबुल पर आर्डर की चीजें रख जाता है। काँटे और चम्मचों की खनखनाहट से टेबुल गूँजने लगता है। यश की आँखें नीची हैं, पर बीच-बीच में वह सबके चेहरे को देख लेता है। काफी निश्चितता और शोखी है वहाँ। प्लेटें खाली होते ही बैरा उठा ले जाता है। यश काफी हाउस के टेबुलों पर एक बार गौर से देखता है। डॉ० वर्मा अगले किसी पब्लिकेशन की बातें करने में व्यस्त हैं। प्रोफेसर गुप्ता अर्थनीति के नये सिद्धान्त पर भाषण दे रहे हैं। मिसेस भल्ला किसी कार्डिगान के नए डिजाइन की बातें कर रही हैं। मिसेस भल्ला डॉ० प्रेम कुमार भल्ला की पत्नी हैं जो साइकोलॉजिकल एण्ड भोकल गाइडेन्स के प्रोफेसर हैं। यश की उनसे अच्छी-खासी पहचान है। कभी-कभी वह उनके रेसिडेन्स पर गया है तो मिसेस भल्ला ने अतिरिक्त कुलीनता का बर्ताव

किया है। वैसे हैं वे बड़ी 'शोई'। बीच के टेबुल पर तीन व्यक्ति बैठे हुए हैं जिनमें सब का सब व्यापारी लगता है। 'मिडिल मैन' को पहचानने में देर नहीं लगती। उसका चेहरा उसके पेट से जाना जा सकता है। देहात में अभी प्याज बहुत सस्ता है। वे उसकी खरीद के बारे में बेचैन हैं। जब सारे प्याज किसान के खेतों से उठकर उनके कोल्ड स्टोरेज में चले जायेंगे तो उनका दाम सीधे दस गुना बढ़ जायगा। पीछे के टेबुल पर सिन्हा बैठा हुआ है—नए चित्रकारों में काफी मँजा हुआ नाम है यह। इसके चित्रों की एकल प्रदर्शनियाँ लग चुकी हैं। उधर कुछ हिप्पी लोग बैठे हुए हैं। लगता है अभी बनारस से चलकर आये हैं। एक युवती रामनामी ओढ़ी हुयी है और पैरों में खड़ाऊँ। उसकी नीली आँखें बताती हैं कि उनमें पर्याप्त जिज्ञासाएँ हैं। तभी से वह यश की ओर कई बार देख चुकी है। पूरे काफी हाउस में एक वही आदमी उसको भला-भला सा लगता है। यश की आँखे भी उस पर पड़ती हैं तो वह अकारण मुस्कराती है। यश उसके अभिवादन में हँसी का एक टुकड़ा भी नहीं फेंक पाता।

बैरा अब टेबुल के पास खड़ा है। यश अपनी जेब में हाथ डालकर दस रुपए का एक नोट निकालता है। बैरा को थमाते हुए पूछता है—'ठीक तो है?' बैरा प्लेट में रखे बिल पर आँखें फेंकते हुए कहता है—

'साब, नौ रुपये तीन आने।'

'जाओ-जाओ ठीक है, अपना टिप रख लेना।'

मित्र फुसफुसाता है—'यार रख भी लो—पान-पत्ता चलेगा। रोज-रोज क्या टिप देने होते हैं?'

यश को उसकी नीचता पर तरस आने लगता है। वह चुपचाप काफी हाउस के बाहर बरामदे पर आता है—मित्र उसके पीछे-पीछे हैं। यश पूछने की जरूरत महसूस करने लगता है – 'अब कहाँ चलें?'

'तुम्हें कहीं नहीं जाना?'

'मुझे छोड़ो, एक पुस्तक अधूरी है कल से। ध्यान वहीं टँगा है। ढेर सारे खतों के उत्तर लिखने हैं। फिर कभी देखा जाएगा।'

मित्र अधिक तंग नहीं कर पाते। वे लोग वहीं से दारुलसफा की ओर मुड़ जाते हैं। यश अपने को ढीलाढाला महसूस करने लगता है! लगता है, कहाँ था वह अबतक—किस कूड़ेखाने में?'

यश सड़कों पर चलते हुए हवाई हमले की सूचना सुनता है और लाल बाग के उस पार्क के सामने रुकता है। उसमें खिले हुए पीले गुलाब उसको बड़े जँचते हैं। दिन होता तो भीतर जाकर देर तक देखता और फूल नहीं तो एक पंखुड़ी ही अवश्य तोड़ लेता। पर अभी मद्धिम रोशनी में गुलाबों का पीलापन उजला गया है। वह आगे बढ़ता है। अब वह अपने छात्रावास की दिशा में है। सीढ़ियों पर चढ़ते हुए काफी स्फूर्ति उसमें आ गई है कि लौट आया है वह अपने अंतर्लोक में।

अब कुछ दिनों के बाद ही छुट्टियाँ हो जाएँगी। लड़के अपने-अपने घरों को जाएँगे, कुछ नहीं भी जाएँगे। अधिकांश लड़के कुछ रुकते हुए जाएँगे। पर यश छुट्टी के एक दिन पहले ही अपना सरोसामान बाँध लेगा। घर पर उसकी माँ उसका इन्तजार करती रहती है। छुट्टियाँ गिनती रहती है। आज से तो उसने उँगलियों पर दिन गिनना शुरू कर दिया होगा। यश जब छोटा ही था तभी उसके पिता स्वर्गीय हो गये। जब से उसने होश संभाला है, पिता की तस्वीर ही देखी है, उनका चेहरा, उनका प्यार कुछ भी नहीं देखा। भाई-बहन में भी अकेला है वह। माँ की आँखों का एकमात्र उजाला। बचपन से ही माँ ने माँ की ममता और पिता के अनुशासन—दोनों से ही उसको सींचा है। कितना बड़ा हो गया था वह, फिर भी माँ के बिना सोता ही नहीं था। माँ कभी अकेले उसको घर में रहने भी नहीं देती थी। मुँह धोने के समय ब्रश, पेस्ट से लेकर तौलिया तक लिए खड़ी रहती थी। घर में नौकर-दाइयों की कमी नहीं, फिर भी माँ को अथाह सुख मिलता था बेटे के साथ व्यस्त रह कर।

लखनऊ में जब से पढ़ने आया—माँ का साथ कम हो गया है। पर आज भी आते वक्त माँ हिला-डुलाकर होलडॉल देखना नहीं भूलती कि कहीं वह खुला नहीं रह गया हो। नौकर दूध गरम कर दे तो भी देख लेती है

कि वह अधिक गर्म या ठण्डा तो नहीं है। आज भी यश केश में कंघी करता है तो माँ देखते ही हँसती है—'इतना बड़ा हो गया तू, कंघी करने नहीं आता।' यश बार-बार आइने में उझकता है कि कहाँ गड़बड़ है. पर कुछ पता नहीं चलता। पिछली छुट्टी में घर गया तो माँ पहले मोजे को निहारने लगी—'कितने गंदे हैं – कब से नहीं धुले हैं ? बेटे, ऐसे तू क्यों रहता है ? बाहर रहने पर क्या आदमी अपना रहन-सहन बदल देता है ? वहाँ क्या नौकर नहीं हैं ? कुछ पैसे उन्हें दे दिया कर, वे अलग से तुम्हारा काम कर दिया करेंगे ?' यश घंटों माँ के उपदेशों को सुनता रह जाता है और सहमति में सिर झुकाकर मुस्कराता है। माँ का एकछत्र प्यार पाकर भी यश बिगड़ा नहीं, सँवर ही गया है। माँ की एक चिट्ठी भी चली जाय तो वह एक क्षण को भी कहीं नहीं रुकता। माँ—जिसके सारे हौसले उसके व्यक्तित्व की बुनावट में लग गये हैं—एकमात्र आराधना है यश की। भूल से भी वह माँ की किसी पीड़ा का विषय नहीं बनना चाहता !

माँ की आँखों में कैसे-कैसे सपने पलते हैं—यश की बहू ऐसी होगी··· महीनों उसके पैर के महावर नहीं छूटेंगे···यश कहीं पसन्द भी कर ले तो उसमें अपनी पसन्द जरूर शामिल करेगी। यश कभी उसकी बात नहीं काटेगा। अपने बेटे पर कितनी आस्था है उसको। जब यश का बेटा होगा तो उसको अपने ही साथ सुलाएगी, क्योंकि जबसे वह बड़ा हुआ और बाहर रहने लगा, तब से अकेली सोती रही है वह। फिर तो वह अकेली नहीं रहेगी।

यश अपनी माँ के बारे में सोचकर विभोर हो जाता है। सोचता है, कैसे माँ को सुमि के बारे में बताएगा ? माँ क्या सहन कर सकेगी कि सुमि बाल-बच्चे वाली है ? और मैं तो बच्चे के साथ भी सुमि को स्वीकार करना चाहता हूँ···सुमि को पाने के लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ ! मगर माँ···

यश की आँखों में माँ का चेहरा उगता है—शांत सरोवर की निस्सीम गहराई में वह डूबने लगता है। कुछ सोचने के बाद वह आश्वस्त होता है

कि माँ उसका दुख नहीं देख सकेगी···देखा ही नहीं जाएगा उससे। फिर मेरा सुख ही तो उसका सुख है! यश जो सोचकर खुश होता है, वही उसको क्षणभर में दुखी कर देता है। तो क्या वह माँ की ममता का फायदा उठाना चाहता है। एक भीषण कोलाहल उसकी आँखों में, मन में, शरीर के अंग-अंग में बजने लगता है। वह कमरे में अशांत सा टहलने लगता है। अभी वह कुछ भी नहीं कर सकता। न पढ़ सकता है, न सो सकता है। सुमि के लिए सबको छोड़ देगा वह, अपने सम्बन्धियों से लेकर मित्र, शहर और पूरे संसार तक, पर माँ···माँ के लिए क्या करेगा वह? यों ही उसको छोड़ देगा? उसकी नसों में बहता हुआ लहू ठहरने लगता है। वह चीखना चाहता है मगर अपनी पहचान खोना नहीं चाहता। इसलिए धड़ाम से बेड पर गिर जाता है और एक किताब से मुँह ढँक लेता है।

उसकी आँखों में फिर माँ की बुझी हुई आकृति उभरती है। यदि वह कभी ऐसे देख लेती तो सिर, हाथ, पाँव सब देखती उसका। जाने किस-किस डाक्टर को बुलाने के लिए कह देती! माँ के जिस अक्षत वात्सल्य को उसने अब तक संभालकर रखा है, कहाँ किस खाते जमा कर देगा? इतना कृतघ्न हो जाएगा वह! उसकी आँखों से आँसू बहते हैं। यश को इतनी शक्ति नहीं कि गालों पर ढरके आँसुओं को वहा दे या पोंछ ले। वह उन्हें बहने के लिए छोड़ देता है। रात में वह खाना भी खाने नहीं जाता। सुबह उठने के साथ एक मानसिक हल्कापन का अनुभव करता है जो उसके भीतर से ही जन्मा है।

सुमि का एक पत्र पाने के लिए वह लगातार तीन-तीन पत्र लिखता रहा है, पर आज कई दिन हो गये सुमि के पत्र आए हुए। जाने किस मानसिक संघर्ष में वह डूबा रहा कि अब तक उत्तर नहीं लिख सका। आज निश्चिन्त होते ही पहला काम सुमि को पत्र लिखने का करता है···।

कितनी ही देर तक किसी ऐसे सम्बोधन की तलाश में रहता है जो इतना ओरिजिनल हो कि दूसरी जगह फिट ही नहीं, हो सके। पर सुमि, प्रिय सुमि में जो सुख का अनहद नाद बजते हुए उसको सुनाई देता

है, किसी और में नहीं। फिर तो पत्र लिखना शुरू ही कर देता है वह। हाथ में न कोई मयूर-पंख है और न टेबुल पर कोई भोजपत्र। पर उँगलियों की त्वरा से लगता है मन का उच्छ्वसित आदेश शब्दों में ढलता जा रहा है·····

लिखने के पहले कितनी बार सुमि के पत्रों को पढ़ चुका है वह। कल दोपहर से लेकर अभी तक में बीस बार पढ़ा होगा—किसी निष्कर्ष के निर्माण के लिए।

यश ने अपनी मुट्ठियाँ जकड़ ली हैं कि जो इनमें भिचा हुआ है, कहीं वह भी धुएँ की रेखा-सा न रेंग निकले। फिर वह सोचता है क्यों न इस तरह के वाक्य से शुरू करें जिससे लगे काफी इन्तजार के बाद सुमि का पत्र उसको मिला है। काफी प्रतिबद्ध और सचेष्ट रहने के बावजूद पत्र लिखने में देर हो गई है। इसका उसे दुख है। और वह लिखता है—'तुम्हारे पत्र की चेतन फिर अचेतन प्रतीक्षा में रत, मैंने खुद को मना-सा लिया, कि सुख का एक छोटा-सा जो क्षण मिल गया, वही यथेष्ट है, उसी को संजोकर रखो प्यारे, वहाँ इतनी फुर्सत किसे है कि तुम्हें याद करने में अपना वक्त जाया करे। कि तब उस दुपहरिया को आया तुम्हारा पत्र। डाकिए ने जगाकर दिया। कोई खुशगवार सपना शायद बीच में टूट गया था। हल्की खीझ में मैंने आए पत्रों को देखा : कई परिचित लिखावटों के बीच एक अपरिचित सी हस्तलिपि! यह तुम थीं! ऐसा क्या है कि हर बार तुम्हारी लिखावट नयी लगने लगती है मुझे और उससे नया सुख फूटता हुआ लगता है! खोलने के पहले अनुमान तक नहीं कर सका था यह तुम ही थीं!'

अब यश वहाँ नहीं था! यदि था भी तो—केवल दो होंठ—जिन पर वह खत चिपका हुआ था। अपने इस पत्र में वह सुमि को सुना देना चाहता है कि कितने रेगिस्तानों में उसने इसको भटकाया है! और कितने परीद्वीपों में? वह यह भी लिखना चाहता है कि सुमि के पत्र की प्रतीक्षा ने कहीं उसकी धड़कनों को कमजोर कर दिया था, उसके नहीं आते पत्र ने

कहीं उसको विपन्न बना दिया था। सोयी आँख से भी वह पिछले दिनों सुमि के विषय में सोचता रहा था—केवल सुमि के विषय में।

यश समझ नहीं पाता कि कैसी द्विधा में पड़कर सुमि ने उसको 'आप' लिख दिया है। आते वक्त कितना मना करके आया था वह कि सुमि उसे आप नहीं कहे। वह तो उसमें अपनी आत्मा की छाया देखता है। क्या कहीं कोई पारदर्शी दीवार है सुमि के भीतर! उसके 'तुम' के लिये वह किस तरह साँस रोके खड़ा है, क्या वह नहीं जानती? और कैसे भोलेपन से लिखा है उसने, 'कैसा लगा, बतायेंगे?' जैसे वह सचमुच कहा जा सकता हो! वह जो अभी तक धमनियों में बज रहा है, वह—जो अभी तक हथेली में पसीज रहा है—वह जो अभी तक उसके भीतर बेतरह धड़क रहा है।

'मेरी मित्र, उसे मैं नहीं कह सकता, केवल चुम्बन के रूप में तुम्हें दे सकता हूँ। बस।'

यश का मन झनझनाता है—जैसे कई जलतरंग एक साथ बज उठे हों!

'सुनो, एक बात कह दूँ? लाओ अपना कान इधर—मलूँगा नहीं। तुम्हारे पाँव! तुम्हारे पाँवों की बनावट बड़ी खूबसूरत है। पता है, जब तुम गीत सुना रही थीं मैं एकटक तुम्हारे पैरों को देखता रहा था। तुम्हारे उन राग-माते पैरों को अपनी छाती पर रखकर मैं सोना चाहता हूँ। एक बार उन पर अपने होंठ रखना चाहता हूँ। कब, कब आएगा वह दिन? कब? यह शरद के चाँद उजले धुले से पाँव मेरी गोद में?

यश जब पिछली बार आया था तो रिक्शे पर बैठे हुए सिर्फ हथेलियों को छू सका था। अपनी सारी कामनाएँ समेटकर वह लेता गया था। क्योंकि उनके लिए तब कोई वक्त नहीं था। वह सुमि को अपने को समझने का पूरा मौका देना चाहता था। वह लिखता है कि वह मुजफ्फरपुर आएगा और अकेला। वह इस बात का विश्वास भी दिलाता है। इस क्षण वह किसी चम्पा के बन से गुजर रहा है। उसकी आँखों के सामने हिरण के भागते हुए जोड़े हैं।

यश अपने हर हमदर्द की फ़ितरत से परिचित है। वह सुमि को जनाता है कि उनका विष उस पर कोई असर नहीं कर सकता कभी। वहाँ वे 'बेचारे' हैं।

यश इस मनःस्थिति में है कि लगता है अभी लिखे पत्र का अभी ही जबाब आ जाय। कई बार वह इसलिए तुरत पत्र देने की याचना करता है। अभी बैठ जाने के लिए कहता है—अभी लिखने के लिये। अभी से वह डाकिये की प्रतीक्षा मे किसी शिशु सा बैठ जाता है—लगातार जागता, ऊँघता, जागता। क्या सुमि चाहती है कि उसकी धड़कन रुक जाये? यदि हाँ. तो पत्र देर से देगी।

पत्र का अन्त करते हुए यश फिर विचारों में खोने लगता है। अब क्या लिखे—उत्तर अपेक्षित है—जैसी किसी औपचारिक वाक्य से वह बँधना नहीं चाहता। इसीलिए सीधे लिखता है—'तुम्हारा, केवल तुम्हारा।' पत्र को एक बार होंठ से लगाकर उछालता है और हाथों में लोक लेता है। उसको अपना रास्ता साफ दिखाई देने लगता है। वह सोचता है—'माँ सुमि को देखेगी तो एक बार में ही उसको पसन्द कर लेगी। माँ का विचार मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह बहुत अधिक माडर्न लड़कियों से घबड़ाती है। मेरी बुआ की बहू आयी थी तो सबसे पहले मेरी माँ के सपने ही चूर हुए थे। मेरी तरह उसका भी एक ही बेटा है। कितने सारे सपने पाल रखे थे मेरी बुआ ने। माँ तो उसको अपने ही पास रखना चाहती थी। पर जब आते ही उसने बुआ को दिल्ली जैसे भीड़ भरे शहर में दूध लाने वालों की कतार में बाँध दिया तो माँ ने दम साध लिया था। उसको कुछ सूझता ही नहीं था। सुमि उसका यह हश्र कभी नहीं होने देगी।

यश सोचता है—'सुमि अवश्य बहुत भली है। सम्पूर्ण रूप से वह स्त्री है। तभी तो वह बच्चों की माँ भी बन सकी है। आजकल तो लड़कियाँ माँ बनने के ख्वाब से भी डरती हैं। इसके लिए जाने कितनी अनहोनियों को झेलती रहती हैं। सुमि उन अभद्र लड़कियों में से कभी नहीं जो दैहिक

विलास को ही सब कुछ समझती हैं, जो जिम्मेदारी के भय से गर्भ-निरोध की दवाएँ साथ रखती हैं, जिनके लिए माँ बनना पहाड़ सा लगता है, जिनको पवित्रता का इश्तहार हरदम इसलिए चिपकाकर रखना पड़ता है है कि नए-नए मित्रों में से किसी को उसका चेहरा उघाड़ नहीं लगे।

यश सुमि पर आँख मूँदकर विश्वास करना चाहता है, करता है। उसके पत्र केवल भावाकुल क्षणों के साथी नहीं, उसके अंतर्लोक की सच्ची कथाएँ हैं। सुमि जो भी प्रतिदान चाहेगी, वह देगा। वह उससे इस बात की अपेक्षा करता है कि वह उसकी माँ के लिए वैसी ही प्रिय होगी। कोई लाख गलतियाँ करे, पर नीचे देखने लगे तो माँ उसको क्षमा कर देती है।

वह अपने लिखे हुए पत्र को फिर पढ़ता है और इन क्षणों में जो नयी आशंकाएँ सुमि के प्रति जन्मी हैं, उनको भी जोड़ देना चाहता है। 'मेरी सुमि, तुम्हारे पत्र ने आने में देर कर दी, बहुत देर, सचमुच बहुत देर। अगली सुबह डाकिये के आने की बेला वह बार-बार छज्जे पर जाकर खड़ा हो जाता है। या तो डाकिया गुजर जाता है और वह एक शिशु की तरह उँगली उठाकर रह जाता है, या फिर वह कुछ चिट्ठियाँ उसको थमा देता है जो उसको और खरोंच जाती हैं। क्या प्रतीक्षा इतनी निष्करुण होती है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हर एक दिन बाद उसको सुमि का पत्र मिले? शायद सुमि नहीं जानती, वह उसके लिए साँस से भी बड़ी आवश्यकता होती जा रही है। सुमि का पत्र! जिसकी पंक्तियों को वह अपने मन में बार-बार रचता, जैसे उसके वक्ष में मुँह गाड़े पड़ा रहता है। सुमि के शब्दों को चूमता वह जैसे उसकी उंगलियों पर होंठ लगाता है और अपने निर्दय आस-पास से जैसे स्थानान्तरित होकर उसके लोक में पहुँच जाता है: सुमि के लोक में जहाँ यश की बाँह के नीचे सुमि की बाँह कुसुमित होती रहती है और उसका कोई गीत उसके बालों में अपनी कोमल उँगलियाँ चलाता रहता है।

यश नहीं जानता था, अभी पूरी तरह नहीं जानता है—उसके भीतर

भी कोई कल्पक रहता है। वही कवि रहता है जो अभी भी कालिदास है। सुमि और उसके बीच यह दूरी की आँच है, जाने कितने स्मृति चित्रों को जोड़ने पर उसको मजबूर कर रही है। बीता हुआ देश काल जो बिलकुल सुरक्षित है यश के मन के कोनों में : रिक्शा, सुमि की मसृण बाँह, उसमें सुलगता उन्माद, सुमि की हथेली, यश का चुम्बन, स्टेशन, धुआँ, भीड़, सुमि की आँखें, विदा, उसके भीतर बार-बार बजता कोई अधबिसरा विदा-गीत, फिर सुमि की आँखें, फिर-फिर उसकी आँखें, लौटता वह, बार-बार पीछे छूट जाता वह, खुद को समेटता-बीनता चुनता वह, सीटी···

पर कितना वह है अभी, इस टेबुल पर झुककर सुमि को पत्र लिखता हुआ ? उसकी बाहों की जड़ों पर उससे लिपटकर उसको सूँघता हुआ—बहुत कुछ है 'वह'। अत्यन्त उन्मादित होकर वह लिखता है 'सुमि मैं कितना था कितना हो गया हूँ ? तुम्हारे सुरक्षित स्थलों को दुलारता, अपने भीतर के सब कुछ को तुममें उड़ेलता, तुममें डूबता, खोता, तुम्हारा होता, होता, होता···सुनो, खुद को मुझे देने में तुम कृपणता तो नहीं करोगी ? मैं जो हूँ, जैसा हूँ, तुम्हारा हूँ, तुम जो हो, जैसी हो, पूरा-पूरा खुद में समेटने के लिए बाँहें बढ़ाये हूँ ! आ रही हो तुम ? पूरी-पूरी तुम ! आ रही हो ? अपने अस्तित्व के हर रोम के साथ मेरे आगोश में ? जैसे कि मैं हूँ अनस्तित्व की हद तक पहुँचकर तुममें घुलता हुआ ! हमारा योग केवल हमें ही सुरभित नहीं करेगा, प्रिय, जरा तुम भविष्य में झाँककर देखो : वह सहस्रदल कमल अपनी पंखुड़ियाँ धीरे धीरे खोल रहा है।'

और यश को लगता है कि पत्र पर उन बातों को उतारना कितना मुश्किल है जो मन की हलचलों में हैं। वह जानना चाहता है कि सुमि ने कुछ लिखा है इधर ? वह पत्र तुरन्त लिखने के लिए कहता है और यह भी कहता है कि यदि वह चाहे तो उसके पत्र का जबाब वह अबके वहाँ पहुँचकर अपने चुम्बन से देगा। पत्र को समाप्त करते वह और अधिक भावविह्वल हो जाता है और काफी समय तक आँखें मूँदे रहता है। उसकी आँखों में लगातार दो आकृतियाँ बनती-मिटती रहती हैं—माँ की, सुमि की,

सुमि की, माँ की····। कहीं वह अपनी आकृति बीच में जोड़ नहीं पाता—जोड़ने भी लगता है तो सोचता है पहले कहाँ जोड़ दें।

सारी रात गंध की नदी तैरते बीत जाती है—सुबह किसी मंदिर के कंगूरे पर होती है।

दो सप्ताह बीत गये हैं। यश सोचता है पत्र देने में सुमि हमेशा देर करती है। इसकी कुछ वजहें होंगी, वजहें हैं, वह इन्कार कैसे कर सकता है? पर सुमि को उसका ध्यान भी तो रखना ही है। गत तीन दिनों से काफी मानसिक अशांति से कटे हैं उसके। आज सुमि का पत्र मिला है। जैसे कहीं बिंध गया है वह।···इन दिनों—कहें पिछले दिनों सचमुच कुछ उलझावों के घेराव में रहा। किसी उजले दिन की तरह बीच-बीच में सुमि ही चमकती थी—बस। नहीं तो एक खास ढंग की खीझ—थोड़ा गुस्सा, हल्की झुंझलाहट; कहीं थोड़ी कातरता भी—उस पर हावी रही। क्यों? वह मिलकर सुमि से बताएगा।

अभी थोड़ी देर पहले अचानक तबीयत खराब हो गई है। बाहर फैला हुआ मौसम सूँघ गया है और एक तरह की कमजोरी एक जड़ाती कमजोरी रगों में बहने लगी है। यह फ्लू का आक्रमण है—वह समझ रहा है। अभी जाकर दवा लेगा। सारी रात जैसे सुमि को लिपटाये सोया रहेगा। इस स्थिति में भी बड़ी उन्मादक इच्छाएँ भीतर विस्फोट कर रही हैं। कहीं रुग्ण हो कर कहीं हल्का सा बिखरकर वह सुमि को पूरी पूरी शिद्दत से पाना चाहता है अभी—अपने लिए अपनी आत्मा के लिये।

यश अभी जब उठता है—मौसम का मुँह तो बाहर रुआँसा ही है, पर उसके भीतर कुछ खिल उठा है जैसे। लगता है बिलकुल ठीक है वह। बार-बार बाँहें मोड़ता है वह और हर बार यह पाता है कि बिलकुल, बिलकुल ठीक है।

जैसे हवाओं से बातें करता है वह 'मैं आ रहा हूँ तुम्हारे पास। बनारस जाने के पहले मेरी राह देखो। मैं साथ हूँगा। नहीं तो, तुम

बनारस निकल जाओ और मैं तुम्हें ढूँढ़ता पहुँचूँ, यह मुझे बहुत कुतरेगा। सुनों मैं आ रहा हूँ, आ रहा हूँ, आ रहा हूँ।'

यश जैसे एकालाप की स्थिति में आ जाता है। 'मेरे अबतक नहीं पहुँचने ने सचमुच तुम्हें दंश दिया है ना! लेकिन इसने स्वयं मुझे कितना-कितना मथा है, तुम नहीं समझतीं? एक कैसी टेर मेरे भीतर गूंजती रही है—एक मेरे अन्तर्लोक के दरवाजे को दस्तकों से तोड़ती आदिम पुकार—कैसे बताऊँ!···'तुम्हारे वक्ष पर धर शीश मरना चाहता हूँ' पता नहीं दिनकर ने क्या सोच कर लिखा था; पर यह मेरे लिये जीने का सूत्र हो गया है। तुम मेरी राह देख रही हो, देख रही हो न?'

यश इन्तजार करता है···करता जाता है। इधर अचानक लड़कियों के टूर पर जाने की योजना बनती है। दो प्राध्यापक तथा एक प्राध्यापिका के साथ लड़कियों का ट्रिप चल पड़ता है। बनारस से इलाहाबाद, कानपुर होते हुए यह ट्रिप लखनऊ पहुँचता है। लखनऊ···सुमि की साँसे तेजी से आ-जा रही हैं। तीन दिनों तक सब लोग साथ-साथ घूमते हैं। सुमि को कहीं मौका नहीं मिलता कि रवीन्द्र भवन तक जाकर देखे। लौटने के दिन सिनेमा देखने का प्रोग्राम बनता है। लेकिन सुमि सिनेमा नहीं जाती—सरदर्द का बहाना बनाकर लेट जाती है। एक लड़की रंजू उसके साथ रहती है। सभी के चले जाने पर दोनों निकलती हैं और रवीन्द्र भवन के पास आकर रुकती हैं। सुमि देखती है कि इस जगह से तो कई बार गुजरी होगी वह इन तीन दिनों में मगर क्या कहकर रुकती! एक लड़के को ऊपर भेजकर यश का पता करती है। यश नाम सुनते ही दौड़ता है, विश्वास नहीं होता कि सुमि आई है—वह आ सकती है। वह उसको ऊपर ले जाना चाहता है, पर सुमि नहीं जाती। किसी रेस्तराँ चलने को कहती है। यश तैयार हो जाता है। रास्ते में सुमि उसको बताती है कि आज ही लौटना था, पर फिर विचार बदल गया है। हम सभी कल सवा नौ बजे मेल से वापस हो जायेंगे। बीच में मौका ही नहीं मिला। अभी किसी प्रकार आ सकी है।

रात में अपनी सहेली के साथ देर तक सुमि यश से बातें करती रह जाती है। सहेली है, यश क्या करे—कभी-कभी चोरी-छिपे हथेली पर हाथ रख देता है, कभी बाँहों को सहला देता है। बातों के बहुत सारे सिलसिले साथ लिये हुए वे अलग होते हैं। कल यश को स्टेशन आना है विदा देने।

सुमि के लौटने के पहले प्राध्यापक और सहेलियाँ लौट आई हैं। पूछने पर सुमि बताती है कि एक संबंधी से मिलने चली गई थी। बात आगे नहीं बढ़ती और वह निश्चित हो जाती है।

सभी विदा होते हैं। यश अभी सुमि के करीब है, धीरे-धीरे कुछ बोलता हुआ। आँखें बताती हैं कि कितना कातर है वह। साथ के लोग कुछ समझते, कुछ नहीं समझते हैं। गाड़ी चल पड़ती है। हवा में यश का उठा हुआ, हिलता हाथ रह जाता है। सुमि हाथ नहीं हिला पाती। केवल खिड़की में अँकी-टँकी रह जाती है, अनिमेष आँखों से देखती हुई।

सुमि घर लौट आयी है। यह पच्चीसवीं तारीख है अक्टूबर की। एक उदास दिन की वीरान रात्रि। क्या कल ही मिला था यश ? मतलब कल शाम के छः बजे से लेकर दिन के सवा नौ बजे तक वह उसके साथ था ? लगता है सब कुछ स्वप्न में घटित हुआ है। लगता है, यह सब हुआ ही नहीं। यह जो भीतर गूँजता खोखलापन है, लगता है यही और केवल यही था पहले से—सदा से। लगता है एक शताब्दी बीत गई है यश को उससे वियुक्त हुए। बहुत पहले किसी पूर्वजन्म में वे मिले थे। और एक अपाहिज है वह बदली हुई दुनिया में भौंचक खड़ी—पूर्वजन्म की स्मृति का अभिशाप भोगती—कुछ भी कर सकने में लाचार।

क्या यह सब कल ही हुआ था ? मतलब उसका ट्रेन में यश के साथ बैठना—एक अवश्यम्भावी यात्रा - एक निष्करुण विदाई। एक करुण लौट। चारबाग स्टेशन पर उसके रेंगते कम्पार्टमेन्ट से उतर यश कैसे अनिर्णय में पड़ गया था। उसका कम्पार्टमेन्ट खिसका, फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा—वह लपका कि दौड़कर चढ़ जाए—कि वह सुमि को छोड़ नहीं सकता इस तरह, कि वह उससे अलग नहीं रह सकता और अब—लेकिन

डण्डे को पकड़ने के लिए दौड़ता हुआ होकर वह रुक गया। भयंकर अनिर्णय। शिथिल—और खुद को गाली भी दे सकने में असमर्थ, खड़ा रहा। सामने आसमान किसी आई हुई आँख की तरह लाल था। वह किसी नींद में चलते आदमी की तरह चलता रहा—सीधा। पीले बोर्ड पर लिखा था—लखनऊ चारबाग—उसके खंभे से टिककर यश खड़ा हो गया था। सुमि की आँखों में कोई काली पड़ती जा रही थी। पता नहीं, दूर के किन किन किनारों पर रोशनियों की चिड़ियाएँ उड़ना चाह रही थीं, पर उड़ नहीं पा रही थीं। आसमान के छोर पर थरथराती हुई ललाई शेष थी। क्या नदी काँप रही थी वहाँ? पता नहीं। कुछ दिखा नहीं। पर सुमि काँप रही थी। उसके निचले होंठ पर जो लाल लकीर खींच दी थी यश के दाँतों ने पिछलीबार वह फिर से दीखने लगी थी।

सुमि का मन बहा जा रहा है—'उसके हाथ पर जो हथेली रख दी थी मैंने – उसका चिह्न क्या अब भी होगा वहाँ? अभी होगा —पर धीरे-धीरे घुलता इस आसमान के रंग की तरह।' स्टेशन पर रिक्शे खड़े थे—एक कतार में—यहाँ-वहाँ किन्हीं रिक्शों पर हिलती हुई रोशनियाँ—एक धुँधला रिक्शा जो ले जाएगा सुमि को उसके उदास लोक में। एक झुरझुरी। उसने पता किया था गोंडा के बादवाले स्टेशन पर कि क्या किसी तरह लखनऊ पहुँचा जा सकता है? हाँ, भटनी या गोरखपुर में कोई गाड़ी बदलकर—पर रात के एक बजे। मतलब यश के पूरी तरह सो जाने के बाद। क्या होगी उसकी व्याख्या?

'अजी, टैक्सी से जाइये बहनजी, यहाँ से या वहाँ से। रुपये कोई ज्यादे नहीं लगेंगे' : जाएगी वैसे ही। जरूर जाएगी। जाना ही होगा उसको। वह रह नहीं सकती यहाँ या कहीं। ग्यारह बजे पहुँच जाएगी। यश के सोने से पहले। उसे बरामदे पर रिसीव करेगी। वह चकित रह जाएगा। शायद विस्मय में बेतरह चौंक भी जाएगा, उसको उसका भूत समझकर, पहली नजर में। हाँ, हाँ, यहीं से—टैक्सी से···। वह एक धुँधले कोने में जाती है और अपना पर्स उलटती है —२० रुपये : उसकी पूँजी।

वह कोई लम्बी साँस नहीं छोड़ती, एक गमकता रूमाल नाक से लगा अँधेरे में बढ़ती है। क्यों नहीं हैं उसके पास रुपये ? और यदि रुपये नहीं हैं तो भी क्यों नहीं जा सकती वह अपने यश के पास ? बचकाना 'क्यों' —छिः, खुद को कोसती एक तरफ बैठ जाती है। टिफिन केरियर से निकालकर चार जलेबियाँ, (इन्हीं जलेबियों में से एक यश के मुँह में रख दिया था) एक सिंघाड़ा खाने लगती है।

सामने कुछ लड़के कतार बनाये खड़े थे। कैसा खेल ! वह करीब जाकर देखना चाहती है—खड़ी होकर। पर ट्रेन चल रही है। दो-दो होकर गलबाँही डाले कतार में निकलते और कुछ फुसफुसाकर आते आपस में :- तेज आवाज में कुछ पूछते और जबाब पा दो ओर बँट जाते। वह छाती पर बाँहें बाँध लेती है। उसकी सहेलियों ने उसे धकेलकर उसको उसकी दुनिया में लौटा दिया है। नहीं, वे उसको अपने बीच नहीं रहने दे सकतीं। वे शोर करतीं, दुपट्टे उड़ाती अपनी दुनिया में लग गयीं। वह वह कहाँ थी उनके बीच ?

कहां थी !

वह वहीं थी, जहाँ वह थोड़ी देर पहले यश के साथ थी : 'बेबी, इतना हसीन कुली तुम्हें कहाँ मिलेगा ?' और वह हँसी थी। मानों उसने कहा था : 'मेरे हसीन कुली, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। और यह मुस्कान मेरी दी हुई मजूरी है। तुम्हारा पारिश्रमिक।' उसके हाथ में उसकी अटैची नहीं थी, उसकी बाँह थी मसृण।

तो यश को भी लौट जाना होगा, यह तय था। त्रिशंकु की तरह, अधर में लटका, लार चुआता। आखिर क्यों नहीं जा सकी वह उसके साथ ? कैसे बैठ गई ? क्यों स्टेशन पर छूट रही चीजों के साथ वह छूट नहीं गई ? क्यों गाड़ी के साथ दौड़कर वह ठिठक गया ? क्या सचमुच अभी वह यहाँ पैसे का इन्तजाम नहीं कर सकती ? अपनी घड़ी बेचकर या गिरवी रखकर भी ? यह कैसा अनिर्वाय है जो उसे खुद से विभक्त कर रहा है ? हाँ यह तर्क है कि कपड़े गंदे हो गए हैं, कि आखिर कल

वहाँ भी अलग होना होगा, कि वहाँ बहुत सी उलझने पैदा हो सकती हैं, जैसे···। पर क्यों, यह रुका क्यों ? क्या यह छलछलाती उदासी सच नहीं ? और यह असह्य वियोग ? और यह तथ्य कि वह यश के बगैर नहीं रह सकती ? तो फिर यह 'क्यों' क्यों ?

कैसी होती है लौटती यात्रा ? एक बर्थ पर ठिठुरी लेटी—शीत भीगी हवाएँ : लखनऊ स्टेशन थोड़ी देर में एक स्वप्न लोक बन गया—झिलमिलाती रोशनियाँ···।

यही है मुजफ्फरपुर; उसका नरक। रिक्सा पर चढ़ते, अपने घर की ओर बढ़ते—वह न जीवित थी, न मृत। अभी ही क्या है ?

कुछ नहीं है सुमि के पास, एक रूमाल है जिसे बड़ी एहतियात से पर्स से निकालती है और सूँघकर फिर सहेज लेती है। लेकिन यह गंध धीरे-धीरे मद्धिम पड़ती जा रही है। एक दिन वह नहीं रहेगी और वह रीती हो जायगी। वह कौन सा सेन्ट है जो यश लगाता है ? सुमि उसे उसकी देह-गंध से संयुक्त कर चुकी है। जब वह मिला था, शायद उसके वक्ष पर उसका हल्का सा स्पर्श था। उसे नथुनों में खींचती वह किसी अनगए लोक में चली गई थी। यदि यश बता सके कि वह कौन सा सेन्ट है, तो वह उसे रखे। उसकी गमक यश की देह-गंध से अभिन्न है उसके लिए। वह जल्द खत लिखकर पूछेगी : रूमाल की गंध के मरने के पहले।

देह की साड़ी अब तक नहीं बदली है। आज बदलते-बदलते रुक गई। इसको यश ने छुआ था। इसकी कुछ सलवटों में यश है। उसके पर्स में यश की गंध है। वह जैसे अचानक खिल उठी। तत्परता से किवाड़ बन्दकर विस्तर पर लेट जाती है। जैसे वह यश की देह हो। अब तक उसने साड़ी नहीं बदली है। दिनभर कोशिश रही है कि कोई आए तो चाय बनाते उसके कालिख न लगे। सहेलियाँ भी आएँ तो सामने की चौकी पर बैठें। पर यह कब तक होगा ?

रात के सवा ग्यारह हो रहे हैं। यश गोमती के तट से लौटकर बहुत पहले आया होगा। कल सुबह भी वह जायगा—सूर्य-पूजा देखने।

थका होगा। वह अभी उसकी देह नहीं दबा सकती। सुबह ही जाएगा वह ? उतनी सुबह ? शीत में ? शायद अपना हल्का कोट पहनकर ?

सुमि घर के कामकाजों से निपटकर पहला काम यश को पत्र लिखने का करती है। अभी उसके पास कहने की इतनी बातें हैं कि कलम को कागज पर छोड़ देने की जरूरत है। किसी खण्ड काव्य की सारी स्थितियाँ उसके मन में बज रही हैं। वह लिखने लगती है—

'मेरे भीतर का दर्द अभी बहुत गाढ़ा हो उठा है। तुम बुरी तरह याद आए हो अभी। सड़कपर चलते हर पुरुष को मैं एक बार चौंककर देखती हूँ जो तुम्हारी कद-काठी का होता है। फिर गहरी निराशा में सर घुमा लेती हूँ ? जिसे चैन कहते हैं, शांति और व्यवस्था और जीवन की ताल कहते हैं, वह तुम्हारे पहलू से दूर रहकर कतई सम्भव नहीं, एक क्षण को सम्भव नहीं।

कभी तुम मुझे छोड़कर चले जाते हो, कभी मैं तुम्हें छोड़कर चली आती हूँ। क्या यही होता रहेगा हर बार ? इसी तरह हम एक दूसरे को छोड़कर चलते रहेंगे—अपने-अपने अंधकारों में ? मैं तुम्हे पाना चाहती हूँ एक बार कभी नहीं छोड़ने के लिए। एक बार अपने भीतर घुला लेने के लिए। क्या ऐसा नहीं होगा कभी ? तो क्या रेत के छली फैलाव पर मैं दौड़ रही हूँ ? हाँ, मैं यह समझ सकती हूँ कि चैन तुम्हें भी नहीं है, कि भीतर तुम्हारे है वह अग्नि की बाँह जो हाथ उठा-उठाकर मुझे बुला रही है। पर क्या, इससे क्या ?

तुम नहीं देख सकते इस साँझ को, इस माहौल को, इस आर्त्तनाद को। तुम इस कागज को भी नहीं देख सकते। छत के झज्जे पर विमर्म खड़ी मैं और नीचे शोर : मेरे लिए चारों तरफ एक साँय-साँय करता सन्नाटा। कोई फर्क नहीं पड़ता मैं वहाँ खड़ी रहूँ या नीचे कूद जाऊँ। लेकिन इससे ही क्या फर्क पड़ जायगा जो मैं कमरे में आऊँ और कागज पर लगातार-लगातार तुम्हारा नाम लिखती चली जाऊँ। अब लिखने के नाम पर तुम्हारा नाम लिख पाना ही संभव है। पर इस संभावना से ही क्या

बनता है ? कुछ नहीं बनता है यश, मेरे एकांत समर्पण से तुम्हारे प्रति। हमारे बीच दूरी की वह ऐंठी हुई रस्सी बराबर हमें विभक्त करती हुई, है और है केवल यही है।

सुनो, तुम आओगे नहीं ? दो दिनों को। केवल दो दिनों को मेरी पहली परीक्षा ५ जुलाई को होगी फिर दो दिनों—तीन दिनों के बाद लगातार। क्या २५ या २६ जुलाई को आ सकते हो ? जानती हूँ यह इच्छा जाहिर कर तुम्हें साँसत में डाल रही हूँ। जानती हूँ कि तुम्हें 'ना' कहनी है आखिरकार, हाँ ढेर से रोने, बहाने और असुविधाओं-विवशताओं के बखान के साथ। पर मैंने तो अपनी बात कह दी। यदि इच्छा केवल मेरी हो तो तुम्हें नहीं आना चाहिए। पर यदि तुम्हारे भी भीतर कोई चीखती हुई चाह हो तो तुम आकर ही रहोगे। पता नहीं वह दिन कब आएगा जब तुम अपने लिए आओगे मेरे पास। बोलो आओगे यश, आ सकोगे, आवोगे बोलो; बोलो। यह आखिरी बार कह रही हूँ तुम्हें आने को। मैं समझती हूँ तुम्हारी विवशताओं बाध्यताओं को और रास्ते की उन तकलीफों को जो सहज ही तुम्हें झेलनी पड़ेंगी, पड़ती हैं, पर मेरी ऐंठन ! इसका क्या करूँ ! हाँ, अगली बार से यह मैं ही हूँगी जो तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक दूँगी और तुम्हारी रात की जागी आँखों को चूमूँगी।

एक बार आ सकोगे यश ! क्या यह असंभव मांग है। क्या मैं अंधी हो गयी हूँ प्रेम के उन्माद में ? यश आओ, आओ यश एक बार। केवल एक बार। तब दो दिन तुम रहकर गए, पर इन दिनों का कितना बड़ा हिस्सा तुमने रोकर, मुझे रुलाकार—निकाल दिया। मुझ पर अविश्वासकर, दुत-कार कर, स्वयं को प्रताड़ना देकर। एक बार २५ या २६ जुलाई को—दो दिनों के लिए, न हो तो एक ही दिन के लिए। मुझे अपने उजले स्नेह से भर दो, मुझे इतनी ताकत दे दो कि तुम्हारी बगलगीर न रहकर भी मैं अपनी जीवनी शक्ति नहीं खोऊँ। समझो, यश, तुम्हारा आना बहुत जरूरी है, अनिवार्य है। यदि तुम नहीं आते……'

आज दोपहर यश का सुमि का पत्र मिला है। खाने के लिए बाहर निकल रहा था, कि डाकिये ने पत्र दिया—'प्रति-श्री यश लाल' भीतर आनन्द का एक धमाका होता है। किवाड़ों को खोल, बिस्तर पर गिर पड़ा है वह। 'कितना खूबसूरत पत्र तुमने लिखा है बेबी, तुम नहीं जानती कितना' कि बार-बार उसे पढ़ता रहा हूँ, बार-बार पढ़ने की तबियत होती है उसको। अभी-अभी उसे फिर एक बार पढ़ा है—पता नहीं, कितनी बार। इस पत्र के एवज में वह सुमि को एक लम्बा, गाढ़ा चुम्बन—उसकी गर्म, रहसीली नाभि पर देना चाहता है।

तो सुमि पति के साथ कहीं घूमने जाने वाली है? क्या जरूरी है अभी जाना! वहाँ यश है कि असंभव कल्पनाएँ बुन रहा है। सचमुच असंभव? कि समय मिलते ही वह उससे मिलेगा। फिर वह सोनपुर मेले में तो आना ही चाहता है। इस मेले में एक दूसरे का हाथ पकड़े, मूँगफलियाँ चबाते, बैलगाड़ियों के पीछे भटकेगा। भीड़ में घुसते, भीड़ से निकलते वह बराबर एक दूसरे को पकड़े रहेगा। सुमि जाएगी न—मेले?

शाम, सुमि को याद कर ही रहा था यश, पन्ने पर उसका नाम लिखते, कि एक सज्जन आ धमके। शायद सुमि जानती है उसको—कुमार पारस। ए परफेक्ट बोर। घबड़ाहट में पन्ने को अटैची में रख देता है। आज काफी हाउस बन्द है—रविवार है न। सुमि से वह कहेगा कि वह काफी हाउस अब बहुत कम जाता है—वह भी केवल श्री सिंह के लिए। श्री सिंह ने अपने यहाँ बुलाया था शाम—आग्रहपूर्वक। साथ पारस भी हो जाता है। उसको अपनी प्रकाशित रचनाएँ देखनी हैं जो श्री सिंह के पास हैं। बहरहाल।

अभी रात के बारह बज रहे हैं। थश सुमि के खत को एक बार और पढ़ता है। उसके सभी चित्र सामने फैलाकर देखता है। अभी बार-बार उसकी मुस्कुराहट याद आ रही है। युगनद्ध हो जाने के बाद जब उसकी स्निग्ध त्वचा को सूँघते हुए वह उसके होंठों को बेसाख्ता चूमता था—देर तक—देर-देर तक—तो सुमि उसके माथा उठाने पर मुस्कराती थी।

एक बहुत-बहुत उजली मुस्कुराहट—सुमि नहीं जानती कितनी—यश को भिगोती हुई। उसके होंठ किसी आदिम रस में डूबे धीमे-धीमे चमकते होते थे और पता नहीं कैसा लावण्य उसके चेहरे पर छिटक जाता था। पता नहीं कहाँ से। अभी लगता है यश को, वह दृष्टि का अहसास होता था। तृप्त होने का उतना नहीं, जितना उसको तृप्ति दे पाने का। वह कहना चाहता है—'मेरी उदार प्रिया! तुम्हारी कमर को बाँहों में लपेटकर, मैं अभी फिर तुम्हारे होंठों को चूमना चाहता हूँ। लगातार। लगातार। लगा···'

सुबह के नौ बजे यश को अचानक एक बात याद आती है। एक बात जिसके केन्द्र में—नहीं, केन्द्र के केन्द्र में, पता नहीं कैसे सुमि है सुमि। कल श्री सिंह के घर गया था तो वहाँ News week में छपी पिकासो की तस्वीर देखी थी उसने। सिंह पुलकित थे। वह चुप। अचानक उसके भीतर डब्ब से कोई कंकड़ गिरा जैसे। वह बुरी तरह तरंगित हो उठा। एक चित्र था पिकासो का—The Dream—सपना। एक गदबदी सी लड़की है—औरत करीब-करीब—सुमि की तरह—एक कुर्सी पर उठंग कर सोई है। ढलका हुआ सर है, आँखें जैसे चेहरे और देह के बन्धनो से धीरे-धीरे निकली आ रही हैं - बहुत धीरे-धीरे पत्तियों की तरह निकलती हुई—या एक बच्चे की तरह बढ़ती हुई—जैसा किसी युवा कवि ने अपनी कविता में कहा है—उस बच्चे की तरह जो बढ़कर देहरी से निकल जाएगा। गोद में विश्रांति की मुद्रा में उसके हाथ पड़े हैं—एक दूसरे को छूते। लेकिन सपना कहाँ? सच. सपना वहाँ नहीं है, न उसके ढलके हुए सर में, न उसकी बह रही आँखों में। उसकी बाँयी छाती आधी खुली हुई है। निप्ल बिल्कुल हौले से निकला हुआ दिख रहा है। बस केवल आधी छाती। और सपना वही है। धीरे-धीरे फूटता हुआ एक सपना। अपनी पूरी स्निग्धता के साथ विस्तारित होता हुआ एक सपना—जल पर बनते हुए वर्तुलों की तरह। यश ने देर तक विभोर होकर उस चित्र को देखा है। फिर पत्रिका को उठाकर उस अधखुली छाती को बहुत धीरे से चूम लिया—इतना धीरे से कि उस सोयी लड़की की नींद

नहीं खुले। और उसको लगा कि वह सुमि की छाती चूम रहा है। सुमि, उसकी देह। उसने नहीं देखा है न, खुद को, यश की आँखों से—नींद में बौराते हुए, नहीं तो इसे समझ जाती वह।

सुमि, सुमि, सुमि। बीते दिनों उसने कितना सुख दिया है यश को—वह नहीं जानती। उसके पत्रों को बार-बार पढ़ना कितना पुलक देता है, वह जानती ही कहाँ है? एक पत्र परसों मिला था, एक आज मिला है।

आज का पत्र! सुमि ने यश का नाम अपने रक्त से लिखा है। ठीक है, प्रेम जब अपनी उन्मत्त बाँहें उठाकर अस्तित्व को मथने लगता है, तब ऐसी हरकतें ही सम्भव और सही होती हैं। वह कितना कितना खुश है आज। उसके रक्त की उस लिखत को उसने जाने कितनी बार चूमा है—सहलाया है। देर तक आँख भर उसे देखता रहा है और फिर वही बात: 'आँख भर देखा कहाँ, आँख भर आयी।' सुमि, उसकी आत्मा, उसका प्यार; देखे तो सही कि किस तरह वह मंजरित हो गया है उसके प्यार में!

आज से यश ने पढ़ना शुरू किया है सही अर्थों में। थोड़ी देर पढ़ा है, परीक्षा होने वाली है। यह बीच का समय। इतने दिनों तक उससे अलग रहने की बात जीवित रहते वह सोच भी नहीं सकता। वह आयेगी क्या उस बीच? या सोनपुर आयेगी मेले में? या वहीं उसके यहाँ आ जाए। पर संभव हो तो सुमि ही जाएगी, मेले में ही रुकेगी। पर मेले में शायद वे एक दूसरे का संगीत न सुन पाएँ। इसलिए वह लखनऊ ही जाएगी। लेकिन यदि वह जाने में बिल्कुल ही असमर्थ होगी तो यश को ही लिखेगी—वही आ जाएगा। आना ही होगा उसको—पर सुमि जल्दी करेगी तब—मगर वह यश के आग्रह को ध्यान में रखेगी-आग्रह के पहले हिस्से को।

यश 'एक अधूरी कविता' को पूरी करने की बात करता है। संकलन में उसको ही देने की बात करता है। या फिर कोई दूसरी लम्बी कविता लिखने के लिए कहता है—दिसम्बर तक में भी। व्यस्तता को ध्यान में

रखते हुए उसने यह सोचा है कि संकलन जनवरी में निकले। तब तक सुमि इतमीनान से लिख सकती है। वह सुमि को एकबार इसलिए बुलाना चाहता है कि वह आकर उसकी लम्बी कविताओं को पढ़े और हँसे। बुरी तरह पुरुषधर्मी हैं वे। हाँ, सुमि के पहलू में लेटकर कुछ नया लिखा जा सकता है तो आए न वह!

आज सुमि का कोई पत्र नहीं आया। रोज-रोज यश उसके पत्र का इन्तजार करता है। शाम तक आशा अटकी रही है। उसके पत्र का न आना कितना करुण बना देता है यश को। जानती है सुमि? दण्ड जो उसको देना था, खुद को दिया है उसने। बहुत देर तक—न जाने कहाँ – न जाने क्यों—भटकता रहता है—अकेला, पैदल। बुरी तरह थक जाता है। अभी कुछ पढ़ना चाहिए उसको। पर पढ़ पाएगा नहीं। कुछ भी पढ़ने के पहले सुमि की पाती पढ़ना जरूरी है। पर कहाँ है वह? क्यों नहीं है?

दो दिनों के बाद आज फिर सुमि का पत्र अभी-अभी एक अन्तर्देशीय मिला है ३०-१० का लिखा। वह क्या क्या सोचती रही है पिछले दिनो यश के प्रति? आखिर कौन सा वह विवर है जहाँ से सन्देहों की यह पिपीलिका-पांत निकलती है? छिः। हाँ, वह यह देख रहा कि विरह की जो दस दिशाएँ कही गई हैं आचार्यों द्वारा—उन सबसे सुमि गुजर चुकी है—अन्तिम को छोड़। स्मृति, गुण-कलन, प्रलाप, उन्माद·····। अब मिलन होना चाहिए, क्यों?

परीक्षा के बीच के लम्बे अन्तराल में क्या सुमि यश से मिलने जा रही है। यश एक्सप्रेस पत्र द्वारा उसकी सूचना चाहता है।

यश लिखे-अधलिखे उन सारे कागजों को सुमि के पास भेज देना चाहता है। सुमि के पत्र उसको मथते जो रहे हैं! वह कैसे सोच लेती है कि एक क्षण को भी वह यश के जेहन से दूर है। वह इसलिए उन कागजों को भेज देता है—उसके हृदय के आवेग जिनपर लिखे हैं—केवल इसलिए कि उन्हें पढ़कर उसे यकीन होगा।

सुमि यदि चाहती है कि वह परीक्षा दे तो उसके पत्र का किसी दिन

नहीं आना उसको श्लथ और अवसादमय बनाने के लिए काफी है। अब वह जाने। यश लिफाफे में खत चाहता है—लम्बे—सुमि के प्यार की तरह विस्तृत।

यश अपने लिखे कागज के पन्नों को लिफाफे में भरता है। कपड़े पहने है। बाहर निकलता है खाना खाने लिफाफे को भी गिरा देगा। मन, पता नहीं कैसे मोह से भरा आता है। ऐसा लगता है, जैसे ये शब्द, निरे शब्द न हों, यश की उंगलियाँ हों, जो सुमि की देह पर दौड़ रही हों—दौड़ी हों और इन्हें खुद से वियुक्त करना—अपने को कहीं दीन बनाना है। ऐसा क्यों है? शब्द क्यों उसके निकट शब्द नहीं हैं? वह कहाँ, किस चीज से जुड़े हैं?

अब तक सुमि को पत्र नहीं दिया यश ने। नाराज होगी? वह कारण जानना चाहेगी? उसके पास पैसे नहीं थे—यह मुहावरे में नहीं है, बिल्कुल ठीक है—मतलब एक भी पैसा नहीं था। इसलिए वहीं, उसका नाम कागज पर लिख-लिखकर संतोष करता रहा। आज रुपये आए हैं, पर इतने कम—ये दो चार दिनों में समाप्त हो जायेंगे। बहरहाल।

यश आज अम्बपाली पढ़ता है—उसमें बराबर सुमि की छवि देखते हुए। जहाँ वह अभी है—वृज्जियों का इलाका वही होता था न। अम्बपाली की मादकता, सम्मोहन, वशीकरण—सभी तो है सुमि में। उसकी अम्बपाली? क्या वह उसकी नहीं होवेगी?

वह खुद को छल रहा है। अन्ततः यह पन्ना भरेगा ही—कभी न कभी। इसे मोड़ना ही होगा और आखिरकर इस लिफाफे को भी अलग कर ही देना होगा खुद से। यही सच है। वह कब तक रोक सकता है इसे?

यश सुमि की प्रतीक्षा में है। साँस रोके—मुँह उठाये। निरन्तर उसकी प्रतीक्षा में। उसकी थकान देख रही है सुमि? और उसमें मन्द

बजते जा रहे उसके बल को ? क्या आकर उसे चूमेगी नहीं ? उसको पुनर्जीवन नहीं देगी ?

सुमि को आना है। आए। किसी भी तरह। इस अन्तराल में। उसके सपने; एक बार फिर सच होओ। वह उसके होठों, वक्षों और खुली जाँघों पर चुम्बन रखना चाहता है।

●

पांच

युद्ध वही नहीं होता जिसे जवान सीमा पर लड़ता है। एक युद्ध मैं लड़कर आई हूँ, सुदूर गाँव के घर में। दादी ने पिता जी का नाक में दम कर दिया था कि अब तनु का ब्याह कर ही दो। अब क्या वह घर में रहने वाली है ! और जबतक मैं घर पर रही मेरी पहरेदारी का काम जैसे दादी ने स्वयं उठा लिया था। यह करो, वह न करो, ऐसे करो, वैसे न करो। पड़ोसिन बुढ़ियों ने मिलकर दादी का मन इतना भर दिया था कि दादी को मेरा सीधा चलना भी उल्टा लगता था।

आज तीन महीने पर सुमि के घर आई हूँ। घर की चुप्पी और सन्नाटगी को देखकर लगता है—यहाँ भी कोई युद्ध जीकर गया है। पहले जब कभी मेरे आने की सूचना होती थी तो सुमि लपककर मुझे पकड़ती थी और खींचती हुई पलंग तक ले जाती थी। आज सुमि कहीं नहीं दीखती। मैं कुछ भी नहीं समझ पाती। सुमि के पति मिस्टर राजीव अपने नेम-प्लेट को साफ करते हुए बड़े ही अनमने दीख रहे हैं। उनके चेहरे पर इतना अधिक घना तनाव है कि मैं सहम जाती हूँ। कुछ पूछने पर वे ऐसी बातें न कह दें कि मेरा मन भारी हो जाए। मैं बिना कुछ पूछे आगे बढ़

जाती हूँ। वैसे भी मिस्टर राजीव से मेरी बहुत कम बातें ही हो पाई हैं। वे लड़कियों और औरतों में कम दिलचस्पी लेते हैं। पर्दा हटाकर भीतर घुसते ही सुमि किसी अपरिचित विस्मय सी दीखती है। कई दिन से नहीं झाड़े जाने के कारण रुखड़े बाल और गालों पर आँसुओं की सूखी लकीरें। बहुत पूछने पर सुमि ने बताया कि पिछले दिनों दरवाजे की हर हल्की आहट पर कैसे वह जागती रही। हलका भी खटका होता और वह उसको दस्तक समझती और दरवाजा खोलकर झटके से बाहर झाँकती। बाहर एक उदास दुपहर। वही अधपीला माहौल। कोई भी नहीं जिसके हाथ में एक बैग हो और चेहरे पर यात्रा के चिह्न हो और पाँवों में ग्वालियर की धूल हो। किस तरह चेतन अचेतन प्रतीक्षा कर रही है वह पिछले दिनों से उसकी—उन सबकी जो अपना सा लगे, अपना सा दीखे।

आखिर क्या हुआ कि घर बगैर घर का दिखने लगा। तमाम प्रिय पत्रों का सिलसिला एकदम बन्द हो गया। एक अनजानी बेचैनी मुझे मथ रही है। बिल्कुल कुछ पढ़ नहीं पाती—सुमि के पुराने हालातों के सिवा। जब से सुनती हूँ कि आज पन्द्रह दिनों से इसी बदरंग स्थिति को जी रही है सुमि तो सोचती हूँ कैसे देगी इम्तहान वह ? नहीं देगी। फिर यश का खयाल आते ही अपने आप से दुहराती हूँ निर्मल वर्मा का 'वे दिन' पढ़ा है न ! कैसे केवल तीन—गिनती के तीन दिनों के लिये उसके जीवन में आती है—सफेद चेहरे और भूरे बालों वाली वह लड़की और उसके ऊपर लगी वह एकरस जंग खुरच जाती है एकाएक और भीतर से उसका धातु चमकने लगता है। पहली बार कहीं कुछ होता है उसके भीतर। उसके भीतर जो अपने परिवार से कटा हुआ है दिनों से—बहन का पत्र पढ़ नहीं पाता। और अचानक वह खुल जाता है, खिल जाता है। कि बीतता है तीसरा दिन और वह वयस्क औरत अपने बच्चे के साथ चली जाती है उसे उसके कैशोर नरक में छोड़कर। यह क्यों होता है कि वयस्क लड़कियाँ नवयुवकों को एक बार अपने स्वर्ग में ले जाकर फिर उनके जहन्नुम में धकेल देती हैं। यह 'वे दिन' हो या राजेन्द्र राव की गवाही।

तो सुमि की चुप्पी से यह समझूँ कि सुमि और राजीव के बीच वह काले तनेवाला वृक्ष उग ही आया है आखिर धरती को फोड़कर—जिसका बीज मैंने बहुत पहले किसी दोपहर को यहीं, इस घर में देखा था। तो बात खत्म होती है। है न ?

तो फिर अब कैसी प्रतीक्षा मैं करूँ ? किसकी ? जब सुमि का ही यह हाल है कि कोई आएगी और मुझे चौंका देगी और बाँधलेगी। कि कोई मुझे बिखरने से रोकेगी ? कोई तो ऐसा हो जो दुलार दे और कहे—सुमि इम्तहान दे लो। ठीक इन्हीं स्थितियों में टूटता यश भी कहता होगा कि बेहतर है मर जाना या ठीक कहता था राजकमल – कस्साबों, गाँजाखोरों, रंडीबाजों की दुनिया में चला जाना। वहाँ ऐसी टूटन नहीं, छल नहीं, मोहभंग नहीं। अपनी सारी कविताएँ उसको नकली लगने लगी होंगी और पूरा अतीत झूठा—। जो है वही सच है; क्योंकि यही सदा से था—इससे नहीं मिलने के पहले से भी—हाँ कुछ कम –यह अवसाद, यह घुटन, उसकी यह मृत्युमुखी रेंगन। क्या है यह सब आखिर।

शाम के साढ़े पाँच बजे हैं। पूरा दिन मेरी छाती पर से रेंगता हुआ गुजरा है जैसे। मुझे लहूलुहान करता। उधर सुमि के गालों पर सूखी हुई आँसुओं की लकीरें फिर गीली हो गई हैं। 'पता नहीं किस अनजानी गहराई से उठकर आते हैं ये आँसू'—टेनीसन ने यह कहा था, मैं भी यही सवाल अपने चुनचुनाते रक्त और बिस्तर की बेचैन सलवटों से कर रही हूँ। यश के फोटो को आँखों से लगा-लगाकर भिगो दिया है सुमि ने। हाँ, यह यश का ही फोटो है जो इनदिनों उसने ताजा खिचाकर भेजा होगा। यह कोई कैशोर हरकत नहीं है सुमि की। मैं जानती हूँ कैशोर हरकतें इससे नहीं होतीं।

अभी अपना ही किया हुआ मजाक मुझे खल रहा है। एक दिन सुमि से कहा था मैंने कि रोज-रोज यश को पत्र भेजती हो। पढ़ने में मशक्कत करनी पड़ती होगी। या फिर शायद बिना पढ़े ही पत्रों को छोड़ देता होगा

वह। एक ही बातें, दुर्! कितना कोई पढ़े! अभी लगता है, क्यों कहा था मैंने वैसा!

मैं सुमि का ध्यान अपनी ओर करने के लिए कहती हूँ—

'तुमने सोचा भी नहीं कि कैसे दिन गुजरेंगे मेरे? मैं कहकर गई थी कि यदि कम से कम तुम्हारा एक पत्र रोज नहीं आता रहा तो मेरा क्या होगा? आज थोड़ी देर के लिए ही आई थी, पर लगता है, मुझको इसके पूर्व ही आना चाहिए था।'

'थोड़ी देर के लिये कॉलिज चली जाओ, तनु।'

'हाँ, जाना तो है ही। ढेर सी फीस मुझपर ड्यू पड़ी है। एक अवान्तर चिन्ता।'

'मेरी भी देखती आना। याद नहीं पिछले महीने फीस दी थी या नहीं।'

'यश ने तुम्हें कोई नई बात इधर लिखी?

'यही कि मेरे पत्र यदि लगातार-लगातार उसको नहीं मिलते रहे तो वह सब कुछ छोड़-छाड़कर घर चला जाएगा और खुद को खेती की भट्टी में झोंक देगा।'

'सच तुम्हें वह कितना-कितना चाहता है सुमि जितना किसी ने किसी को नहीं चाहा होगा। वह तुम्हारे बिना नहीं, रह सकता एक पल।'

'बोलो, क्या करना होगा मुझे? मैं कुछ भी कर सकती हूँ, जानती हो।'

'तो यश को जल्द बता ही दो, नहीं तो फिर बहुत देर हो चुकी होगी।'

प्यार में आदमी कैसे मैसोकिस्ट (Masochist) होता है, समझने लगी हूँ। मन करता है, अपनी चमड़ी फाड़ दूँ। अपनी सीअन-सीअन उधेड़ दूँ। शील ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि मैं उसके लिए कितनी ऊँची हुई चल रही हूँ। हॉस्टल में खाना खा नहीं सकी थी। यहाँ आते ही माथा ही घूमने लगा था। सुमि से कह भी नहीं सका कि मेरा मनिआर्डर मिल

गया है। दीदी ने रिसीव कर लिया था। खाना संभव भी नहीं है। अभी भी पता नहीं, कैसी तो तबियत हो रही है! पता नहीं, क्या है तरल सी चीज जो कण्ठ तक लबालब भर गई है। शील से पूछना चाहती हूँ कि वह खुश है न? उसको यह लिख भी देना चाहती हूँ कि यदि मेरे इतने धार-धार आँसू उसके होंठों पर एक मुस्कुराहट खींचे नहीं रख सके, तो इनका बहना बेकार है।

सुमि बाथरूम से आ गई है। उसके चेहरे पर कहने की ढेर सी बातें हैं। शायद वह पति के घर से निकलने का इन्तजार कर रही है। राजीव अपनी शर्ट का कालर ठीक करते हुए घर से चले जाते हैं। उन्होंने अबतक मुझसे कुछ भी नहीं पूछा, न सुमि से ही कुछ कहा है। सुमि की आँखों की आकुलता मुझ पर उतर आती है। अचानक वह पूछती है।

'क्या कोई ऐसी बीच की जगह हो सकती है, जहाँ जाकर हमलोग मिल सकें। तुरत बताओ मुझको। मैं क्या करूँ; समझ नहीं पाती। फिर तुरंत घर से निकलना भी ठीक नहीं। यह सन्देह का कारण भी होगा। कहो कि मध्यबिन्दु क्या हो सकता है और कहाँ?

मैं मध्यबिन्दु बताऊँ, इसके पहले से ही व्याकुल हूँ यह पूछने के लिए कि इस बीच में क्या सब हो गया?

'वैसा क्या बताऊँ कि क्या नहीं हुआ? अब तो यश के पत्र तक मुझ तक नहीं पहुँच पाते। डाकिया यह तक नहीं बताता कि पत्र कोई और ले लेता है। अब तुम आई हो, तुम्हारे पते से शायद पत्र मिले मुझको।'

एक क्षण के लिए सुमि की जगह अपने को खड़ी पाती हूँ और कहना चाहती हूँ, सचमुच कब से नहीं मिला एक लम्बा पत्र जिसमें उसकी उठी हुई बाहें हों जिन्हें मैं छू सकूँ। क्या जानता है शील कि उसके बारे में सोचते-सोचते मुझे लगने लगा है जैसे वह कोई अशरीरी गन्धर्व हो जिससे मैं किसी स्वप्न में मिली थी। मेरी देह पर उसका कोई स्पर्श-चिह्न भी नहीं; कुछ भी नहीं जिससे मैं कह सकूँ खुद को मनाती हुई धीरे से, यह रहा वह—यहाँ है उसकी छाप—उसका स्नेह-चिह्न! पीछे बजते हुए किसी

जंगल की तरह मैं खड़ी हूँ जिसे झिझोड़ती हुई हवा बहुत-बहुत दूर निकल गई है,—जंगल को केवल एक थपकार देकर, बेसाख्ता बजने के लिए छोड़कर।

'मेरा सारा सोचना गलत पड़ गया है, तनु। एक दिन मिसेस प्रसाद के साथ काफी समय तक रह गई। लौटते हुए ग्यारह बजने को आ गए थे। आने पर देखा कि सभी सन्नाटा खींचे हुए हैं। सितवा ने बताया कि मालिक ने खाना नहीं खाया है। मैं उनसे पूछने के लिए बढ़ ही रही थी कि अपने ट्रंक को खुला पाया और सारे सामान उधड़े और छितराये हुए। मैंने हाथ डालकर देखा तो यश के सारे वे पत्र जो तह करके मैंने रखे थे वहाँ नहीं थे। स्पष्ट था कि उन्होंने मेरे पीछे में वही सब किया था। मैं जैसे कटे पेड़ की तरह गिर गई। पत्र अवश्य रखे थे मैंने यश के। पर मेरे व्यवहार, स्नेह और सम्बन्ध में किसी के लिए कोई परिवर्तन कहाँ आया था! क्या ये सब सच नहीं थे? काफी देर के लिए मैं आत्मपीड़ा से छटपटाती रही, फिर उनके पास गई तो उनकी आँखों में आँसू थे। शायद वे आंसू मुझे बुरी तरह तोड़ देते, पर बाद को जो उन्होंने किया—वह मेरे लिए असह्य है और अत्यन्त अपमानजनक भी। ऐसा कैसे हो जाता है कि एक बात के कारण जीवन भर का सद्भाव राख हो जाता है। मैं चौखट पर भी जाऊँ तो वहाँ की हवा मुझे रोकती है। वे सारे लोग जो पहले हम सब के थे, लगता ही नहीं कि अब उनका मुझसे कोई रिश्ता है! उस दिन से मेरा कहीं आना-जाना भी बन्द है। उस दिन एक शादी में जाना था। पर वे गए—मुझसे पूछा तक नहीं कि मुझे जाना है कि नहीं। इस तरह मेरे सारे कार्यक्रम शिथिल पड़ गये हैं। इतना अधिक डिस्टर्ब किया है इन्होंने मुझको कि मैं इस जिन्दगीसे ही तंग आ गई हूँ। शायद एक विजेता के उन्माद में उन्होंने अपना तो सब कुछ ठीक ही रखा है—मैं हर जगह से टूट गई हूँ। ठीक है, मुझे कोई शिकायत नहीं; खुशी ही है कि उन्होंने स्वयं को उदास नहीं किया। यदि मैं यह जान सकी कि वे भी उदास रह रहे हैं तो मैं मरने-मरने को हो जाऊँगी। मगर मेरी चीजें–जो मेरे लिए साँस की

तरह जरूरी लग रही हैं अभी : यश की तस्वीरें, पत्र—मेरे पास नहीं हैं।'

मेरी आँखें झलफलाने लगती हैं। भीतर से जैसे कोई हाहाकर कर उठता है ! कितनी सुखी है सुमि ! यश के लिए कितना कुछ झेल रही है। यह दुख भी कितना-कितना सुखद है···। काश, मैं भी यह सब झेल पाती। मैं भी कह पाती कि 'तुम्हें संबोधित करती रहना चाहती हूँ, शील ! अभी लग रहा है कि तुम्हारे बिस्तर पर अधलेटी तुम्हारे पैड में मैं अपने सवाल लिख रही हूँ, जिनके उत्तर मेरे दिमाग में पहले से ही बज रहे हैं और तुम अभी अभी भीतर गये हो; शायद एकांत को भाँप पाने।' हर पत्र को लिखने के बाद मैं भी महसूस करती कि पत्र को समाप्त करने की पीड़ा क्या होती है। पत्र का खात्मा कैसे होता है, मुझे नहीं मालूम।

मैं सुमि को सह नहीं पाती। हॉस्टल चल देती हूँ। सुमि सुनो-सुनो कहती रह जाती है। आज फिर मैं औंधे मुँह लेट गई हूँ। जाने कहाँ-कहाँ की बातें मेरे मन में आ रही हैं। नामाकूल टेनीसन क्या ठीक था ? ऑटम-फील्ड्स की ओर देखते—बसंत लदे खेतों की ओर देखते—उसकी आँखें किसी डिवाइन डिस्पेयर—किसी स्वर्गिक निराशा में छलछला आई थीं; यह पढ़ मैं कितना हँसी थी। याद है, पहली बार जब यह कविता पढ़ रही थी, बिस्तर पर अधलेटी थी। झल्लाकर किताब मैंने दूर फेंक दी थी। कोने में लगे मकड़ी के जाले के पास वह बिखर कर गिर पड़ी थी—औंधी और मुड़ी।

अब सोचती हूँ, कि क्या वह किताब वहाँ होगी ? उस कोने में—असहाय—कातर। मैं किसी अनाम भय में थरथराती उसे पवित्रता पूर्वक उठाऊँगी और अपनी हथेली को कोमलतम कर उसे पोंछ अपने सिरहाने रख दूँगी। आज फिर मेरी आँखें भर आई हैं। टेनीसन की तरह नहीं; मेरी तरह।

अभी हथेलियों में मुँह रोपे कैसी स्थिति है, कह-बता नहीं सकती। करीब-करीब रतजगा ही हो जायेगा। लॉन से लाया गेंदा का एक फूल

था—उसकी पंखुड़ी-पंखुड़ी बिखरा दी है मैंने। अब करने को कुछ भी नहीं है। ऐसा सोचते ही सुमि को लिखने बैठ गई हूँ। उससे अधिक बातें नहीं हो पाई थीं। शायद पत्र में कुछ अधिक कह सकूँ। सम्बन्ध कुछ अधिक पुख्ता बन सके और सुमि को अतिरिक्त आश्वासन भी मिलजाय इसी ध्येय से लिखती हूँ कि 'शील का खत आया है—कहूँ, खत आये हैं। महीने के अन्त तक 'अन्यथा' आएगी। झपाई में देरी हुई, अंक योजना से अधिक समावेशी हो गया—करीब ६४ पृष्ठों का। मेरी सात आठ के लगभग कविताएँ होंगी। पर हैं वे विशुद्ध कविताएँ। शायद तुम उन्हें पसन्द करो। फिर भी, यह सच है, कि वे पूरा प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं मेरा। मेरा विकास क्रम भर देखा जा सकता है उनमें। पिछले दिनों में मैं काफी आगे निकल आई हूँ उस भूमि से। फिर भी उनके लिए मैं लज्जित नहीं। वे वैसी कविताएँ हैं जो कभी पुरानी नहीं पड़ सकतीं। कविता की आदिम धारा से जुड़ने का प्रयास बराबर मेरा रहा है, और इसकी परख उन कविताओं में भी की जा सकती है। फिर सम्पादक की भी अपनी सीमा है। जिस निरामिष ढंग की कविताएँ उन्होंने चुनी हैं। उससे उनका परिचय अधिक मिलेगा; मेरा कम। फिर भी···।

रात जैसे-तैसे बीती है सुबह कालेज होते हुए सुमि के घर जाती हूँ। यद्यपि जाने के पहले एक सौ बार सोचना पड़ा है, जाऊँ कि नहीं जाऊँ। जाते ही सुमि कहती है, 'क्या कहूँ! तुम उसे गलित भावुकता समझोगी। उस दिन बता नहीं सकी थी कि यश आया था और आदमी भेजकर पता लगाने से जब थक गया तो खुद आया था। इन्होंने वैसी अपमानजनक बातें उससे की कि किसी भी भलेमानस के लिए वे असह्य थीं। और मैं असहाय की तरह सब कुछ देखती लहू का घूँट पीकर रह गई। उसने बस एक तरंग में, वह भेज दिया है जो उसने यात्रा के दौरान लिखा था। लो, खुद पढ़ लो। समानान्तर चलती उसकी मानस-यात्रा का एक हल्का सा परिचय शायद तुम्हें मिल सके। ठीक से पढ़ना, उसने इसको लौटा देने के लिए कहा है। सच मानो तनु, इन पत्रों को पढ़ते हुए मेरी ये तमाम

पीड़ाएँ मुझे कहीं से भी छू नहीं पातीं। उनके तमाम प्रतिबन्ध और शोषण कपूर की तरह उड़ते दिखाई देते हैं। उन यातनाओं से ये सुख कहीं अधिक जीवंत लगने लगते हैं। अपने घोर निराशा के क्षणों में हर एक के चेहरे पर मुझे घृणा की बू नजर आती है। ये पत्र उन क्षणों के सहारे हैं मेरे—मेरे जीवित अहसासों के साक्षी।

सुमि के हाथों से लम्बा खत लेकर पढ़ने लगती हूँ! यह खत से अधिक यात्रा-वृतान्त लगता है। मेरी मनःस्थिति यश के समानान्तर हो गई है! पत्र जहाँ से शुरू करती हूँ, वहीं लिखा है—'समस्तीपुर : शाम के पाँच। गाड़ी आउटर सिगनल के पास आकर रुक गई है। बगल की लाइन पर एक गाड़ी रेंगने-रेंगने को है। उत्सुकता और बेचैनी-लपेटे चेहरे खिड़की से झाँकते हुए यात्रा-मात्र पर पछताते नजर आ रहे हैं। सूरज अभी-अभी बादलों में ढँका है, पर उसके पाँवों की उष्णता अभी भी मैं अपनी फैलायी टाँगों पर महसूस कर रहा हूँ : मेरी पैण्ट काली है और काला रंग सूरज की उगलियों को अधिक गर्मजोशी से जज्ब करके रखता है।

सामने की बर्थ पर एक मूँछ माते सज्जन विरम रहे हैं। अभी कोई मालगाड़ी बाँयीं ओर की पटरियों पर हचकने लगी है! दाहिनी ओर की ट्रेन भी चिचिआती निकलने लगी है।···निकल गई है। एक समवेत भारी साँस छोड़ी है लोगों ने। गार्ड के कम्पार्टमेन्ट के दरवाजे पर एक पान बेचने वाला छोकरा खड़ा है—अपनी 'दूकान' को छाती पर टाँगे। गार्ड क्या लेगा इससे—सफर के एवज में—दो खिल्ली पान और एक चुम्बन (लड़का कमसिन है और गोरा चिट्टा भी)—?

अगल-बगल सूँ-सूँ करती उदासी है अब। बस। क्या करूँ! ब्रीफ-केस को खोलकर फिर वह फोटो निकाल लूँ और देखता रहूँ कि उन दो पन्नों को फिर से पढ़ूँ जिन पर किसी खुशगवार मूड में लिखे गये हमारे सवाल जबाब हैं। ह्यूमरस मूड में मैंने वैसे किया-कराया था, पर क्या जानता था कि वह कोई छाती से चिपका रखने लायक चीज़ होगी।···समस्तीपुर

में जब कम्पार्टमेन्ट में बैठा था—मैं अकेला था सेकण्ड क्लास के डिब्बे में। निकाल कर उस फोटो को चूमता रहा था—आकण्ठ क्या भरा था—है—मुझमें ? वह क्या है ? मैं क्या करूँ ! अब लौट नहीं सकता। कितना ऑकवर्ड (awkward) होगा यह ! अपमानों का वह जहर कैसे पिया जाएगा ? मगर मैं आ कैसे सका हूँ ! क्या सचमुच आ गया हूँ— उससे मीलों दूर। हाँ—वह कहीं नहीं है—उसकी आँखें—उसके तलबे—उसकी काँखों—उसके पूरे जिस्म में उगी हुई—मुझे सहलाती स्नेह शिथिल उँगलियाँ—कहीं नहीं हैं। मैं बहुत दूर हूँ—मैं बहुत दूर हूँ—बहुत बहुत दूर। ··

ट्रेन चलने लगी है। साँस तेज-तेज चलने लगी है। अभी दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया था। किनारे अपना माथा टिकाकर। लेकिन ठण्डे लोहे का स्पर्श नहीं मिला था—जो मैं चाहता था। जमीन, गिट्टियाँ, लोहें की लकीरें—समानान्तर दौड़ी जा रही थीं—तेज। एकाएक मुझे लगा मैं फ़ालतू हूँ। निरर्थक। दिग्भ्रमित। एकाकी। कहीं कोई नहीं। न जहाँ से आ रहा हूँ वहाँ, न जहाँ जा रहा हूँ वहाँ। शायद वह भी थोड़ी उदास होगी अभी। थोड़ी। वैसी ही उदासी जैसी किसी पुराने रूमाल के गिर जाने पर होती है। वहाँ होगी तनु। उसके साथ कोई उदास या विरक्त नहीं रह सकता। लौटने में मैंने उसे ठीक से देखा तक नहीं था। कहीं गोष्ठी से आई होगी या कहीं विजिट दी होगी उसने। दिव्या के हाथ में डायरी देखी थी। उसके बारे में सुमि ने ही बताया था। कार्यक्रमों, गोष्ठियों में जी बहल ही जाएगा उसका। शाम जीप आएगी उन्हें लेने आयोजकों की। अब तो वह जाएगी ही। राजीव के साथ। कौन-सी साड़ी पहनेगी भला वह ? वह फूलों वाली तो नहीं ही। पता नहीं कौन-सी साड़ी होगी वह ?

धूप फिर निकल आई है। पीली, बदरंग सी धूप। सामने की बर्थ पर पड़ने लगी है। मेरे पाँवों पर। मैं पाँव मोड़ने के पहले माथे से बहुत कुछ झटक देना चाहता हूँ।

राजीव ने वह डायरी लाई होगी, जिसे खरीद देने का इसरार वह देर तक पटना में करती रही था। निश्चित ही खूबसूरत होगी वह—काले चमड़े में मढ़ी शायद—उसकी कविताओं के लिये विशेष। प्रकाशक के साथ हुई बात-चीत अभी वह सुना रहा होगा--संकलन निकल ही जाना चाहिए अगला। कौन कवि यशःप्रार्थी नहीं होता।

गाड़ी फिर रुक गई है। एक थके हुए अन्दाज में सारी चीजें अगल-बगल पड़ी हैं। शायद गाड़ी ने अभी सीटी दी है।

पौने छः बजे हैं। अभी क्या कर रही होगी वह? चाय बनाई होगी उसने। शायद उसमें नींबू निचोड़ रही होगी—अपनी दाहिनी बाँह को उठाकर। या कि प्याले को लेकर कमरे में होगी—उजली धूप की तरह मुस्कराती—लीजिए हनुमान जी, चाय।

आह! मैं इतना कमजोर क्यों हो गया? प्यार तो मजबूत करता है—भीतर कहीं। क्यों अचानक इतना छूँछा हो गया मैं। आज सुबह तक कितना समृद्ध था। किसी पूरे-पूरे बढ़े आम के पेड़ की तरह—जिसमें पहले फल अब लगने ही वाले हों—बहुत-बहुत मंजराया।

क्यों वह इतनी निष्करुण थी—मुझे छोड़ने के लिये आई हुई। मुझसे दूर-दूर चलती। आँखें चुराती। उमड़ रहे आँसुओं के साथ जब मैं उसके लिए हाथ हिलाने जा रहा था, क्यों एक ग्लानि बोध में भर गया। क्यों मैंने खुद को दरवाजे में से नीचे फेंक देना चाहा—चलते काले पहियों के नीचे। क्यों मैं एक बार लड़खड़ाया और तेजी से पलटकर अपनी सीट पर बैठ रहा चेहरा सख्त किये। कितने क्यों हैं, जिनका कोई जबाब नहीं। कितने क्यों हैं जिनकी प्रश्नवाचक नोंकें पिछले दिनों से लेकर अब तक मेरे माथे में चुभ रही हैं।

रात के साढ़े दस : यह बरौनी है। आसाममेल के एक सेकण्ड क्लास कम्पार्टमेंट में बैठा हूँ। सामने दो व्यक्ति हैं—एक मियाँ मुच्छन--दामोदरन सागर सर्कस के परसोनल (personnel)। दूसरे कोई सिन्हा जेनेरल इन्श्योरेन्स कम्पनी के सर्वेयर। एक हल्का सा मैत्री-भाव पैदा हो गया है।

हमारे बीच कभी सर्कस की बातें तो कभी साहित्य की। कभी चाय की प्याली। पर सुमि कभी नहीं भूलती। उसके गाल पर उगा हुआ मेरा दंत-क्षत—लेकिन जिसपर बार-बार उफला आता हुआ मेरे लिये एक बेहूदा अपरिचय! सामने सिन्हा और दामोदरन किसी सर्कस की किसी ख्यात तारिका के विषय में बात कर रहे हैं। ट्रेन अलविदा के बाद लगे पूर्ण विराम की तरह रुकी हुई है। भीतर रोशनी नहीं। खिड़की खोलकर प्लेटफार्म की रोशनी को भीतर न्योता है। दामोदरन और सिन्हा भीतर ही भीतर शायद मुझे एक 'मूडी' साहित्यकार समझ रहे होंगे—अभी किसी 'छान्दस उन्माद' या ऐसी ही किसी चीज में उमगा हुआ—उनकी बात-चीत से अचानक विरक्त होकर कुछ लिखने में लीन। वे नहीं समझ सकते कि दामोदरन अभी जो सनसनी खेज किस्सा सुना रहा है, वह मुझे कहीं से छू नहीं सकता—खींच नहीं सकता—उस अर्द्धमृत लोक से जहाँ मैं हूँ।

पता नहीं ट्रेन कब खुलेगी। रात के बारह के पहले शायद नहीं पहुँच सकूंगा पटना। वहाँ मीनू के डेरे पहुँचकर खासी दिक्कत हो सकती है। पहले दरवाजे पर जड़ा ताला—पता नहीं कितनी चीखों के बाद खोलेगा कोई आकर। और यदि वर्षा हो रही हो तो ऐसी हर संभावना कुन्द। देखा जाएगा। टिकिट भी जेब में बरौनी तक का ही है। यानी यहीं तक का। मसला यह है कि अपने को किन्हीं स्थितियों में फेंक देने के लिये तैयार हूँ। समय काफी मिला था—बरौनी में बाहर जाकर टिकिट खरीद सकता था। पर पता नहीं कैसे आलस्य में मुरझाया पड़ा था—हूँ। फिर दामोदरन और सिन्हा। बहरहाल 'आगे-आगे देखिये होता है क्या'—

मैं नहीं चाहता कि सुमि को याद करूँ। यानी अतिरिक्त याद करूँ—ऐसा नहीं चाहता। लेकिन रात के दस-चालीस हुए हैं। यह सोचे बिना रहा भी नहीं जाता कि वह अभी कहाँ होगी—कैसे? उसने शायद नीली साड़ी पहन रखी होगी—जैसी पटने में रेडियो के सम्मेलन की रात पहनी थी और राजीव के साथ मंच पर होगी—राणीत सती मन्दिर में—या फिर

श्रोताओं की अगली कतार में—राजीव की दृष्टि की सीध में। दिनेश वर्मा से बातचीत हो चुकी होगी। प्रभाकर श्रीवास्तव भी उसके परिचित हैं। वे भी मिले होंगे। शायद कल उनका न्योता हो—आयें हमारे साथ चाय लें या भोजन—राजीव ने सुमि की ओर देखते हुए हँसकर कहा होगा।··· मैं अगर नहीं चला आता तो यह कितना पीड़क होता और असुविधाजनक सुमि के लिये। खुद को वहाँ जाने से रोकने में मर्मान्तिक वेदना झेलनी पड़ती उसे। संभव है, इतने दिनों के सान्निध्य के चलते कहीं थोड़ा जरूरी लगता होऊँ मैं उसे; पर अब तक मैं अर्द्धविस्मृत हो चुका होऊँगा उसकी स्मृति में। क़हक़हे, तालियाँ, चुटकुले, प्रशंसाएँ, सहलाती दृष्टियाँ, गुद-गुदियाँ : मेरा चला आना अचानक सुखद हो उठा होगा उसके लिए। किसी गिद्ध की तरह शायद मैं उसके अवकाश पर डैने पसार कर बैठ गया था। वह राजीव को अधिक सुख नहीं दे सकी थी। तपन कुमार का कोई इसरारभरा पत्र अनुत्तरित रखा था, लोगों से मिलना-जुलना भी करीब-करीब बन्द था और घूम-फिर भी। मनहूसी, जो मेरे साथ रहती है, क्या अपने पंजे नहीं चुभा रही होगी उसे ?

मैं भूल जाना चाहता हूँ। मैं सब कुछ भूल जाना चाहता हूँ। मैं केवल इस ट्रेन में बैठे रहना चाहता हूँ। मैं कोई फिल्मी गीत बेसुरे ढंग से गुनगुनाना चाहता हूँ। मेरी बेरुखी से उकताये प्लेटफार्म पर टहल मारते दामोदरन के पास जाकर खड़ा हो जाना चाहता हूँ मैं। इधर-उधर बतियाते लोगों की तरह मैं भी रेलवे की व्यवस्था को गलियाना चाहता हूँ। मैं कुछ भी करना चाहता हूँ—सिवा उसे याद करने के। उसके अलावा मैं कुछ भी सोचना चाहता हूँ। मेरे बाबा का स्वास्थ्य कैसा होगा ? वे मुझे याद करते होंगे। माँ बहुत दिनों से मुझे बुला रही है। राखी के दिन भी मैं घर नहीं जा सका। न बहन की राखी ही बाँध सका – जो डाक से तो कम से कम आयी ही होगी—डाकिए ने जिसे किवाड़ों की दरार से भीतर मेरे कमरे में फेंक दिया होगा। मैं जाकर उसे अपने हाथ से बाँध लूँगा – किसी तरह—अपनी दाहिनी कलाई पर—

दिन के करीब १ बजे। 'आवेश' का अंक आया होगा और मित्रों की चिट्ठियाँ। मनिआर्डर का क्या हुआ होगा? मैं कल खाऊँगा कैसे? आह! बहुत कुछ तो है मेरे पास सोचने को। बहुत कुछ—सुमि के अतिरिक्त।

पर उसने क्यों उस बार मेरी कविताएँ लौटा दी थीं मुझे—और मेरे संबोधनहीन पत्र—'अपनी कविताएँ लेते जाओ'—। वह खून की कोई तेज धार थी जो मेरे गले में धक्का मारने लगी थी। खुद को रोकने में मुझे खुद को बीचोबीच तोड़ देना पड़ा था। अपनी कविता फाड़ते हुए मैं जिस चीज में लथपथ हो गया था वह क्या थी?

क्या फायदा है खुद को बियाबानों में भटकाकर बार-बार? क्यों तलाशे कोई किसी निष्करुण पेड़ के तने से सटकर उसकी पत्तियों में अपना परिचय—अपने लिए परिचय। क्या मिलेगा वहाँ पिचर-प्लाण्ट के रक्त-शोषी पिचरों के सिवा? किसी को भी आज तक क्या मिला है इसके अतिरिक्त?

पता नहीं, पता नहीं, पता नहीं। मुझे कुछ पता नहीं। पर मैं उसके बिना जिन्दा नहीं रह सकता। उसके बिना मैं—मैं नहीं रह सकता। आसाम मेल के इस डिब्बे में माथा झुकाकर बैठा हुआ मैं एक चीख सुन रहा हूँ साफ-साफ—अपने भीतर से उठती एक चीख : सुमि सुमि सुमि सुमि! मैं एक गहरे कुएँ में तब्दील हो गया हूँ जिसमें एक आवाज़ भटक रही है लगातार—एक फुसफुसाती आवाज़ : मैं तुम्हारी हूँ तुम्हारी हूँ तुम्हारे लिए हूँ।

मैं क्या करूँ? चश्मा उतारकर अभी शायद दसवीं बार मैंने आँखें पोंछी हैं।···'कोई जहाज टूटा नहीं मेरे भीतर ···' एक कविता की पंक्ति याद आती है। पर आज कोई जहाज टूट गया है मेरे भीतर-मेरी पसलियों से टकराकर।

बेवकूफ बाहर चलो। इस कागज को फाड़कर फेंक दो। घुटनों पर रखे ब्रीफकेस को बर्थ पर रख दो। रूमाल से चेहरा पोछों। केश सँवारों

एक बार कंघी या तलहथी से। और बाहर निकलो। सिन्हा और दामोदरन शायद राजनीति पर कुछ बतिया रहे हैं। एक-एक कप चाय हो जाए। नींबू की चाय मिलेगी ?

नींबू की चाय ? उस रात ही तो मैंने मजाक में ही कहा था, चाय पीना चाहता हूँ। फिर सो-सा गया था—कुछ कुछ थका कुछ-कुछ उदास। कि अचानक वह आई थी, जगाया था, और हाथ में चाय का प्याला थमा दिया था। पगली ! मैं भींग उठा था।···नहीं मैं नींबू की चाय नहीं पियूँगा। नहीं, मैं चाय ही नहीं पियूँगा। यहीं रहूँगा यहीं।

ट्रेन बरौनी से रात के शायद पौने तीन में खुली थी। अपनी बर्थ पर पसर कर सो गया था—ब्रीफकेस को माथे के नीचे देकर। रह-रह कर दुःस्वप्नों में चौंक उठता। वे कैसे सपने थे। सपने नहीं : चित्र शृंखलाएँ—धुएँ के धब्बों की तरह तैरती हुई। सुमि के जाने कितने-कितने रूप : कभी ममतालु—मेरे लिए स्नेह में लिपटा जुगनुओं-सी बलती आँखों वाला चेहरा—कभी अचानक क्रूर हो उठा—एक भयंकर दुत्कार में ऐंठा चेहरा।···

शिः। बेकार की बातें बन्द। मुझे वे चिट्ठियाँ फिर से पढ़नी चाहिए जो इस बीच आई हैं। अच्छी खबरें हैं। दो चिट्ठियाँ अनपढ़ी रक्खी हैं। उन्हें भी देख लेना चाहिए। बेकार है सब कुछ प्यारे—नहा-धो चुके—अच्छे शरीफ़ युवक की तरह जियो—खुश और उजले।

क्या करूँ खुद को। क्या करूँ ? चिट्ठियाँ पढ़ने के लिए टेबुल से उठाकर बिस्तर पर रखली हैं। पत्र को खोलने के पहले धीरे से उठता हूँ पता नहीं किसलिए। झटके से ब्रीफकेस खोलता हूँ और उसकी तस्वीर निकालता हूँ। अटैची उड़ेलकर उसके पुराने पत्र निकालता हूँ : केवल एक बार पढ़ने के लिए। बस एक बार और यह सब बन्द।

·····जाने कितनी बार पढ़ चुका हूँ उन पत्रों को। तस्बीर टेबुल क्लाथ के नीचे रख दी है—सुरक्षित। पत्रों को फिर अटैची में बन्द कर दिया है। यह लिखते हुए फिर उकता रहा हूँ। क्या करूँगा अब ?

पता नहीं ! शायद फिर उठूँगा धीरे से और उन पत्रों को निकालूंगा और उस तस्वीर को एक बार फिर हल्के से निकालकर देख लूंगा।

मुझे क्या करना चाहिए, मुझे क्या करना चाहिए, मुझे क्या करना चाहिए ? यदि बहुत जल्द उससे फिर नहीं मिला तो मैं पागल हो जाऊँगा। मैं पागल हो जाऊँगा ? क्यों ? क्यों मुझे पागल हो जाना चाहिए ? वह उसी तरह अपने बिस्तर पर पट्ट लेटी होगी—सुबह के सपने में मुस्कराती। रविवार है, गीतम को स्कूल नहीं जाना कि उसे सुबह उठना ही पड़े। एक हल्का-सा फर्क कि मेरी जगह दूसरे कमरे के बिस्तर पर रजनीश होगा— लतीफों से सुबह की सुखद शुरुआत करता। शायद अब वह रजनीश के लिए बेड-टी लाने को उठ रही होगी। या शायद ला भी चुकी होगी। वहाँ मेरी कोई पदचाप नहीं होगी, न मेरी देहगन्ध। किसी हल्की दुर्घटना की तरह लोग मुझे भुला चुके होंगे। या फिर चाय के साथ बिस्कुटों के रूप में मेरा इस्तेमाल हो रहा होगा।···'मैं उसे युवतर कविता का नामवर कहती थी'...हा-हा-हा···'वह बहुत अहम्मन्य है, बहुत मूर्ख, बेहूदी ईर्ष्या में नवगीत को गलियाता है, पाजी।' हा-हा-हा।

मैं क्या करूँ मर जाऊँ ? कुछ स्लीपिंग पिल्स और बस ! अब मुझे चलना चाहिए। कहीं भी। इस कमरे से दूर। नहीं तो वे बासी स्मृतियाँ मुझे मार डालेंगी।

लेकिन कहाँ जाऊँगा— कपड़े पहनकर यह खुद से पूछ रहा हूँ। सुबह के आठ बजे हैं। कहाँ जाऊँगा ? येट्स (yeats) एक कविता में कहता है : मैं कहीं भी जाऊं, कहीं भी रहूँ सड़क पर या घर में,—मेरे समुद्र की हिलकोर, मेरे समुद्र की लहर-गर्जना, मुझे अनवरत सुनाई पड़ती है। तट पर टूटती लहरें—लगातार। वह समुद्र मेरे भीतर जो है।

यह समुद्र मेरे भीतर जो है। यह समुद्र। यह समुद्र ! सुमि। सुमि। सुमि।

···ब्रीफ एक बार फिर खोला तो वह रूमाल दिख पड़ा—अभी भी पसीजा-सा। उसे निकालकर सूँघा मैंने। नहीं, अब गन्ध नहीं, उड़ी-उड़ी-

सी है। उसे टेबुल पर मैंने रख लिया है। कई बार सूंघा है नाक से सटाकर।

आदिम गंध का हल्का सा अहसास।

काश ! कि इसे सूंघते हुए ही मर जाऊँ।

टेबुल पर रखी घड़ी की ओर आँख उठाती हूँ तो २ बज रहे हैं। अब मैं कुछ सोचना नहीं चाहती, कुछ सोच ही नहीं सकती। मेरी आँखें लाल हुई जा रही हैं—नींद से या किसी गहरे अवसाद से। मेरे अंग शिथिल पड़ जाते हैं। पता ही नहीं चला, कब मैं पत्र को हाथ से दबाये नींद में डूब गई।

सुबह सुमि का एक नौकर आया तो एक लड़की ने मुझे जगाया। पोर्टिको की दायीं ओर मैं देर तक आँख मलती उससे बतियाती रही। उसने बताया 'मालकिन कहीं जाना चाहती हैं। उनको जाने क्या हो गया है—न ठीक से खाती हैं न कभी पूछती हैं कि किसी ने खाया। साहब भी काफी रात गये घर आते हैं। मालकिन से कुछ भी बात नहीं करते। दोनों दो कमरे में सोते हैं। सुबह मालिक सोये ही रहते हैं तो मालकिन कालेज चली जाती हैं या कालेज नहीं जातीं तो छत या कहीं दूर हटकर बैठी रहती हैं—चुपचाप ! साहब रात में जब घर लौटते हैं तो मालकिन सो गई रहती हैं। बच्चों से भी साहब कभी कुछ नहीं पूछते। वे सब सहमे-सहमे रहते हैं। मालकिन कम से कम बात करना चाहती हैं। अधिकांश बातों का जबाब हाँ या ना में देकर चुप लगा जाती हैं। कभी सब्जियों के बारे में पूछने पर इतना भर कहती हैं—जैसा जी में आये। मेरी तो समझ में नहीं आता कि क्या हो गया है इस घर को। पहले लोग देखकर तरसते थे कि कैसा सुखी घर है यह। अब भी ऊपर से तो वैसा ही सब कुछ है पर भीतर से सारा कुछ ढह रहा है—ढह गया है। मेरा भी मन नहीं लगता, पर मालकिन का मुँह देखकर जा भी नहीं सकता। साहब को लगता है कि मैं मालकिन का आदमी हूँ सो वे बेवजह मुझ पर बिगड़ते रहते हैं। आप ही सोचिये, मैं मालकिन की झूठी निन्दा कैसे करता रहूँ। आज तो

हाल यह है कि जो भी मालकिन की निन्दा करता है, साहब उसको अपना मित्र समझते हैं। मुझसे यह सब देखा नहीं जाता।'

मैं इससे कुछ कहूँ—इसके पहले हथेलियों से अपना चेहरा ढँक लेती हूँ। मुझे याद आता है वह दिन जब सुमि अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती थी, राजीव को उसकी कुछ भी परवाह नहीं थी। वे उसी तरह १० बजे खा-पीकर तैयार हो दफ्तर चले जाते थे और रात में कभी १०, कभी ११, कभी १२ तो कभी १ बजे भी घर लौटते थे। सुमि मुझे कुछ बताती नहीं थी, पर उसका चेहरा मुझे सब कुछ बता देता था। बहुत पूछने पर उसने बताया था कि वह बच्चे का मोजा भी खरीदने बाजार जाती है तो उसको कोई ऐसा आदमी अवश्य दीखता है जो कल्याणी चौक से लेकर हनीमून ड्रेसेज तक चक्कर काटता है। एक दिन तो घड़ी का बेल्ट बदलने श्याम टाकीज तक जाना पड़ा था तो वह आदमी उसको अपने आगे-आगे दीखा था।

इस बीच कई गोष्ठियों और सेमिनार में भाग लेने के लिए आमन्त्रण उसको मिले, पर कहीं नहीं जा सकती है वह। कहीं नहीं जा सकती वह। पहले के दिन होते तो राजीव उसको तंग कर देते। किसी प्रकार जाने के लिए उसको राजी करते। पर अब यदि कोई आयोजक दफ्तर में उससे मिलता है और सुमि के जाने की बात उठाता है तो वह सीधे बिगड़ जाता है। घर-द्वार और बच्चों की दुहाई देता है। कुछ ऐसा करता है कि सुमि जा नहीं सके, वरन् उसके मन में हीन-ग्रन्थि भी जनम जाय।

आज सुमि के पिताजी आए हैं। सुमि कहा करती है कि वह माँ से अधिक पिता का प्यार ही जानती है। पिताजी सुमि को बार-बार देखे जा रहे हैं—'तुम बीमार थी क्या ?'

'नहीं तो ! आपको कैसे लगा कि मैं बीमार हूँ ?'

'यही तो तुम लोग पूछोगी कि मैंने कैसे जाना ! स्वस्थ आदमी का

यही चेहरा होता है ? राजीव बाबू का घर में आना-जाना क्या इसी तरह अनियमित हुआ करता है ?'

'दफ्तर में आजकल कुछ अधिक काम रहता है।'

'काम के पीछे कोई घर छोड़ देता है, मैंने भी तीस वर्षों तक दफ्तर में ही काम किया है और वह भी अंग्रेज के जमाने में जब आज की तरह दफ्तर में कम काम नहीं होता था।'

'दफ्तर में पुस्तकालय आदि भी लोगों ने खोल रखे हैं, वहीं कुछ पढ़ने में भी देर हो जाती है।'

'तुम्हारे यहाँ पत्रिकाओं की कमी है कि किताबों की ? जो वे दफ्तर में पढ़ते हैं। मैं नहीं मान सकता तेरी बात। पति को बिखरने से रोकने में पत्नी ही सब कुछ कर सकती है। जब से आया हूँ, देख रहा हूँ कि बच्चे खाये, नहीं खाये, सो गए। वे पढ़ रहे हैं, क्या पढ़ रहे हैं, कोई देखनेवाला नहीं। बच्चे इस तरह तो नहीं पढ़ते।'

मैं सुमि के पिताजी का तेवर समझ जाती हूँ। अनुभवी आँखें क्या नहीं देख लेतीं। मैं बीच में आ जाती हूँ।

'बाबूजी, हम लोगों की परीक्षा है न बीस दिन बाद। सुमि आजकल पढ़ने में व्यस्त है। इसीलिए अपना कुछ ख्याल नहीं रख पाती। बड़ा ही टफ कम्पटीशन है इस बार। एक लड़की जिसे हेड बहुत मानते हैं, जानती तो है कुछ नहीं, पर उसके बारे में बहुत कुछ कहा जाता है। हम लोगों को उसके मुकाबले में तो आना ही है। आनर्स में देखा था न, कैसी उपेक्षा बरती गई थी। मोतीहारी कालेज से आई हुई उस लड़की को बोर्ड केश करवाकर प्रथम श्रेणी दी गई थी।'

'हाँ, हाँ, वह तो समझा, मगर···'

मैं उनकी परेशानी समझ जाती हूँ। कितना कुछ सोचा था उन्होंने सुमि के लिए। पैसे बाँध-बाँधकर चारों ओर उसका वर ढूंढ़ा करते थे। उन्होंने एकाध बार बताया था कि एक जगह शादी की बात तय हो जाने के बाद टूट गई थी और तब उनको बड़ा सदमा पहुँचा था। फिर कोई उपयुक्त

पात्र खोजने के क्रम में उन्होंने दो-तीन वर्षों के लिए घर ही छोड़ दिया था। फिर शादी ठीक हो जाने के बाद ही वे घर लौटे थे। उस समय राजीव बी० ए० में पढ़ते थे। उनमें बहुत संभावनायें दीखी थीं उनको। शादी हो जाने के बाद वे सुमि के चेहरे पर उगे संतोष को ढूंढ़ते रहते थे। यदि कहीं वह मिल जाता था तो वे फूले नहीं समाते थे। ऐसा कभी नहीं हुआ कि थोड़ा भी संतोष का सुख उन्हें नहीं मिला। किन्तु आज सुमि के चेहरे पर जलता रेगिस्तान उन्हें भीतर से कुरेद रहा था। रात में राजीव के आने तक वे जगे रहे। चुपचाप उनका कपड़ा बदलना देखते रहे। वहाँ भी उन्हें एक ठहराव दीखा। कुछ भी समझ में नहीं आया। राजीव भीतर गये, मीट-केश में खाना रखा था, ठण्डा। हाथ से छू कर देखा, वैसे ही ढँक दिया और आकर सो गये। मुँह ढँकने के पहले उन्होने घर में चारों ओर नजर दौड़ायी। सुमि पलंग पर पट्ट पड़ी थी। दूसरे कमरे में जीरो पावर का बल्ब जल रहा था। उत्सुकता हुई। जाकर देखा कि पिताजी सोये हैं।

राजीव ने करवटें बदली हैं। उनकी आँखों में अतीत का छोटा-सा सुख अटक गया है। उनकी पलकें खुली हैं। पलकों की कोर अब भींगने लगी है। यह रात १९५९ से लेकर १९६५ तक की कोई एक रात में बदल जाती है। कैसे सुमि पढ़ते-पढ़ते टेबुल पर झुक गई है और झुककर सो गई है थोड़ी-थोड़ी ठण्ड है। शाम से उसका अनुमान नहीं था। पर सोते में वह सिकुड़ती जा रही है। कहीं उसको ठण्ड लग रही है पर श्रम की थकान उसे नींद में डुबा गई है। कई घंटे उसी तरह बीत जाते हैं। राजीव दफ्तर से आते हैं। आँगन के दरवाजे में घुसते ही उनकी आँखें पहले सुमि को खोजती हैं। कमरे में जाते ही टेबुल पर झुकी उसकी सिकुड़ी देह देखकर वे सिहर उठते हैं। सारे घर पर मन ही मन गुस्सा होते हैं। किसी ने देखा तक नहीं। और आहिस्ते से चादर या रजाई से उसको ढँक देते हैं। सुमि को आराम मिला है, यह सोचकर वे कृतार्थ हो जाते हैं। खाना सब खा लेते हैं और फिर भी सुमि नहीं उठती तो अपनी बगल में खाना परोसकर रखवा लेते हैं। कुछ देर के बाद जब सुमि भूख-भूख

करती है तो फिर स्टोव का जलना—खाना का गर्म होना और अपने हाथ से पहला कौर सुमि के मुँह में रख देना···। अभी ख्यालों में डूबे हुए जब सुमि के मुँह में कौर रखने जा रहे हैं कि उन्हें कुछ सन्न से लगता है और ऊब और घृणा से अपने हाथ को वे एक ओर झटक देते हैं।

आज रात की गाड़ी से सुमि चार दिनों के लिए अपने पिता के साथ जा रही है। सुमि के पिता मुझे बार-बार कहते हैं कि बेटी जरा राजीव बाबू को कभी-कभी देखती रहना। मैं सिर्फ सुमि को देखती रह जाती हूँ। स्टेशन के लिए घर छोड़ने के पहले सुमि कहती है कि उसके पास बहुत कम रुपये हैं। यदि पिताजी ने एकाध दिन और रोक लिया तो मुश्किल में पड़ जाऊँगी। कैसे कहूँगी कि मेरे पास रुपये नहीं हैं। मैं अपना पर्स खोलती हूँ। ऐसा कभी नहीं होता जब मेरे पर्स में २०-२५ रुपये नहीं हों। उससे अधिक तो और भी रह सकते हैं। अभी मेरे पर्स में ५० रुपए हैं। मैं चुपचाप सुमि के पर्स में उन रुपयों को रख देती हूँ। मैं स्टेशन उसके साथ नहीं जा पाती। ये लोग जनता से जा रहे हैं। अधिक से अधिक रात के १२ बजे तक सहर्षा पहुँच जायेंगी। मैं सुमि का रिक्शा बढ़ते ही चल देती हूँ। अभी २ बजे हैं। सड़क पर काफी रिक्शे होंगे। हॉस्टल पहुँचकर देखती हूँ कि वहाँ दूसरा ही हंगामा है। दाई ने शिकायत की है कि दरबान उसको अपने साथ बाजार चलने के लिए तंग करता है। एक ओर ढेर सारे कहकहे हैं और दूसरी ओर खुली हुई है आचार संहिता। मैं प्रभावित नहीं होती इस दृश्य से। ऐसा तो कुछ न कुछ हरदम यहाँ होता रहता है। कमरा को भीतर से बन्द कर अपने स्पेशल पेपर की किताबें एक ओर करने लगती हूँ। सर ने 'यूसुफ-जुलेखा' के प्रेम की प्रबंधात्मकता पर लिखने के लिए कहा है। सुमि के यहाँ ऐसी स्थिति रही कि मैं उससे नोट भी नहीं ले सकी।

सुमि को गए आज दो दिन बीत गए हैं। मेरा मन नहीं लगता। रह-रहकर एक आशंका मन में उठने लगती है कि परीक्षा को इतने कम दिन हैं, कहीं सुमि नहीं आये तो! मगर फिर मन को झटक देती हूँ।

आएगी क्यों नहीं ! उसकी जो स्थिति और मनःस्थिति है उसमें स्वतंत्र जीविका चाहती है। जब तक वह व्यक्तित्व से आत्म नि बनेगी, तब तक क्या होगा उसके सपनों का। एकाएक मन में कि आज रविवार है। चलकर देखूँ कि राजीव घर पर हैं य सुमि के दूर के रिश्ते की एक बहन है वहाँ जो खाना बनाती है महिला भी है उस घर में जो किसी प्रकार राजीव की भामी मगर कभी मैंने राजीव के मुँह से उसको भाभी कहते हुए न वही घर के अन्य काम करती है। वह लड़की जिसका नाम क्या है, पर जिसको सुमि माला कहती है, कुँवारी है, सयानी भी काफी पहले विधवा हो गई थी। उसको कोई बच्चा भी नहीं के कहने से ही ये दोनों यहाँ लाई गई हैं। राजीव नहीं चाहते के काम-काज की वजह से सुमि की पढ़ाई डिस्टर्ब हो। नौकरे घर छोड़ना नहीं चाहती थी। इसीलिए ये दोनों खोजकर लाई ग

तैयार होते-होते चार बज गये। फिर मन में हुआ कि अब लौटने में कहीं देर भी हो जाए। आज सुबह ७ बजे ही सुमि के हूँ। सुमि के बिना उसका घर जाने मुझे कैसा लगता है। बिल्कुल पन आ जाता है मुझमें। राजीव अभी-अभी उठकर बाथरूम गए महिला कहीं नहीं दीखती। मैं राजीव के कमरे की ओर खिड़कियाँ चारों ओर से बन्द हैं। चप्पल के हाई हील की टक में समा जाती है और माला अस्त-व्यस्त हुई, उनींदी सी कमरे हुई सी बाहर आती है। मैं ठिठक जाती हूँ। वह इसी तरह कि कमरे में बैठिए। एक तरह से मुझे परमिशन मिला है। कमरे में चली जाती हूँ। पलंग पर दो तकिये-आस-पास-जुड़े हु चादर। टेबुल पर पानी का एक जग, एक ग्लास, एक तौलि कुछ घबड़ाकर देखती हूँ और कमरे से बाहर निकलती हूँ। कमरे बन्द हैं। सबके द्वार पर ताले जड़े हैं। मैं माला से के लिए पूछती हूँ। वह सिर्फ इतना बताती है कि यहीं किस

आएगी क्यों नहीं ! उसकी जो स्थिति और मनःस्थिति है उसमें स्वतंत्र जीविका चाहती है। जब तक वह व्यक्तित्व से आत्म नि बनेगी, तब तक क्या होगा उसके सपनों का। एकाएक मन में कि आज रविवार है। चलकर देखूँ कि राजीव घर पर हैं सुमि के दूर के रिश्ते की एक बहन है वहाँ जो खाना बनाती है महिला भी है उस घर में जो किसी प्रकार राजीव की भाभी मगर कभी मैंने राजीव के मुँह से उसको भाभी कहते हुए न वही घर के अन्य काम करती है। वह लड़की जिसका नाम क्या है, पर जिसको सुमि माला कहती है, कुँवारी है, सयानी भी काफी पहले विधवा हो गई थी। उसको कोई बच्चा भी नहीं के कहने से ही ये दोनों यहाँ लाई गई हैं। राजीव नहीं चाहते के काम-काज की वजह से सुमि की पढ़ाई डिस्टर्ब हो। नौकर घर छोड़ना नहीं चाहती थी। इसीलिए ये दोनों खोजकर लाई ग

तैयार होते-होते चार बज गये। फिर मन में हुआ कि अब लौटने में कहीं देर भी हो जाए। आज सुबह ७ बजे ही सुमि के हूँ। सुमि के बिना उसका घर जाने मुझे कैसा लगता है। बिल्कुल पन आ जाता है मुझमें। राजीव अभी-अभी उठकर बाथरूम ग महिला कहीं नहीं दीखती। मैं राजीव के कमरे की ओर खिड़कियाँ चारों ओर से बन्द हैं। चप्पल के हाई हील की टक में समा जाती है और माला अस्त-व्यस्त हुई, उनींदी सी कमरे हुई सी बाहर आती है। मैं ठिठक जाती हूँ। वह इसी तरह कि कमरे में बैठिए। एक तरह से मुझे परमिशन मिला है कमरे में चली जाती हूँ। पलंग पर दो तकिये-आस-पास-जुड़े हु चादर। टेबुल पर पानी का एक जग, एक ग्लास, एक तौलि कुछ घबड़ाकर देखती हूँ और कमरे से बाहर निकलती हूँ। कमरे बन्द हैं। सबके द्वार पर ताले जड़े हैं। मैं माला से के लिए पूछती हूँ। वह सिर्फ इतना बताती है कि यहीं किस

बहन के घर गई हैं। दो दिन बाद आयेंगी। मैं उसके लिए कोई कारण नहीं पूछती। कमरे से निकलते समय पलँग पर टूटी चूड़ियाँ और तकिये से सटी टिकुली देखी थी मैंने। वही चूड़ी माला के हाथ में है। टिकुली भी इसी की है। वह जब कभी दीखी है, माँग में टिकुली अवश्य रही है मैं राजीव को फेस करना नहीं चाहती। मगर मन में तहलका होता है कि अभी उनका चेहरा कैसा होगा। यदि उनके कमरे मे आऊँगी और एक साथ हमारी निगाहें टूटी हुई चूड़ियों पर जायेंगी तो राजीव का एक्सप्रेशन कैसा होगा। मगर मेरे मन में घृणा उबलती है और सबकुछ विस्थापित लगने लगता है। एक बार सुमि का स्वरूप आँखों में उभरता है। मैं उन टूटी चूड़ियों को सुमि की कलाई पर रोप देना चाहती हूँ। मैं कभी यह मान नहीं सकती कि वे चूड़ियाँ सुमि की नहीं हो सकतीं।

मुझमें जाने कहाँ की हड़बड़ी आ जाती है और बिना कुछ कहे मैं वहाँ से चल देती हूँ। ऐसा क्यों होता है कि एक जगह सम्बन्ध जब टूटने लगता है तब दूसरी जगह कहीं वह पैदा भी हो जाता है। ऐसे पैदा होने वाला सम्बन्ध न घर देखता है न घाट। सिर्फ दैहिक अनुबंधों के और क्या होगा वहाँ? मुझे राजीव के चेहरे पर तमाचा मारने का मन करता है। कैसे धारणाएँ भी टूटती हैं। यही राजीव थे जिनके पास सुमि के लिए ढेर-सी प्रशंसाएँ थीं, ढेर-सी सराहनाएँ। राह चलते स्त्रियों की छाँह से भी बचते थे वे! सुमि से बढ़कर तब उनके लिए कोई देह नहीं थी, न कोई मन। उनके सम्बन्धों की सीमा वहीं अपनी परिणति पा लेती थी। क्या हुआ उनके आदर्शों का! वे सुमि से बदला तो नहीं ले रहे! फिर सुमि को दी गयी वे यातनाएँ कैसी थीं? म्यूचुअल अन्डरस्टैन्डिंग से भी काम चल सकता था यहाँ। जब उनको भी यही करना था और—बहुत ही कुत्सित ढंग से तो फिर आसमान तोड़ने की आवश्यकता क्या थी! मेरा मन विचारों के दो ध्रुवों में दोलायित हो रहा है। मैं क्या करूँ? सुमि को यह सब कैसे कहूँ। आज लगता है ऊपर से दीखने वाला साफ-सुथरा सम्बन्ध अरसे से खोखला हो रहा था। जाने कितनी उपेक्षाओं के कौहरे घिरे होंगे सुमि के इर्द-गिर्द। कितने आत्म-मंथन के बाद यश के

अनुबंध को अनुमोदन दिया होगा उसने। यश के अनुबंध से उस जलती हुई नदी को कितनी तसल्ली मिली होगी।

आज नया टोला के चौराहे से राजीव को उस लड़की के साथ रिक्शे में गुजरते देखा है मैंने जिससे सुमि की खासी अनबन रहती है। सुमि ने अपनी आँखों देखा होता इस दृश्य को तो भीतर से दो टूक हो गई होती। अब यह भी लगता है कि जब कितने ही दिन इवनिंग शो देखने के लिए सुमि तैयार होकर घंटों बोर होती रही और पीछे मालूम हुआ कि राजीव 'संगीतायन' के किसी कलाकार के साथ २ बजे रात तक ऐसी बेहूदी बातें करते रहे जो उनके योग्य नहीं थीं, तब लगता है कितना काटा होगा उसने अपने आपको। सब कुछ चुपचाप सहते हुए भीतर मन की दीवारें क्या चटख नहीं गई होंगी ?

मैंने जो निर्णय लिया था, उसमें चेंज करना पड़ा और मैंने राजीव के घर नहीं जाने का फैसला कर लिया। सुमि जब तक नहीं आती तब तक वह राजीव का ही घर है। राजीव के एक्शन से पता चलता है कि वे सुमि को मुक्त करना नहीं चाहते और न अपनी दिनचर्या ठीक करना चाहते हैं। वे सिर्फ सुमि को पालतू जानवर की तरह रखना चाहते हैं। पर सुमि उन बौद्धिक संस्कारों का क्या करेगी जिनके चलते कोई गलत बात उसके लिए ठीक नहीं है।

कई दिन गुजर गये हैं। मनही मन लगता है कि सुमि अब आ गई होगी। अब उसको यह सुविधा भी नहीं है कि जब जी चाहे किसी को भेजकर मुझे बुला ले। राजीव हर सही सम्बंध को भी गलत समझकर उससे काट देना चाहते हैं। इरादा फिर बदलता है मेरा। चाहती हूँ एक बार देख लेने में हर्ज ही क्या है ? बड़े ही संभ्रम में उजबुजाती मैं राजीव के घर के दाहिनी हिस्से तक पहुँच पाती हूँ। फिर सुमि की खिड़की के पास कान लगाती हूँ। बच्चों की हरकतें सुनाई देती हैं। सुमि के आने के बारे में आश्वस्त हो उठती हूँ। उढ़के हुए दरवाजे को हटाकर भीतर चली जाती हूँ। पलंग को पकड़ी सुमि की काठमार गयी आकृति

है। कारण जानने की हिम्मत नहीं होती। दुख इतना बेमानी हो गया है कि आँख की कोर तक नहीं भीजती। उसको खींचकर बैठाती हूँ तो बैठती है। बच्चों के चेहरे भी काफी कन्फ्यूज्ड लगते हैं। माँ का ऐसा निष्प्रभ रूप उन्हें दहला देता है, पर वे अकारण एडजस्ट करने के मूड में दीखते हैं। पिता की प्यार भरी थपकार सुने उन्हें अरसा हुआ। फिर भी कोई शिकायत नहीं उन्हें। सुमि के कलेजे के टुकड़े हैं वे। मर जाएगी सुमि तभी कोई शिकन भरी आँख उठाएगा उनपर। कुछ भी करेगी सुमि, पर बच्चों के अशुभ के मूल्य पर कुछ भी नहीं।

छः

'मुँद जाना चाहता हूँ मैं, मेरे प्रभु
किसी कमल-दल-सा किसी सूर्यास्त को
जल-झुका मैं हिरण काँप रहा हूँ
हाँफ रहा हूँ
कब कौन कगार पियेगी मुझ लहर को
मैं समर्पित हूँ।'

—बहुत पहले पढ़ी थी यह कविता। किसी उदास गोधूलि में बैठ कर। पता नहीं क्यों आज सुबह से ही इसे गुनगुनाये जा रही हूँ। ऐसा क्या होता है कि आदमी भीतर-बाहर से तृप्त हो जाता है! एक दिन के इधर और उधर—फर्क इतना बड़ा पैदा हो जाता है कि कहा तो क्या, समझा भी नहीं जा सकता। कौन जानता है; अभी सड़क चलते मैं किसी ट्रक से चिपक जाऊँ, किसी भी हादसे का शिकार हो जाऊँ, मेरे मुँह से

कैसी भी चीख नहीं निकलेगी। ऐसा लगता ही नहीं कि कुछ और पाना है; जिसके लिये जिन्दा रहना जरूरी हो। आह! रघुबीर सहाय, कितने ठीक थे तुम, अब समझती हूँ :

मुझ संतुष्ट को तब आकर वरेगी मृत्यु
मैं प्रतिकृत हूँ।

हाँ। ऐसी ही स्थिति में मृत्यु का वरण किया जा सकता है। मुस्कुराते हुए। एक आनन्द में झरझराते हुए। समाधि अवस्था में योगी जिस तरह प्राणों का विसर्जन करता है; उसकी प्रक्रिया इससे कोई बहुत भिन्न नहीं।

पता नहीं, कैसी आनन्दानुभूति है, जिसने मेरे भीतर को सिक्त कर दिया हैं। सुबह कुछ मित्र पकड़ कर कॉफी पीने 'अलका' लेती गयीं। वहाँ थे—सौमनस्य, प्रियकर, मिसेज खास्तगीर, आलोक सिन्हा और मिसेज एस० लाल—और भी लोग। मैं अपने को ही इन्ज्वॉय करती रही—अपने ही भीतर डूबी;—लोगों ने इसे महसूस किया। ऐसा कुछ नहीं था, जिसके लिए मैं बाहर निकलती। फिर उठी धीरे से, और आज्ञा ली और 'भुवनसोम' देखने चली गई इला शर्मा के साथ। मन में आया काश कि तुम साथ होते शील!—लौटी। विस्तर पर अधलेटी रही देर तक एक बगल वाले कमरे की लड़की के साथ। एक गीत गुनगुनाने और फिर गाने लगी। कुछ मेरी आँखों तक उमड़ आया। वह उनका लोकगीत नहीं था जो किसी झरने की तरह मेरी पलकों को धकेल रहा था। स्मृतियाँ थीं। कब सुनूंगी उसका गीत—इसी तरह बिस्तर पर अधलेटी। कितनी मनुहार करनी पड़ती थी—कितना इसरार—तब वह गाता था। क्यों? क्या भीतर उसके कोई उमंग नहीं होती थी? कोई नहीं? कि उसे छिपा लेता था? कि कभी-कभी विमुख दिखना भी उसकी अदाओं में से एक है?

यह कैसे मालूम हो कि मेरे पत्र उसको प्रताड़ित करते हैं। यदि ऐसा है तो वह लिख देता क्यों नहीं? नहीं लिखूँगी। सुना है कि आजकल वह

दिल्ली चला गया है। वहाँ की भीड़-भाड़ और भरेपन में उसको पत्र लिखने की फुर्सत नहीं ही मिलेगी। खैर।

अभी मेरा चेहरा सख्त हो गया है, यह बात कहते हुए। एक अनगए आतंक-लोक तक पहुँच गई हूँ। जिसके लिए कल्पनाओं के इतने सारे घरौंदे मैंने उसके अनकहे बना लिये हैं, उनका क्या होगा ? वह पुरुष मुझे कभी परितोष नहीं दे पाएगा जो आत्मदया का विषय हो। जीवन को एक व्यवस्था देने के पहले वह लखनऊ में टूटता रहा, अब दिल्ली में टूट रहा होगा। मेरा मन प्रश्न चिन्हों के कटघरे पर चढ़ गया है। मैं उसे अपनी पूरी बात लिखूं या नहीं। वरना वह मेरी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सका तो यही कहेगा—"मैं बहुत नकारा हूँ। फिजूल हूँ। गावदी हूँ। घृण्य हूँ। मुझसे·····मुझसे नफरत करनी चाहिए तुमको।"

मेरा मन उदस गया है। क्यों ऐसा सोच लिया मैंने। मैं ऐसा क्यों सोचती हूँ उसके बारे में ? मेरा माथा झुक जाता है किसी आभार से—'माफ करना—यदि कुछ चुभा हो कहीं। मैं समझ नहीं पाती अभी मुझे क्या करना चाहिए। शाम के छः बजे हैं। कुछ मित्र अभी मुझे घेर लेंगी। मैं उनसे बिल्कुल नहीं मिलना चाहती। मैं किसी से नहीं मिलना चाहती। अकेले में कम से कम कुछ सुखद स्मृतियों के तो साथ रहती हूँ। क्यों वही नहीं बताता अभी मुझे क्या करना चाहिए ? क्या करना चाहिए ? अभी उसके पास रहती मैं तो क्या करती होती ? जीवन के बुनियादी सवाल जिसके लिये महत्त्वपूर्ण हों, वे इन भावनाओं का क्या अर्थ समझेंगे ? पत्र भी लिखूँ तो उस पत्र को नफरत में उठाकर एक ओर डाल नहीं देगा वह ?

आज दुपहर में पत्र आया है अमरकान्त का। 'आधुनिक साहित्य पर राजनीतिक प्रभाव' शीर्षक निबंध एक विचार-गोष्ठी में पढ़ना है। तीन दिन समय है बीच में। इसी में निबंध तैयार कर लेना है। फिलहाल सुमि के बारे में सोचना बन्द कर निबंध की तैयारी में लग जाती हूँ।

आज पटना के लिए बिदा होती हूँ। आसाम मेल से इलाहाबाद जाने में सुविधा होती। पर अभी इलेवन अप के थ्री टीयर शयनागार में हूँ—नीचे की बर्थ पर बैठी—इलाहाबाद को उन्मुख : आखिर। गाड़ी अभी-अभी रुकी है, पटना से सरककर : दानापुर। सामने की बर्थ पर एक अर्द्ध-मित्र बैठे हैं—मेरे मित्रों के मित्र : परिचय हुआ पटना स्टेशन पर तो अपनी जगह बदलवाकर मेरे सामने की बर्थ पर आ टिके। चलो, मन लगा रहेगा।

पता नहीं कितने अनिर्णयों के बाद यह निर्णय लिया है। अमरकांत के दो-दो टेलिग्राम : अनुनय भरे दो पत्र। नहीं जाने का मतलब पूरे समारोह को धूमिल कर देना था। अमरकांत मेरे मित्र हैं, मैं ऐसी गुनहगार कभी नहीं बन सकती उनके प्रति। सुबह तीन-चार बजे के लगभग ट्रेन इलाहाबाद को छुएगी। आते समय सुमि को कह नहीं सकी। कैसे कहूँ कि मेरे लिए शुभकामनाएँ करना।

आनन्द को फिर से लेक्चररशिप मिल गई है। उन्हें कितनी, कितनी, कितनी बधाई दूँ! उनके लेक्चररशिप ज्वाइन करने की बात जान मैं अचानक हरी हो उठी : अपनी तमाम मुश्किलों के बीच। इसे सेलिब्रेट करना है। परमानेंट चेन में तो वे आवेंगे ही।

गाड़ी चल चुकी है। हल्के झटके लग रहे हैं कभी-कभार। कल गाँव से खत मिला था दोपहर को। सुमि के घर गयी थी तो राजीव किसी उदास देवदूत की तरह सोये हुए थे। उस पत्र को कितनी बार पढ़ा, चूमा, जिया, क्या कहूँ!

वैसे ५ सितम्बर तक लौट आऊँगी—निश्चिततः। हुआ तो इलाहाबाद से सुमि को लिखूँगी। उसने मेरे प्रति चिन्ता प्रकट की है; ठीक ही है। मेरे लिए सचिन्त वह, थोड़ा ही सही, रहती होगी। मैं क्या नहीं समझती; जबकि मैं अपनी हर उत्तप्त सांस से एक नाम के बाद उसका ही नाम गुनगुना रही हूँ।

मुगलसराय, गाड़ी रुकी हुई है। अभी-अभी डटकर खाया है; पूड़ियाँ,

तरकारी, दो अण्डे उबाले हुए : अण्डे के अलावा सब कुछ मेरे कद्रदान मित्र के साथ था। छककर खाया हमने। बर्थ पर बिस्तर बिछा दिया है। एक बजा है दिन का।

शील के 'भाइवा' का क्या हुआ ? जो होगा वह पता ही है। वह किसी खूबसूरत नौका-सा विजयपाल लहराता—संतरण करता जाएगा, मुन्ना, मेरी शुभकामनाएँ—तट पर डबडबायी—खड़ी एक मित्र की।

घर और बाहर के सम्बन्धियों को पत्र द्वारा सूचित किया था—लगातार लिखने के लिये। लौटने पर—अपना कमरा खोलने पर शील के भी कई पत्र एक साथ पाना चाहती हूँ। कैसी अतृप्त कांक्षा है—कि अतृप्तनीय ?

गाड़ी फिर चल चुकी है। आगे कहीं आनन्द जी को लिखना चाहती हूँ। एक अधूरा पत्र उनके नाम मेरे पर्स में कब से पड़ा है। और पत्र को तभी डालूँगी—R. M. S. के लेटर-पोस्ट में। तब तक के लिये बिदा !

—यह इलाहाबाद है—ईशा के मालवीय का इलाहाबाद। गाड़ी आउटर सिग्नल के पास रुकी हुई है। जल्दी-जल्दी खत पूरा कर रही हूँ, ताकि इसे इलाहाबाद में ही पोस्ट कर सकूँ। मन लग रहा है, नहीं लगने का कोई कारण नहीं अब, जबकि फिर से अपनी मनहूस जगह से दूर हूँ। कुछ तो उलझाव है ही। उसे याद कर क्या उदास होना जो अपने वश का जिन हो। इच्छा की नहीं कि खिदमत में हाजिर।

आज रात गोष्ठी से आने के बाद सोने के कमरे में हूँ। पर नींद नहीं आ रही। नींद का समय टल गया है इसलिए। क्षमा करेगी सुमि, अब तक नहीं लिख सकी उसको। ऐसा नहीं कि यहाँ के शोर-शराबे और अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रमों के दौरान भी वह मेरे भीतर बीथोवन की किसी धुन की तरह नहीं बज रही थी। यदि वह मेरे भीतर नहीं होती तो शायद मैं इतनी उछाह-भरी नहीं होती, जितनी कि रही, हूँ, रहूँगी।

दो दिन के बाद आज रिजर्वेशन—मेरे जाने के लिये, सुबह ही कराया गया है—कल के लिए—यानी इलाहाबाद-समस्तीपुर पैसेन्जर में दिन के

चार बजे। गरज कि कल ग्यारह बजे दिन मुजफ्फरपुर में रहूँगी। एक पत्र शोल को इसलिये भी लिख देना चाहती हूँ कि, कहीं ऐसा न हो कि, यात्रा के दौरान लिखे गये मेरे पत्रों के कारण वह मुझे मुजफ्फरपुर के पते से पत्र लिखने का इरादा छोड़ दे—कुछ दिनों के लिये। ऐसा वह नहीं करेगा। इस पत्र के पहुँचते ही मुझे लिखेगा।

सचमुच बड़ा बहावदार है समय। यहाँ। अमरकांत के यहाँ ठहरी हूँ। उनकी गोष्ठी बहुत ही सफल रही। बहुत दिनों से इलाहाबाद की किसी गोष्ठी में इतने साहित्यकार नहीं जुट पाये थे। निबंध-पाठ के बाद कविताएँ मैंने पढ़ीं ही - आखिरकार—गोकि मुझे कवितायें पढ़ने से परहेज है। सब जानते हैं।

बहुत अच्छी प्रतिक्रियाएँ हैं मेरे प्रति यहाँ। स्थिति यह है कि मैं दुविधाग्रस्त हूँ—किसका आमंत्रण स्वीकारूँ—किसका नहीं। परसों शैलजा और सुधीर सहाय से करीब ४ घंटे लगातार बातें हुईं—वर्त्तमान साहित्य पर। उन्होंने विशेष रूप से अपनी रचनाओं पर मेरी राय चाही। काफी झड़पदार बातें चलती रहीं। वे मुझ से फिर मिलना चाह रहे हैं। मेरे पास समय नहीं कि मिलूं। ऋताश्री और मलयज नाराज हैं कि मैं उन्हें इग्नोर कर रही हूँ। अभी विष्णु, दिव्या और पूर्णेन्द्र के घरों पर जाना है। कार्यक्रम के अनुसार : वे करीब-करीब एक ही इलाके में हैं। फिर दिन के २ बजे कॉफी हाउस में पुष्पेश, रजनीकांत वर्मा, सुरेश जोशी एवं उनकी श्रीमती से मिलना है।

बहुत पहले किसी ने एक पत्र लिखा था मुझे। उसकी कुछ पंक्तियाँ जाने क्यों याद आने लगती हैं। "ठीक रही ? लिखना, विवाह का क्या हो रहा है ? मन वहीं टँगा है। स्वस्थ हो न ? मेरे लिये उदास नहीं रहना। यदि मैं तुम्हारी मुस्कान नहीं बन सका,—तो—? तो क्या ? सोच नहीं पाता,···क्षमा करो वाक्य के अधूरे रह जाने के लिये।" पश्चिम की ओर मुँह उठाकर विदा माँगती हूँ। आशा है, मुजफ्फरपुर पहुँच कर उसके कई पत्र मिलेंगे। इसी उम्मीद पर जी रही—सच मानो।

आज मुजफ्फरपुर पहुँच गई हूँ। गाड़ी अपने निश्चित समय से डेढ़ घंटे लेट आई है। कमरा खोलने पर सच ढेर सारे पत्र मिले हैं, पर कोई भी पत्र ऐसा नहीं जिसके लिये मैं मन ही मन दुहरी हो रही थी। शील ! तुम तो मुन्ना, औपचारिक पत्र लिखने में काफी कुशल हो। ईश्वर ! इतने बड़े तथ्य से या सत्य से—मैं अब तक वाकिफ नहीं थी। बाप रे ! 'पत्रोत्तर की अपेक्षा है'—'आपका'……। यह तो कहो साथ ही उसका अन्तर्देशीय भी मिल गया, नहीं तो मेरा क्या हाल होता (अब वह चाहे तो मन ही मन हंस सकता है और उस दुपहर को घटी—अरुण शंकर के नाम से सम्बन्धित 'दुर्घटना' की याद कर सकता है और लड़ सकता है—वैसा ही हाल होता और क्या ?

जैसा कि मैंने उसको यात्रा-पूर्व ही लिखा था। १० सितम्बर को दिन में पहुँच गई हूँ ठीक-ठाक। कमरे में एक पत्र ही दीखा उसका। मात्र एक। सत्र नहीं हुआ। इधर-उधर देखा तो प्रतीक्षित एक पत्र और—मेरा प्रतीक्षित—एक 'सराहनीय' पत्र, एक अंतर्देशीय उसका;—घर की चिट्ठयाँ—। बस। मैंने कल्पना कर रखी थी—ढेर सारे पत्र मिलेंगे उसके — जिनमें बहाये हुए ऐकान्तिक क्षण होंगे उसके—उसकी बाँहें होंगी—मुझे टटोलतीं और…। खैर। मैं भूल गई थी कि अब वह फिर से एक जिम्मेदार घरेलू आदमी की तरह खून-पसीना एक कर रहा है—जिसके पास फालतू बातों के लिए थोड़ा कम समय होता है—वह भी किसी 'गे' मूड में—उपकार करने के अंदाज में—संयमित। पत्रों के लिए, ऐसे में धन्यवाद दूँ?

कुछ इतनी आकस्मिकता से कार्यक्रम निश्चित हुआ इलाहाबाद जाने का—कि आनन्द को ट्रेन पर से ही लिख सकी। साथ रहता शील तो कितनी-कितनी खुशी आती—इसकी कल्पना भर की जा सकती है। हाय !

अभी एक लड़की आई है मेरे पास। मुझसे वहाँ के समाचार पूछती है। मैं उसे क्या बताऊँ कि वहाँ कैसा रहा। उसे जबाब देते हुए सोच रही हूँ कि शील भी कुर्सी में पहलू बदल-बदल कर इसी सवाल का जबाब

ढूँढ़ रहा होगा—मेरे पिछले खत पर आँखें दौड़ा। बात यह है कि वे बातें मेरे लिये बेमानी हैं–यानी प्रतिष्ठित साहित्यकारों द्वारा दिया गया समादर, सम्मान आदि। अमरकांत की गोष्ठी काफी सफल रही। काफी दिनों से इलाहाबाद के साहित्यकार इस तरह एक साथ इकट्ठे नहीं हुए थे। मुख्य गोष्ठी से बाद वाली गोष्ठी का समारंभ मेरी ही कविता पाठ से हुआ। रुकने की व्यवस्था कहीं और थी और मैं रुकी कहीं और थी, दूसरे दिन पंत, महादेवी, इलाचन्द्र जोशी और अमृतराय से भी मिली। वहीं नागार्जुन भी मिले। बातों का विषय लगातार रहा—वर्तमान कविता और सही कविता। रेसत्राँ में जाते वक्त भी बड़ी गर्म बातें होती रहीं। इस तरह कई-कई लोगों के साथ कई घंटों की लम्बी उत्तेजक बातचीत हुई। लोगों ने—मेरा मतलब है जिम्मेदार लोगों ने—मुझे बेतरह गंभीरता से लिया और मुझे सही जगह पर प्रशंसा दी। यह मेरे लिए संतोष की बात है। सुरभि मेहता के आमंत्रण पर उनके यहां भी जाना पड़ा। कितनों के यहाँ के आमंत्रणों में बहुत कम जगह जाकर खा सकी। क्या करती आखिर ? कुल मिला-जुलाकर पाँच दिनों का प्रवास सुखद (वैसे इस शब्द पर मुझे आपत्ति है, सुख—अब उसके बिना संभव कहाँ) और मानसिक दृष्टि से उत्तेजक रहा।

सुमि ने 'नई कविता' के अंक ले आने के लिए कहा था। उस समय तक पूरी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं थीं। पूरी प्रतियों के लिए लोक भारती को पता नोट करवा दिया है। वी०पी० से भेजने के लिए। इस महीने की २० ता० तक प्रतियाँ सुमि को मिल जाएँगी। अलग से केवल उमाकांत मालवीय का 'मेंहदी और महावर', रमेशरंजक का 'गीत विहग उतरा' और शांतिसुअन का 'ओ प्रतीक्षित' ले आई हूँ ताकि वह तुरन्त लिख सके, ये नवगीत उसको कैसे लगी। अपने पूरे अवकाश के क्षणों में नवगीत पढ़ती है वह। बगल से निसेस वर्मा के यहाँ से मैंने फोन भी कर दिया है उसको '···बेबी, जल्दी···।'

शायद मुझे घर जाना हो। सोमवार को। या मंगल को। अर्द्ध-

निश्चित है यह। लौट आऊँगी हफ्ते के अन्दर। अभी तुरन्त घर जाने का मतलब मेरी दादी का थोड़ा अस्वस्थ हो जाना है। वह मुझे इतना मानती है कि थोड़ा भी कुछ हो, मेरा नाम रटने लगती है। सुमि को यह कहना भूल गई कि वह इसी हफ्ते से कम से कम 'दिनमान' 'सा० हिन्दुस्तान' और 'धर्मयुग' देखना न भूले। शायद प्रतिक्रियायें आयें। घर जाने के कारण, संभव है, मैं प्रतिक्रियायें नहीं देख पाऊँ। बहरहाल।

शील के किसी भी पत्र में उस चित्र की चर्चा नहीं है जो मैंने एक वीकली मैगजिन से काटकर भेजी थी। और उस फोटो का भी कुछ पता नहीं चला जो दवा के विज्ञापन से अलग करके मैंने भेजा था। पता नहीं, वह लिफ़ाफा किस गति से चला है कि अब तक नहीं पहुँचा। हैरत की बात है।

सुमि ने 'फिलहाल' की प्रति माँगी थी। उसकी दूसरी प्रति सचमुच नहीं मिल रही। अपनी प्रति ही भेजूँगी। एक डे स्कॉलर के यहाँ है, उससे लेकर। शीघ्र। आज ही उसे खरीदने 'बिहार बुक डिपो' गई थी। लौटते में दो किताबें खरीदती आई, फिजूल : शमशेर (सर्वेश्वर और मलयज द्वारा सम्पादित) और 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र'—(मुक्तिबोध)। वैसे ये दोनों किताबें सर्वथा संग्रहणीय हैं।

यदि १८ को घर जाऊँ तो आते-आते, यदि कम से कम एक सप्ताह भी ठहरी, तो २५-२६ ता० बीत जायेगी। यानी करीब-करीब यह पूरा महीना। मैं इसे बर्दाश्त कर सकने की स्थिति में नहीं। मैं जल्द से जल्द शील से मिलना चाहती हूँ। जल्द से जल्द। नहीं तो मेरी सीअन-सीअन उघड़ जाएगी। यह बीच का समय कितना जल्द गुजरा है—यह क्या वह नहीं समझ रहा। वह अपना कार्यक्रम क्यों नहीं लिखता यह ध्यान में रखते हुए कि मैं बीच में एक सप्ताह के लिए बाहर हूँ। विभा ने कहा था कि उसके मित्र के पत्रों की अंतिम पंक्ति 'ढेर से चुम्बनों के साथ' ने उसे अभी तक उत्तप्त रखा है। उसने भी अपना प्रति-चुम्बन भेजा होगा।

सुमि के यहाँ सप्ताह भर नहीं जाने को सोचती हूँ। जाने पर पिछले

दिनों जिस सीन को देखा है, उससे कह सकूँगी क्या ? मगर राजीव के चेहरे पर संतोष या असंतोष के कितने चिह्न हैं—उसे देखना चाहती हूँ। फिर भी अभी नहीं, बाद में। हॉस्टल के दरबान के हाथ सुमि को एक पत्र भेजना चाहती हूँ। कुछ का कुछ लिख गया है। इसीलिए उसको फाड़ देती हूँ। रात में खा-पीकर निश्चित हो जाने के बाद मन नहीं मानता तो लिखने बैठ जाती हूँ। इस पत्र को डाक से भेजूँगी। मिलते ही सुमि चौंकेगी—'तनु का पत्र—डाक से···' बड़ा मजा आएगा। समय फिर भी जगने को काफी है। अब क्या किया जाए। ऐसे में शील को पत्र लिखना भी अत्यन्त सुखद होगा। जब कभी पत्र लिखती हूँ उसको तो कोई न कोई हड़बड़ी मुझे होती है। आज निश्चिन्तापूर्वक—आराम से लिखना चाहती हूँ—लिख रही हूँ। एक पंक्ति लिखकर उसको देखती हूँ—फिर आगे लिखती हूँ। पत्र को इस तरह लिखा है मैंने | 'शील। पत्र शाम ही लिख लिया था, तुम्हारे लिये। फिर कुछ मित्र लड़कियाँ आ गईं। अतः उसे शाम गिरा—पोस्ट कर नहीं सकी। बाहर निकल गई। अब लौट आई हूँ, जबकि रात के केवल सवा आठ हुए हैं। मीरा चौधरी के घर खाना है रात—पड़ोस ही में। पर कैसे जाऊँ। रात के ८½ बजे ही गेट बन्द हो जाता है। एक लड़की के साथ 'भारत जलपान' में बैठी हुई थी। अचानक उठ खड़ी हुई। बेचैनी का एक भभका भीतर से उठा। मैं उस वक्त खुद नहीं समझ सकी, क्यों ? अब समझती हूँ—वह तुमसे बातचीत करने की बेचैनी थी—मतलब कमरे को भीतर से बन्द करके हल्के गर्म एकांत में केवल तुम्हारे साथ होने की। बेचैनी। बेचैनी। बेचैनी। शील, मेरे प्राण, मेरी छटपटाहट अब ख़ुद मुझी से नहीं देखी जाती।

बात वहाँ से शुरू करना चाहती हूँ, जहाँ शाम लिखे पत्र में—छोड़ी थी। मतलब साथ रहने की बात। तुमने साथ शब्द लिखा, और मैं जिस स्वाद को बार-बार भूल जाना चाहती थी, उसे एक बारगी—ढेर-ढेर मेरे होंठ खोल कर उड़ेल दिया। मेरे भीतर फिर। मुझे किसी अतीन्द्रिय सुख की सीमा तक ले जाते हुए। वह लम्बा—बहुत लम्बा—बहुत लम्बा

सुखद अनुभव। उस चित्र को देखा होगा तुमने—कमरे के एकांत में एक दूसरे से चिपके वे शरीर और उनकी हाँफती छातियाँ और एक दूसरे के गुह्य प्रदेशों तक पहुँचे गुथे होंठ। फिर आत्म विस्मृति। दाँतों पर विछलते दाँत। जीवन रस छोड़ते होंठ। एकाकार हो गई आत्माएँ खजुराहो के किसी चित्र की आकृति ही तो लगता था वह। प्रिय, उसे कैसे भूलूँ कहो। तुम जानते हो, उस चित्र को देखकर रंजिता के होंठ कस आये थे और दाँत उसकी ही जीभ काटते जा रहे थे। यह ऐसे ही होता है। किसी विदेशी फिल्म में भी नहीं देखा नायक-नायिकाओं को इतना दीर्घ चुम्बन लेते। इतना बड़ा चुम्बन—जीवन में इतना बड़ा—आह, कितना बड़ा।

उस वक्त नहीं लिखा था, अब लिखती हूँ। 'भुवन सोम' में सुहासिनी मुले जब हँसती है—एक पारदर्शी, निश्छल, किसी नये पत्ते की तरह स्वच्छ मुस्कान तो वह बिल्कुल तुम्हारी तरह लगती है। तुम्हारी तरह, अरे, बिल्कुल तुम्हारी तरह। हे भगवान! लेकिन अभी मेरी आँखें क्यों भर आई हैं। क्यों? संदर्भहीन! तुम्हें उस दिन की याद है—१५ अगस्त की रात की। मैं उस फूलों वाली साड़ी में थी। आई थी रात डाक्टर और उसकी पत्नी के साथ। तुम पहले आ गये थे। आलमारी के पल्ले को पकड़े बैठे थे तुम—कुछ-कुछ अन्यमनस्क—माथा ऊपर उठाए। मैं दरवाजे के पास थी। डाक्टर कुर्सी पर। फिर पता नहीं क्या बात हुई और मैं हँसने लगी। और मैं हँसने लगी और पता नहीं क्या बात हुई। मेरे भीतर। ओह! तुम्हारे शब्दों में वह किसी दूध के झरने की तरह उमड़ती हँसी। उजली। अद्भुत। तुमने कहा था मुझे दया आती है, सच, डॉक्टर पर, वह पागल क्यों नहीं हो जाता। मुझे क्रोध आता है खुद पर—मैं मर क्यों नहीं जाता—अब इतना कुछ पा लेने के बाद।

शब्द बहुत ओछे होते हैं बाबू, बहुत कमजोर, बहुत ना काफ़ी। अब कैसे बताऊँ क्या लिखना चाहती हूँ। शायद इसे मैं खुद ही नहीं जान रही। शायद इसे सशब्द महसूस ही नहीं किया जा सकता। क्या है जो मैं तुमसे कहना चाहती हूँ। मतलब यह कि मेरी परिधि से खींचकर तुम मुझे

दूर ले जाओ—दूर, एक कोने में,, और कुछ कहने की उत्तेजना में हाँफते अपनी हथेली में मेरा माथा रोप लो; सुनो, मुझे सुनो—और चुप हो जाओ। क्या था कहने को ? क्या है कहने को ? वह क्या है जो मेरे भीतर एक छतनार वृक्ष की तरह उगा हुआ है—पूरा। बाहर निकलने को परीशान। क्या है वह ? तुम जानते हो शील ?

तुम्हें यह भी याद होगा कि कैसे भावात्मक आवेग में एक बार तुमने कहा था—"मेरी हँसी, मेरे हृदय ! तुम्हारे बिना मैं हँसी की मुद्रा में खिचा हुआ एक मुँह भर हूँ, धड़कने के पहले सिकुड़ा हुआ एक आकार। व्यर्थ।" कहो, कब तक ऐसे रहूँगी। पंखुड़ियाँ खोलता फूल जैसे अचानक ठिठक गया हो—सर्द। एकाध ठिठुरी पंखुड़ियाँ फैलाये—अवाक्।

लिखो, जल्द लिखो, मेरे शील। मेरे हृदय, मेरी आत्मा, मेरे मैं,—ओह, मेरे पूरे अस्तित्व का शमशेर की पंक्ति बखान कर सकती है :—

'अब गिरा—अब गिरा—वह अटका हुआ आँसू।
सांध्य तारक-सा। अतल में।'

तुम पत्र क्यों नहीं लिखते ? अँ ! किसी बच्चे को बहलाने को जिस तरह हाथ में लॉलीपाप थमा देते हैं, कुछ वैसा ही हरबार करते हो, क्यों ? जबकि वादा हर बार किसी बडी चीज का होता है।

मेरी कविताओं पर अपनी प्रतिक्रिया तुरत लिखो। विस्तृत, ईमानदार प्रतिक्रिया। तुम तस्वीर शीघ्र भेजो और पत्र। बड़े पत्र, देखो मुझ पर तरस खाओ।

सुन लो, साफ-साफ : मुझसे एक बार—हाँ, केवल एक बार ही सही - मिल लेने के पहले तुम घर वापस जाने की सोच नहीं सकते। यदि तुम गए—मुझसे बीच में एक बार बगैर मिले, तो फिर अलबिदा। हाँ सुन्ना, फिर राम-राम। याद रहे।

बैठे-बैठे सोच क्या रहे हो ? लिखने बैठते क्यों नहीं ?

दिन कैसे-कैसे गुजर गये—नहीं मालूम। मैने पढ़ने में भी अत्यधिक ध्यान दिया है। अब अच्छी तरह परीक्षा दे सकूँगी। परीक्षाफल जरूर

अच्छा होगा मेरा और नौकरी के लिए भटकना नहीं पड़ेगा मुझको। कैसी कैसी शुभकामनाएँ बुनते सप्ताह बीत गया है और आज मिला है शील का पत्र। काँपते हाथों से उसको छुआ है मैंने। कहाँ रखूँ कि गन्दा न हो, कैसे पकड़ूँ कि शिकन न पड़े उस पर। एक उमङ्ग से थरथराती हुई पत्र खोलती हूँ। यह क्या! न कोई सम्बोधन, न नाम-राशि का प्रयोग। किसी घबड़ाये व्यक्ति के सारे अटपटेपन इसमें जाहिर हैं। तो एक दहशत में भरकर वह यह पत्र मुझे लिख रहा है। पूरा बदन अभी बेतरह रोमांचित है और एक काला कुहासा भीतर-बाहर छाया हुआ है। १२ सितम्बर का सा० हिन्दुस्तान, जिसमें शांतिसुधन का नवगीत छपा है, एक रिपोर्ताज भी छापे हुए है—राजेन्द्र राव का—'सूली ऊपर सेज पिया की।' अभी-अभी इसे उसने पढ़ा है और एक भयावने आतंक में भर गया है। क्या यही परिणति उसकी मेरी होनी है? कहीं यही नियति तो उसकी प्रतीक्षा नहीं कर रही? मेरी तो नहीं जानता वह; मैं श्री में कभी तबदील होऊँगी या नहीं, शायद नहीं, 'ईश्वर न करे ऐसा हो'; पर वह उन्माद की जिन घाटियों से गुजर रहा है, विक्षिप्तता वहाँ से कोई बहुत दूर नहीं। उसने जाने किस दुविधाग्रस्त मनःस्थिति में लिख दिया है—'सुनो, मेरी बात मानो, तनु, मुझे अपने भीतर से, यदि वहाँ मैं होऊँ कहीं, खुरच कर फेंक दो। मैं नहीं जानता, तुम्हें भूल पाऊँगा या नहीं एक भी क्षण को,—पर कोशिश करूँगा। मुझे भय लग रहा है, मैं तुम्हारे भरे पूरे वर्तमान और भविष्य में किसी अपशगुनी बादल की तरह नहीं आ जाऊँ—काला, कुत्सित। मुझे भूल जाओ तनु, अपने सुख के लिये—तुम्हारा सुख ही शायद कहीं मेरा सुख हो।

मैं फिर भी जीने की कोशिश करूँगा, हाँलाकि नहीं जानता, जी पाऊँगा या नहीं। अलविदा—तुम्हारा शील।'

हूँ: फिर 'तुम्हारा' लिखने की जरूरत क्या थी। बहुत देखा ऐसे को। डरपोक कहीं का। ऐसा लचीला व्यक्तित्व किस काम का? जरा-सी आँच लगे नहीं, पिघल गये। उसे तो लड़की होना चाहिए था! मर्द बन कर

मर्द को हँसाता है। लिखता था—'अपने समस्त पौरुष से संघर्ष में जुटा हूँ...' पौरुष था भी कहीं उसमें ? पौरुष वाला ऐसा ही होता है ? मैं उसकी तरफ देखना भी नहीं चाहती। मैं कह देना चाहती हूँ कि अपना दिया हुआ सारा कुछ लौटाती हूँ। क्या इस कहने भर से लौटा देगा वह ? यह बनना नहीं है तो और क्या कि जिसके लिए कामनाओं के इतने ताने-बाने बुनकर भेजा करती हूँ मैं, वही लिखता है—'आशा है, अब तक अपने को मानसिक रूप से अधिक मुक्त, निर्बन्ध और स्वस्थ महसूस करोगी।' क्यों नहीं, मानसिक स्वास्थ्य के लिए इससे अच्छी दवा और क्या हो सकती है। मैं कैसे पढ़ रही हूँ यह सब, मुझसे पढ़ा नहीं जाता। मगर अपनी कसी हुई मुट्ठियों का क्या करूँ ? 'यदि इस बीच के समय में भी मैंने तुम्हें परीशानी और कुछ पत्र लिखने की बाध्यता दी—हालाँकि थोड़ी; तो उसके लिए माफ करना। कहीं कुछ नादान हूँ, यह समझकर।' नादान है, यह समझ लूँ। तब तो कान पकड़कर ही समझा दूँ ! मगर नादान हो कोई तो ! यहाँ तो उल्टी बात है—बुद्धि बेशुमार भरी है ! रखने को जगह नहीं ! ऐसे में कोई करे तो क्या ? तोड़-फोड़ ही न ? मगर सबसे कच्चा घड़ा मेरा ही कैसे दीखा उसको ? क्या अपनी माँ को इस तरह छोड़ देगा वह ? अपनी बहन से रिश्ता तोड़ लेगा वह ?

नौकरी के चक्कर में है वह, यह क्या मैं नहीं समझती। अपने बहते हुए पसीने को जब थके हाथ से पोंछता होगा वह तो जिन्दगी कुछ उलझनों के सिवा और कुछ नहीं लगती होगी। पर ऐसा क्या कि ऐसे में आदमी हर जगह से अपने को काट ले। मैं चाहती हूँ कि उसके दुख में हिस्सा बँटाऊँ—उसका पसीना पोछूँ ! पर वह इस लायक भी नहीं समझता मुझको। मैं उसके मन की तमाम निराशाओं और टूटनों को जानती हूँ, पर उसको नहीं जानती कि आदमी उस छाँह को कैसे ठुकरा देता है जहाँ हर चिलचिलाती धूप से उसे पनाह तो मिल सकती है ! और उस पर से लिखता है—'मैं अधिक दिन जिन्दा नहीं रह पाऊँगा, मैं जानता हूँ, शायद जीवन के अधिक क्षण मुझे नहीं मिले। फिर भी तुम्हारे वर्तमान और

भविष्य के लिए—चाहे वह पारिवारिक सौहार्द्र का हो या लेखकीय सम्मान का, मेरी शुभकामनाएँ जो मेरी मृत्युमुखी आत्मा से निकल रही हैं, तुम्हारे साथ हैं।' दुख और क्रोध से मेरा मन उबलने लगता है। ऐसे में अपना सिर फोड़ूँ या रोऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। यह कैसी विडम्बना है : क्या तुम चाहोगी कि मैं तुम्हारे पत्र लौटा दूँ और तस्वीर ? यदि सम्भव हो तो ऐसा मत करना, क्योंकि उन्हें ही चिपकाकर जी सकूँगा, चाहे कुछ ही दिन सही। आशा है, तुम्हारे छोटे सुखी परिवार (तुम्हारे माता-पिता, छोटी-बहन और तुम्हारा एक छोटा भाई और तुम) और उग रहे लेखकीय बिम्ब के बीच मेरी नामालूम कमी तुम्हें कहीं से नहीं खटकेगी। अब तुम्हें पत्र लिखने के लिये परीशान नहीं करूँगा। अब तुम्हें थोड़ी भी – कैसी भी तकलीफ़ नहीं देनी है खुद को—मेरे लिए। मैं अभी रो पड़ूँ, इससे बेहतर है कि लिखना बन्द कर दूँ।'

मैं नुकीले अंधकारों में बेतरह घिर गई हूँ। कैसे समझाऊँ उसको कि मैं किसी ग्लैमर के कारण उसको नहीं चाहती। वह तो मेरे भीतर की कोई चीज है जो उसके भीतर की उस चीज से मिलती है जिसे अनजाने किसी दुपहर को आस-पास आने का मौका मिल गया था। तब क्या नहीं छिपाया था उसने अपने आपको ? यह सच है है कि उसने अपनी ओर से सम्बन्ध का कोई सिलसिला शुरू नहीं किया, या शुरू नहीं होने दिया, पर वह क्या था जिस पर मैं अजाने झुकती चली गई। वह क्यों था ? क्यों नहीं उसके लिए सचिन्त था वह। मुझको बिखराकर क्या सुख मिलेगा उसको।

आत्म प्रताड़ना से भर उठी हूँ मैं। कितना कायर दीखने लगा है वह। अभी सामने पड़े तो झाड़ दूँ उसको। नहीं। कोई भी जरूरत नहीं मुझको। क्या वह समझता है कि दो-चार शालीन शब्दों को लिखकर वह मेरी करुणा का पात्र बन जायेगा ? कभी नहीं, मुझको नहीं जानता वह। एक स्थिति के बाद तो मैं किसी का चेहरा तक नहीं पहचानती। यदि

कैसा कुछ हुआ—···। मैं वाक्य पूरा नहीं कर पाती। अजीब कातर हो गई हूँ।

शाम के साढ़े छः हुए हैं और मैं अपने कमरे में बिस्तर पर अधलेटी हूँ। बाहर घनेरे बादल झुके हुए हैं। मत पूछे कोई कि दुपहर कैसी गुजरी है। एक बजे के ही करीब रिश्ते के एक सज्जन—अपने एक मित्र के साथ आ मिले। उनके मित्र साहित्य में 'रुचि' रखते हैं। मेरी आफत। मूड उखरा हुआ है और वैसे में उनकी पूछ-ताछ। अभी-अभी वे गये हैं और मैंने एक लम्बी साँस खींची है। पूरी दुपहर भर में न कोई गीत पढ़ सकी हूँ और न कोई पुराना पत्र, न ही तस्वीर देख सकी हूँ। कोई समझ नहीं सकता जिस घुटन से भर गई हूँ मैं—उसे। अभी सारी चीजें फैला रखी हैं सामने और एक तस्वीर को बार-बार नाक और मुँह से सटाकर उसकी देह गंध तक पहुँचना चाहती हूँ—उसकी विशिष्ट देह-गंध जिसके लिए मैं अक्सर उसका रूमाल उठा लेती थी।

मेरी मनः स्थिति बदलती है—बदल गई है।

मन में आता है कि आज दुपहर जो पत्र मिला है मुझे, उसकी स्मृति खुद उसे भयंकर त्रास दे रही होगी। राजेन्द्र राव का आर्टिकल पढ़कर वह कुछ ऐसी उत्तेजना से भर गया होगा कि उसकी याद करते अब उसको संकोच होता होगा। पर वह सवाल अब भी है—अपने खूनी पंजे मेरे दरवाजे पर रगड़ता—कि मेरे जीवन में उजला क्या है,···? यहाँ से वहाँ तक एक काली नदी। धुँधली रोशनी-सा वह है, पर पता नहीं कौन-सा पोत है वह जिसका आकाशदीप है वह : मैं वह नहीं शायद, शायद हो नहीं सकती मैं वह। पर इसका मैं क्या करूँ कि उसको मैं प्यार करती हूँ, प्यार करती हूँ, प्यार करती हूँ। उस बिरवे को देखा है कभी—ध्यान से—जो भुरभुरी मिट्टी की कितनी अँधेरी पर्तों को तोड़-झाड़कर उठ आता है—अपने सूरज की ओर मुँह उठाये। कुछ वैसी ही रूखी हो आयी हूँ मैं—कुछ उतना ही कोमल और दृढ़ : मेरे सूरज! कहीं सूर्यास्त के पहले ही तो मुझसे विदा नहीं ले लोगे

तुम ! वह मेरे प्रति आशंकाओं से भरा रहता है। मेरे मन में भी उसके लिये कम आशंका नहीं। मेरे हृदय को तो देखता वह ! इसे यह क्या हो गया है ? मैं इतनी कमजोर कैसे हो गई ? मुझे क्या होता जा रहा है मैं नहीं समझ पा रही. बिल्कुल नहीं समझ पा रही।

अब कितनी बार कहूँ कि मैं उसके लिये सब कुछ छोड़ सकती हूँ—एक उसे पाने के लिये—सब कुछ। खुद तक को। यह कोई काव्योक्ति नहीं। मैं उससे यह पूछनेवाली थी कि वह मेरे लिये क्या कर सकता है—कितना ? पर जरा सँभल-सँभलकर जवाब देता वह, संभव है, वह मौका जल्द ही आ रहा हो।

दशहरे की छुट्टियों का पहला हिस्सा मैं उसके साथ बिताना चाहती थी। मुनि के यहाँ ठहरता वह। नहीं, अब तो वहाँ संभव ही नहीं। फिर भी कहीं इस शहर में उसका कोई सम्बन्धी भी रहता है—उसने बताया था। चिढ़कर उसने मुझे चिढ़ाया भी था—'तुमसे मिलने थोड़े आया, अपने सम्बन्धी के घर आया हूँ।' अपने सम्बन्धी के घर ही आता वह तो कभी-कभी भेंट हो ही जाती। मुझे कहीं नहीं जाना, यहीं रहना है। वह मुझे कहीं चलने के लिये भी तो नहीं कहता। हम इकट्ठे कहीं चल सकते—जैसे दार्जिलिंग। जो संभव हो। पर कोई भी, यह मेरी जिन्दगी-मात्र के लिये जरूरी है—साँस से भी अधिक जरूरी। मैं चाहती तो हूँ कि वह संतुलित सम्बन्ध रखूँ उससे—जैसा कि और दुनियावी लोग आपस में रखा करते हैं। पर ऐसा संभव नहीं हो पा रहा—कहाँ हो पा रहा ?

क्यों ! वह मुझे सारी बातें बताना क्यों नहीं चाहता। जितना ही मैं माल हूँ, उतना ही वह कृपण है। उत्सुकता का एक सिरा हाथों में पकड़ाकर गायब हो जाता है। यदि ये बातें दूसरे लोगों से अतिरंजित रूप में मालूम होंगी तो व्यर्थ ही मन में बादल घिर आयेंगे।

तो वह क्या चाहता है, मैं मर जाऊँ—इस कच्ची वय में ? ठीक है, ऐसा ही होगा। वह पत्र मत लिखे। यदि दे भी तो इसी तरह संक्षिप्त और अजनबी अंदाज में। और दूर रहे। और ललचाये। और मेरी बेकली पर

हँसे। मैं जानती हूँ। इन स्थितियों में मेरे अधिक दिन जीने की कल्पना नहीं की जा सकती।

आशा करती हूँ कि अगली बार मिलने पर उसकी देह और अधिक पुष्ट पाऊँ और पुष्टता भी थोड़ी स्लिम। वैसे वह अभी ही बहुत अधिक काम्य है मेरे लिये, फिर भी तब वह शायद अप्सराओं के लिये भी काम्य हो उठे। अभी अप्सराओं की होड़ में मैं साधारण जन पिछड़ जाऊँगी और शापित यक्षिणी-सी अलका पुरी में···।' मगर कुछ भी नहीं कर सकती मैं सिवा इसके कि हवाओं में हाथ पटकूँ और थककर सो जाऊँ।

आज दुपहर डाकिया एक पत्रिका दे गया है। हुर्रा, मुन्ना। श्री चिअर्स फॉर शील इन्द्रजित्। मेरी बगल में उस पत्रिका का अंक खुला पड़ा है। उसपर एक फोटो भी है। गोल चेहरे वाले एक हिरण-नयन की फोटो। हे! वह एक कवि भी है। नाम है ; शील। वाह!

कौन है यह शील? मैं उठती हूँ और अपनी अटैची खोलकर एक सुरक्षित कोने से एक तस्वीर निकालती हूँ। एक रूखे, साबुन धुले-केशों वाले एक 'सौम्य' पुरुष की फोटो है यह। इसे बगल में रखती हूँ। पत्रिका में छपी कविता की पंक्तियाँ ढँक जाती हैं।

कमरा बन्द है। रात के साढ़े दस बजे हैं और मैं रोमाण्टिक हो आयी हूँ। दो तस्वीरें हैं मेरे सामने। एक खुली हुई कविता है जिसके पाँव दिख रहे हैं '.....'' मैं फिर उठती हूँ एकबार और थकियायी किताबों के सामने खड़ी हो जाती हूँ। एक किताब निकालती हूँ—एक सुदर्शन किताब—चूमती हूँ—और कवर उलटा कर बगल में रख देती हूँ। किताब पर एक परिचित दस्तखत दीखती है। उस पृष्ठ को झुककर मैं आँखों से लगा लेती हूँ। धीरे से। पता नहीं आँखें कहाँ पड़ी थीं—उस दस्तखत पर या—प्रिय तनु को! बड़े प्यार से—पर! आह! पर आँखें कुछ-कुछ भींग आई थीं। वह कैसा रस था जो तुम्हारी आँखों से आता था मेरी आँखों को भिगोता—भीतर तक?

मैं एक उन्माद में उसकी तस्वीर फाड़ देना चाहती हूँ और अपनी

आँखों का गीलापन नोंचकर फेंक देना चाहती हूँ। अरे अचानक यह क्या हो रहा है—मैं बुरीतरह नींद में बौरा रही हूँ। दिनभर बुरीतरह भटकी हूँ आज। कमरे में भी जब रही—लोगों से घिरी रही। आह! यह नींद—मैं आज तुम्हारी नींद सोना चाहती हूँ, शील! जिस तरह तुम मुझको पीठ देकर दुपहर में सो जाते थे। या रात में ही—बहुत पहले। वैसे ही। तुम्हारी तस्वीरों और पत्रों और कविताओं को पीठ देकर।

बड़ी खुशगवार सुबह है यह। सूरज बहुत मद्धिम है, बादल अभी-अभी बरस गये हैं। मैं पता नहीं कैसी जल्दी बाजी में तैयार हुई हूँ। जैसे मुझे बहुत जल्दी कोई काम करना है। पता नहीं क्या? जल्दी-जल्दी स्नान कर, कपड़े बदल मैं टेबुल पर आ झुकी हूँ। अधूरा पत्र खोल लिया है और शील को—

अब आगे पत्र लिखने की इच्छा नहीं हो रही। सारे शब्द बहुत बेमानी, छिछले और बेकार हैं। यह बेहतर होगा कि उस कागज को मैं फाड़ दूँ। या फिर अपनी गरदन या कोई उँगली काटकर इसे अपने रक्त से भर दूँ। उसने एकबार बताया था कि बहुत पहले जब वह ९-१० वर्ष का बालक था, उसने अपने गाँव के डाकखाने में एक बाहर फिंका-लावारिस लिफाफ़ा पाया था। उसे बड़ी उत्सुकता से खोला था उसने। वह शहर में रह रहे गाँव के किसी व्यक्ति का खत था—जो वहाँ अब रिक्शा चलाता था,—अपनी नवोढ़ा के नाम। खत की शुरुआत एक शेर से थी, जो तब मैंने एक क्षण को सोचा था, लाल स्याही से हुई थी, पर दरहक़ीक़त वह रक्त था—उसकी उँगली, हथेली या कहीं का रक्त—। वही घिसा-पिटा शेर (अब; तब नहीं) : 'मरता हूँ तेरी याद में जिन्दा नहीं समझना, लिखता हूँ खत खून से स्याही नहीं समझना' : या ऐसा ही कुछ, संभव है, पंक्तियाँ उलट-पुलट गई हों। वह तब एक क्षण को रोमांचित हो उठा था, किसी इन्ट्यूशन से यह समझते ही कि ये पंक्तियाँ खून से लिखी गई हैं। डाक-खाने के बाहर खड़ा वह पत्र हाथ में लिये वह स्तब्ध रह गया था। उसने विश्वास दिलाते हुए कहा था कि कोई बाल-कौतुक उसमें नहीं जगा था;

उसने अपने मित्रों को वह पत्र नहीं दिखाया था—जो कि उसे करना चाहिए था। चुपके से चला था और अत्यंत पवित्रता से, आँखों में लोर-सा कुछ भरे शायद, बगल की झाड़ी में उसे छुपा दिया था। फिर भी संतोष नहीं हुआ था, पलटा था और उसे उसी झाड़ी के नीचे एक बड़े से पत्थर से दबाकर रख दिया था और मौन लौट आया था। अपनी पत्रिका थामे।

क्या ऐसा ही होता है—प्रेम के इस उन्माद में? क्या अपने पूरे खत को निचोड़ देने की इच्छा होती है? क्यों? लेकिन अब तो उसको ऐसा नहीं लगता न? वह समझता है कि वह सभ्यजनोचित हरकतें कर रहा है। मेरे सारे शब्द अब हाँफने लगे हैं। कहीं से अधिकार-बोध मेरा कम गया है। इसीलिये यह तो उसको लिख नहीं सकती कि मैं बुध को शायद घर जाऊँ। एक हफ्ते के अंदर लौट आऊँगी। उसे प्रतिदिन एक के हिसाब से पत्र लिखना है—कम-से-कम, पर वह नहीं लिखता। मैंने पिछले दिनों उसे हर रोज करीब-करीब दो की दर से पत्र दिये हैं। मगर शिकायत किससे करूँ? कितनी बड़ी गलती हुई मुझसे। मैंने उससे कुछ जाने बगैर यह सिलसिला क्यों शुरू कर दिया था? अब सिवा पछताने के मेरे पास क्या बचा है? पर इतना तो लिख ही दूँगी कि यदि वह खत नहीं लिखेगा तो मेरा लिखना बन्द। याद रहे। यदि स्थिति ऐसी ही रही तो मुझे कहीं उस दिन को कोसना नहीं पड़ जाए, जब मैं उससे मिली थी। बर्दाश्त की एक हद होती है। मेरी जिन्दगी का अब क्या होगा। मकान बनने के पहले ही खंडहर हो गया है। उससे अब और दूर रहने की स्थिति में मैं कत्तई नहीं। अब के जब हम मिलें तो ऐसी व्यवस्था करनी है कि हम नियमित मिल सकें। या फिर मुझे मर जाने की अनुमति दे देनी है। मैं इस तरह आग में लगातार जलती नहीं रह सकती।

आज दोपहर में शील के दो पत्र एक साथ मिले हैं—एक अन्तर्देशीय और एक लिफ़ाफ़ा। कामना में थरथराते हुए उन्हें खोलती हूँ। पढ़कर बुरी तरह भींग गयी हूँ। यह क्या उसके पिछले पत्र मुझे नहीं मिले। पिछले दिनों मैं किस तरह दूरी की आग में जलती रही हूँ। क्या सचमुच उसके

पत्र मुझे नहीं मिले। यदि पत्र तुमने लिखे तो क्यों बावले—इतने बावले अंदाज में मैंने लिख दिया कि अभी भीतर से बाहर तक हिल गई हूँ। मैं सचमुच हैरान हूँ—आखिर उसके पत्र किस नियति को प्राप्त हुए।

सुमि ने लिखा है—'आज सुबह ही तुम्हें एक पत्र लिखा है। कल दो पत्र लिखे थे। अभी फिर एक लिख रहा हूँ। मैं विस्मय दग्ध हूँ—बुरी तरह।

सच, सच कहता हूँ। बुरी तरह घबड़ा गया हूँ तुम्हारे इन दोनों पत्रों को पढ़कर। तुमने कहा था कि पहली नजर में तुमने मुझे एक जिम्मेदार आदमी समझा था—गलती से—जबकि मैं एक गैरजिम्मेदार किस्म का 'युवक' निकला। तुम्हारे इन पत्रों को पढ़कर मैं एक-ब-एक एक जिम्मेदार आदमी बन गया हूँ। सच कहता हूँ। सारी दोपहर करवट बदलता रहा हूँ बिस्तर पर—जाने कितनी बार तुम्हारे पत्रों को पढ़ा है—और तब तुम्हें लिखने बैठा हूँ—किसी अपराध बोध में दबा। तुम्हारे उजले प्यार पर मुझे कभी कोई शक नहीं – कभी नहीं रहा। पर यह मैं नहीं जानता था कि तुम मुझे इतनी दीवानगी से चाहती हो। अब मुझे उस पत्र की बाबत सोचकर घबड़ाहट हो रही है जो क्षणिक उत्तेजना के तहत—सा० हिन्दुस्तान पढ़कर—लिख भेजा था,—हाँ खुद का गला घोंटते हुए। तुमसे अलग अब मेरे अस्तित्व की कल्पना संभव कैसे है, पगली। तुम मेरी आत्मा से संयुक्त हो चुकी हो; यह मेरे भी बस का नहीं कि तुम्हें दूर हटा सकूँ खुद से, शायद, तुम्हारे लिये भी मुझसे विलग रह पाना अब संभव नहीं। चाहे जिस नियति को भेटें—हम साथ भेंटेंगे—एक दूसरे का हाथ पकड़े—एक दूसरे को अपनी आत्मा से चिपकाये।

जाने भी दो इसे अब। तुम जानती हो, यह जानकर कि तुम मुझे जुनून की हद तक प्यार करने लगी हो, मैं किस कदर खिल आया हूँ। 'है आग दोनों तरफ बराबर लगी हुई।' प्यार के जिस जुनून से सुमि गुजर रही थी—है—उसका थोड़ा-बहुत जायका तुमने इधर लिया है। यह तो कोई बहुत बुरी बात नहीं, वैसे बहुत अच्छी बात भी यह नहीं ही है।

अब यदि तुम मेरे लिये अपना स्वास्थ्य खराब कर लेती हो, तो यह मेरे लिये त्रासद स्थिति होगी कि नहीं ! यदि तुम खुद को नहीं सँभाल सकोगी, तो बोलो,—तुम तो मुझे जान-समझ चुकी हो,—मैं क्या खुद को संभाल पाऊँगा ? क्या तुम अभी तक मेरी प्रकृति से परिचित नहीं हुई ? क्या तुम नहीं जानतीं, मैं तुमको पागलपन की हद तक प्यार करता हूँ। फिर ऐसा क्यों ? तुम्हारा हल्का-सा बिखराव मुझे टुकड़े-टुकड़े तोड़ देगा। यह निश्चित जान लो।

मैंने तो खुद को तुम्हारे हाथों में सौंप दिया है। यह जान लो कि तुम्हारी चाहत तुमसे अधिक मेरी चाहत है। मैं इस महीने के अंत तक दिल्ली नहीं छोड़ सकता। उसके बाद कहो—क्या करना है मुझे। लेकिन तुम्हारा भी तो घर जाने का कार्यक्रम है। अभी यदि मैं दिल्ली छोड़ता हूँ तो सब कुछ उलट-पुलट जाएगा। तुम्हें कैसे बताऊँ कि कभी-कभी टैक्सी या स्कूटर के पैसे मेरी जेब में नहीं होते और मैं पाँच-पाँच मील रास्ता पाँव-पैदल तय करता हूँ। अभी अपनी नियति को ही कोसने से फुर्सत नहीं है मुझे।

मेरे लिये थोड़ी उदासी तो अच्छी है, उससे मुझे थोड़ा सुकून मिलता है पर इतनी नहीं। तुम तो मुझे जान चुकी हो, कितना तुनुक हूँ मैं—और तुमसे किस नाजुक ढंग से जुड़ा हूँ। मेरे जीवन का अकेला संदर्भ अब तुम्हीं हो। मुझ पर विश्वास करो। तुम्हारे मन में उठती शंका की हल्की भी तरंग मुझे दरका सकती है; तुम जान लो; शायद जान भी चुकी होगी अब तक, या नहीं ! वह शेर जो तुमने अपने लिये लिखा है, मेरा ही बखान करता है, पूरा-पूरा : 'मेरे शीशए-दिल को जरा सँभल कर हाथ में लेना, नजाकत इसमें इतनी है, नजर से गिरा—टूटा।'

मुझ पर अधिकार की मात्रा तुम्हें बतानी होगी ? हैरत है ! जो मेरे रन्ध्र-रन्ध्र में आदिम किलकारी की तरह बज रही है, जिसमें मेरा अस्तित्व विलीन हो चुका है, उसे कभी-कभी अपने अधिकार पर सन्देह क्यों हो आता है ? वह क्या है तुम्हारे भीतर, जो तुम्हें घुलने से रोक देता है—

कहीं। उसे मेरे लिये—मेरे जीवन के लिये—मैं तुमसे याचना करता हूँ, हटा दो। नहीं तो क्या होगा मेरा, तुम सोच भी नहीं सकतीं।

मुस्कुराओ। मैं तुम्हारी उजली—दिशाओं को गुदगुदाती हँसी देखना चाहता हूँ। तुम नहीं जानतीं, अभी भी तुम्हारी हँसी को याद करता; आँख मूँदे, मैं आत्म-विस्मृत हो जाता हूँ। वह खुद को परत-दर-परत खोलती—किसी लजीले झरने की तरह और आखिरकार उद्दाम हो जाती—तुम्हारी हँसी। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम हँस रही हो—मेरे लिये।.....।'

शील ने लिखा है कि अब उसके पिता उसका किसी प्रकार का खर्च उठाने से असमर्थ हैं क्योंकि उसके पाँच छोटे भाइयों का खर्च चलाना है उन्हें। इसीलिए वह संघर्ष करने चला गया है कि पिता का बोझ नहीं बन सके। जिस मनःस्थिति में मेरे पिछले दोनों पत्र उसे मिले; वे उसे विकलता में डाल गए हैं। उस दिन से ही वह सचिन्त है और भीतर एक रिक्ति का आभास होने लगा है। क्यों मैंने उसे दुख दिया? एक तो उसकी विवशतायें ही उसे पीड़ा पहुँचाने के लिये काफी हैं। इतना दूर है कि मुझ तक पहुँच नहीं सकता। एक तो मेरी कुछ अतिरिक्त संवेदनशील प्रकृति और दूसरे मेरा परिवेश जो मुझे विचलित किये है और जिसमें वह एक हद तक ही ग्राह्य या गवारा हो सकता है। कितना अच्छा होता उसके प्रति दुश्चिंताओं से ही भरी—मैं वहाँ चली गई रहती। अभी मैं उसे देख पाती। पता नहीं, कहाँ कतरा जाता हुआ – किस दुख में! हर स्थिति और कार्य से उचटा-उचटा, दाढ़ी बढ़ी हुई, अन्यमनस्क। मैं जानती हूँ, मुझे खुद को सँभालना चाहिए। अब मेरा दायित्व कहीं बड़ा है। पर कहाँ हो पाता है यह! इम्तिहान नजदीक है। पता नहीं, दे भी सकूँगी कि नहीं। वह पता नहीं किस मनःस्थिति में होगा और ऊपर से वैसे पत्र लिखती हूँ! क्या सचमुच मुझे उस पर अविश्वास है? सचमुच? इसका केवल एक स्पष्ट उत्तर क्यों नहीं होता मेरे पास? उसने समझा था कि जिसने उसके अन्तर्पुरुष को प्यार किया है, उसे कम से कम कभी गलत-

फहमियाँ नहीं होंगी उसके प्रति, पर यह क्या है ? मैं रीतिकाल की कविता में बात नहीं करना चाहती, पर यह बात अपनी पूरी ताकत से—जोर से—चीखकर कहना चाहती हूँ—कि मेरे भीतर केवल वह, केवल वह है। और कि उसकी आँखों में उमगती एक हल्की चमक के लिये मैं कुछ भी कर सकती हूँ—कुछ भी। जीवन के इन्द्रधनुषी फैलाव पर भी मैं उसके साथ ही गयी हूँ, उत्सुक,—उसका हाथ थामे; और यह मैं ही हूँ कि उसके रोम-रोम में बदरंग उदासी भर रही हूँ।

किसी हादसे सा विस्मृत कर देना—अब बहुत मुश्किल है—उसको। बावजूद इसके मुझे लगता है शायद कभी उससे मुलाकात नहीं हो पाये। जीवन के किसी उजले क्षण में मुझसे मिलेगा—इसी भरोसे ये दिन कट रहे हैं मेरे। यदि हल्की भी मानसिक ठोकर उसको अभी लगे, तो वह उसे झेल नहीं पाएगा।

उसको फिर एक अच्छा सा पत्र लिखा है मैंने। मेरे इस पत्र को पढ़ कर वह मुस्कुराया कि नहीं ? कहीं अभी भी तो उदास नहीं है ? मैं इन्तजार करूंगी उसका·····इन्तजार। उसे लगातार लिखते जाने का मन होता है : पर जगह की बन्दिश और उसके समय की भी। अब चुप करती हूँ। जिस तरह नवगीत को बखिया उधेड़ता वह चुप हो जाता था सहमकर अचानक—मेरी ओर देख।

वह कहा करता था, उसको कभी-कभी गीत बहुत प्रिय लगते हैं। मेरा गीत 'आसमान कर अँधेरे·····' अभी तक गुनगुनाता है। निराला के कुछ गीत उसे बहुत प्रिय हैं, लेकिन वह कहता था—मैं उसके लिये किसी भी गीत से सुन्दर हूँ और मादक। मुझे अब वह कब सुन सकेगा—अपने कानों में मेरी शोख फुसफुसाहट : पूरी कर दो न अधूरी कविता।

उसको एक फटी कविता मेरे पास है जिसके लिये वह अक्सर कहा करता था—'यह भी क्या उपहार है एक दीन-प्रेमी का—एक तो अधूरी कविता, ऊपर से फटी हुई।'

बावजूद सबके मुझे लगता है कहीं, वह सीधे घर नहीं चला जाए और मुझे किसी ट्रेन के सहयात्री-सा भूल जाए। फिर मैं कमरे में अकेली किससे यह पूछूंगी कि कोई खत मेरे नाम? जिस खत में मुझे सदैव उसके आने की सूचना की कामना रहती है। घर उसका है। क्यों नहीं जाएगा वहाँ? मैं उसको उसके घरवाले से छीनना नहीं चाहती, पर अपने से उसके छिन जाने का भय मुझे तोड़ रहा है। नहीं जानती थी कि जीवन का यथार्थ इतना निरकरुण होता है। वरना घर-बार से इतना दूर जीवन को एक स्थायी वस्तुस्थिति देने के लिये वह अपनी कोमलता का गला नहीं घोंट देता।

●

सात

मन को बहलाकर सुला देने का निरर्थक प्रयास करता हुआ यश भीतर से बाहर तक टूटने लगा है। लगता है, अन्दर मांसपेशियों में कुछ खौलने लगा है। पंखा फुल स्पीड पर चल रहा है, फिर भी देह पर पसीने की चिपचिपाहट भर गई है। एक खिन्नता उसके चेहरे पर उतरती जा रही है। एक उदास देवदूत की तरह वह बेड पर पड़ा है कि अचानक आईने में उसका अपना ही चेहरा झाँक जाता है। कितना कुछ बदल गया है वहाँ। कितना अभिशप्त है वह! पिछली तमाम जिन्दगी गलत लगने लगी है। कुछ ही मिनटों में वह एक निहायत असमर्थ आदमी लगने लगता है। लगता है, उसका पोर-पोर चिटख कर अलग हो जायेगा। अपने जिस व्यक्तित्व पर वह एकांत के क्षणों में आत्ममुग्ध हो उठता था, अभी उसी व्यक्तित्व में कुछ एक जैसा नहीं है। सब बिखरा-बिखरा—खंडित।

वह पीला लिफाफा अब तक उसकी हथेली में भिंचा हुआ है जिसमें राजीव नाम के आदमी का पत्र है। खोलते ही तो खौलते हुए दूध की तरह उबल गया है तन-मन। कौन है जो इस उबाल को झेलकर जिन्दा रह सकता है! आगे कुछ भी नहीं पढ़ना चाहता वह। क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि उन काले अक्षरों में क्या होगा। किन्तु पूरी स्थिति समझ लेना जरूरी है। इसीलिए आँखों के आगे आये ढेर से अन्धकार को हटाते हुए वह फिर पत्र पढ़ने का साहस जुटाता है। फिर पिछड़ जाता है वह। हिम्मत नहीं होती कि उजले कागज के उस पृष्ठ भाग को खोलकर देखे जिस पर काली स्याही के जहरीले अक्षर उगे हुए हैं। सोचता है कि इसे टुकड़े-टुकड़े कर लिफ़ाफ़ा में भरकर राजीव को लौटा दे। मगर यही तो समाधान नहीं होगा। उसने अपनी थकी आँखों को खिड़की के बाहर किया। अब उस पेड़ पर कोई हरियाली नहीं थी। रास्ता बिच्छू की तरह दीखता था। उसने एक पल को सोचा आज की रात कैसी होगी— द्वार पर खड़े होते ही साँय-साँय करते सन्नाटे में शहर मुर्दासराय की तरह लगेगा। और रात के गुजरते ही सुबह कफन ओढ़े हुए आएगी और इन तमाम कायर चेहरों की भाषा खोल देगी। हर एक आँख साँप की तरह लगेगी जिसके डंक से डरता हुआ वह दिन भर घर से नहीं निकलेगा। दिन-रात की दूहन और ऊब के बीच सिर्फ एक ही बात सोचता रहेगा कि आगे के जीवन में वह क्या करेगा—कैसे रहेगा। जिस जकड़न में वह फँस गया है उसका नागफाँस वह कैसे तोड़ेगा। सवाल अब उसकी अपनी मुक्ति का नहीं; सुमि का भी है जिसके मन में आदमी की तरह जीने की आकांक्षा किसी जंगली पौधे की तरह सिर उठा रही है। सुमि का जीवन भी अब उसके बिना कोई अर्थ रखेगा क्या? हद है हमारी व्यवस्था जहाँ आदमी अपने मन की जिन्दगी नहीं जी सकता। चाहता तो है कि लिख दे-सुमि तैयार रहना और जाकर किसी नए शहर में नए सिरे से जिन्दगी शुरू कर दे, पर कोई ना मालूम-सा प्रतिबंध है जो उसको विवश कर देता है। सारी बातें मन में ही रगड़ खाकर रह जाती हैं।

गाँव के आदमी का भी अजीब संस्कार होता है। यहाँ जब भी कोई बात फैलेगी तो कुहरे की तरह। जाने क्यों लोग पत्नी को अपनी खरीद की सम्पत्ति समझते हैं। वह एडजस्ट नहीं करे, घुटे, मर जाये—सब ठीक है, लेकिन लोग उसको अपने मन का जीने नहीं दे सकते। तीस की उम्र पार-कर भी लोग आज कितने कुंठित और कायर हैं।

फिर एक भभका-सा उठा है यश के मन में, घृणा से बजबजाते पानी का। राजीव की खिली पंक्तियाँ उसे 'हाण्ट' करती हैं···। राजीव ने उसकी माँ को लिख दिया है कि उनका इकलौता बेटा जिसके व्यक्तित्व और शिक्षा पर नाज है उनको, इतने गन्दे संस्कारों से भरा है कि एक शादीशुदा माँ बन गई स्त्री से सम्बन्ध रखता है। राजीव ने स्पष्ट लिखा है कि वह स्त्री उनकी पत्नी है और यह उनके लिये बर्दाश्त के बाहर है कि कोई लड़का गैरवाजिब ढंग से उनकी पत्नी से सम्बंध रखे। शायद अभि-भावक की पूरी सुरक्षा में नहीं पला है उनका लड़का, इसीलिये उसमें ये कुप्रवृत्तियाँ जनमी हैं। वे अपने बेटे को समझालें अन्यथा कोई अनहोनी हो जाएगी।···यश उत्तेजित हो उठता है! क्या अनहोनी हो जाएगी···देखेगा वह···वह तो चाहता ही है कि कोई अनहोनी हो जाए। वह सुमि के साथ जीना क्या मरना भी चाहता है! यह उसके लिये बड़ा ही अच्छा होगा कि राजीव इस मामला को लेकर आगे आयेंगे और तब देखेंगे कि वे किस तरह हार गये हैं। कि आदमी को नदी के पाट को तरह नहीं रखा जा सकता। कि सम्बंध को बोझ की तरह नहीं ढोया जा सकता। आदमी महज स्वार्थ के लिये कितना क्रूर होता है। राजीव सोच नहीं सकते क्योंकि सोचने लायक शिक्षा नहीं मिली उनको कि सुमि जैसी स्त्री को सँभालने के लिये यश-जैसा पुरुष ही चाहिए। यश आज भी पश्चाताप करता है कि क्यों नहीं मिली वह उसको पहले—बहुत पहले—सबसे पहले। बहुत पहले हो गयी उसकी शादी—नहीं होनी चाहिए थी उतने पहले। उसने प्रतिवाद क्यों नहीं किया—उसने क्यों प्रतीक्षा नहीं की उसकी! गले में बाँध दी गयी

घंटी को क्यों स्वीकार किया उसने ! ओह ! गाँव में यही सब होता है ! जिन्दा मार दिया जाता है लड़कियों को !

एक बजने को आया है। यह मुरझाया, पीले पत्ते-सा चेहरा—इसके पहले तो ऐसा कभी नहीं था वह। अचानक उसकी आँखें हरी हो उठतीं हैं। डाकिया आया है और एक पत्र खिड़की से फेंक गया है। 'हाय बेबी, सुमि का पत्र है।' यह उसने क्या किया ? यदि आज उसका यह पत्र नहीं आता तो क्या होता ? जानती है सुमि ? नहीं जाने तो अच्छा। यश के हाथ के शनिश्चर को धन्यवाद दे वह। अभी जाकर एक डाक्टर मित्र से उसने प्रिस्क्रिप्सन लिखवा लिया था—भयंकर अनिद्रा की बात बताकर। पैसे नहीं थे पास, इसीलिये स्लीपिंग पिल्स की शीशी नहीं खरीद सका। लेकिन आज शाम खरीदता ही। इसी के लिये रुपये ऊपर किये हैं। मित्र के यहाँ से लौटते—जेब में पड़े रुपयों को गिनते—उँगलियों से बराबर सोचता रहा था, आजकल मरना भी मँहगा होता जा रहा है, शरीफ़ आदमियों के लिये। सारा कार्यक्रम करीब-करीब तय था। कमरे में आकर सुमि की चिट्ठियों और तस्वीर को फाड़कर जला देना। एक सादा सा पत्र टेबुल पर लिखकर रख देना। दवा खरीदना। आना। पैर-हाथ धोना। अंतिम बार मजनूँ और फरहाद के नाम पर थूकना और सोना···।

कि कमरे में घुसते ही सुमि के पत्र से मुलाकात हुई है। उठाने में झिझका है वह। क्या फायदा ? जब मरना ही है तो क्यों निबौलियाँ चबाकर मरा जाय। लेकिन खुद को बार-बार डाँटकर भी वह रोक नहीं सका है। पत्र पढ़कर जो उसकी स्थिति हुई है, पूछने की बात ही नहीं है। सुमि ने क्यों लिखा फिर वैसा पत्र ? 'संचयित'। बेवकूफ लड़की। उसपर यश को बेइन्तिहा गुस्सा आ रहा है। अपने लापरवाह मजाक के हश्र की कल्पना करे सुमि और पश्चाताप भी। वैसे यश नहीं जानता कि वह मरकर किसी का क्या भला कर लेता सुमि के अलावा ! लेकिन उसके मस्तिष्क में उधियाती धुन्ध को यदि सुमि देख-समझ सके तो इसे समझ सकेगी। अब बताये न सुमि, यदि उसे वह बेबी कहता है तो क्या गलत करता है। यह

वचकानी हरकत नहीं थी उसकी ? 'नील डाउन' कौन होगा ? किसे होना चाहिए ?

लेकिन कमाल है ! मुन्ना शब्द इतना प्यारा होता है ! वह कैसे जान गई, घर में लोग उसको मुन्ना कहते थे—हैं । वह खीजता था—है । लेकिन सोचता है. सुमि ने अपने शब्दों में कहाँ से भर दिया है इतना माधुर्य और उन्माद और···और क्या-क्या, बेबी ! सुमि ने बीच में दो पत्र क्या लिखे, ढेर से पत्रों की बात करने लगी । हद है ! यश सोचता है कि सुमि उसको पत्र लिखने को अतिरिक्त कार्य-सा लेती है । मतलब मिहनत के कार्य-सा । है न ? यहीं पर कभी-कभी यश को उसके शब्दों पर सन्देह होने लगता है । लेकिन एक बात । जब सुमि इतने अच्छे पत्र लिख सकती है—इतने अच्छे कि उन्हें पढ़कर उसे चूमने का आधा सुख मिल जाये, तो फिर दूसरी तरफ वैसे पत्र क्यों लिखती है यह—फीके और 'संयमित' । कि कोई मौत की हद तक पहुँच जाए । उसकी बला से । है न ?

सुमि यश के स्वभाव से परिचित नहीं हुई क्या अबतक ? वह बहुत से काम शीघ्रता में करना पसंद करता है । एक पत्र में तो उसने देखा ही था कि स्याही की एक बूंद गिरी थी । वह उसे पंखे में सुखा सकता था । या थोड़ी धूल डाल सकता था । ब्लाटिंग पेपर खोजे नहीं मिलेगा टेबुल पर, जानती है वह । पर अपने और सुमि के बीच उस काले बिन्दु की गुस्ताखी वह अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकता । इतना धैर्य नहीं उसमें । वह उसे यूँ ही पोछ देगा—दिया भी । चाहे पत्र गन्दा हो जाये । बहुत-कुछ जिन्दगी के साथ भी यही रुख है उसका । क्या फायदा इसे घसीटकर ! आज रात भर में ही वह उस बिन्दु-सा सूख जाता । नहीं, पुँछ जाता । बस थोड़ा—हल्का—दाग भर बचता उसका—उसकी कविताओं का यहाँ-वहाँ । वैसे उसके पेटीकोट पर उसका कोई दाग नहीं, सारे दाग उसके रूमाल पर लगे हैं, दुर्भाग्य, वह रूमाल भी कल खो गया है कहीं ।

एकाएक यश पिछली स्मृतियों में खो जाता है । स्वाभिमान का एक टुकड़ा उसके चेहरे पर टँग जाता है । सुमि ने एक बार उससे प्राध्यापकों

की किसी संस्था के आयोजन में चलने का आग्रह किया था और वह टाल गया था यह कहकर कि वह अभी बच्चा है—'विदयारथी' फिर वहाँ जो लोग जायेंगे—उनके पास वह नहीं जा सकता। वह कभी नहीं चाहता कि इन पोले प्राध्यापकों के सामने वह याचक-सा खड़ा हो। सुमि भी क्या इसे बर्दाश्त करेगी? फिर उनमें से कितने ही तो उसके कुछ साहित्यिक 'विरोधियों' के 'गुरु' हैं। उसने अपनी शुभकामनाएँ भेज दी थी और लिख दिया था कि तुम जा सको तो जाओ बेबी! वह अवश्य जाये यदि जाना ही पड़े। क्या वह उसका समुद्र नहीं बन सका अबतक? येट्स की कविता की तरह—जो उसने लिखी थी सुमि को शायद—उसके भीतर हिलकोरें भरता?

सुमि ने लिखा है कि वह पटना जा रही है। यश अंदेशा में पड़ गया है कि वह पटना क्यों जा रही है? राजीव क्या जा रहे हैं? वह बहुत कुछ गुह्य रखना चाहती है उससे—रख रही है। यश निढाल हो जाता है। सचमुच सुमि को समझना उसके लिये उलझन का काम है। यश ने एक बार लिखा भी है सुमि को—'धर्मयुग की वर्ग पहेली हो तुम! (फिर भी पहला इनाम मैंने ही जीता है, क्यों?)'

सुमि की मोटी अक्ल में क्या यह बात नहीं घुस पा रही कि उसकी माँ ने उसको एकदम आकस्मिक ढंग से बुलाया—टेलिग्राम से। इतना समय नहीं बचा कि घर जाने के पहले उसे यह सब कह सके। सुमि चाहती थी ये बातें पहले दोनों के आपस में ही होनी चाहिए थीं। मगर कमाल है, यश ने किस परिहास से सराबोर होकर लिख दिया था कि 'मन में तो आया था कि तुमको साथ ले कर माँ से मिलवा दूँ। मगर जल्दीबाजी और घबड़ाहट में इतना याद नहीं रहा कि तुम्हें ले सकूँ (घबड़ाओ मत वहाँ 'ले सकूँ' का मतलब है 'साथ ले सकूँ') मुझपर कभी-कभी क्यों अविश्वास करती हो मेरी रानी!' यश ने यह भी लिखा था कि वह पटना जाएगी, लौटकर जमशेदपुर और राँची। उसने खुशी जाहिर की थी कि कि 'वाह भई, क्या कड़कदार कार्यक्रम है? इन रंगीन और प्रतिष्ठावर्द्धक

कार्यक्रमों के बीच बिचारे यश कहाँ—ठुड्डी पर दाढ़ी बढ़ाए—धूल फाँकते ।'

यश जब कभी उकताता है तो 'यार' सम्बोधित कर एक बात कहता है । एक साफ़ बात । दिनकर की बात । 'या तो वारो फूल-कुसुम से या तो करो पतझार इसे ।' साफ-साफ क्यों नहीं लिखती सुमि ? कब, कैसे, कहाँ ? और हाँ, तब तक के लिये प्रतिदिन एक लम्बा खत लिखने के लिये कहता है । लम्बे खत —कुछ समझती है सुमि ? और तब कोई चुम्बन-वुम्बन नहीं लिखकर वह सीधे कुट्टी की धमकी देता है ।

माँ से मिलकर लौटते हुए यश को लगा था कि वह पागल हो जाएगा। उसने इसी अवस्था में सुमि को पत्र भी लिखे । अभी वह रोने-रोने जैसा लग रहा है । वह माथा थाम लेता है । सुमि को मिल ही गए पत्र आखिर? उसकी तात्कालिक मनःस्थिति क्या सुमि समझ रही है ? उसकी तरह शाब्दिक नहीं, आत्महत्या पूर्व की मनःस्थिति । गलती उसकी नहीं है, फिर भी उस जिद्दी लड़की से वही माफी माँग लेना चाहता है ।

ऐसा क्या हुआ कि सुमि ने यश को मिलने का कार्यक्रम नहीं लिखा । उसने कई बार कहा था कि वह उसको प्रताड़ना नहीं दे । उसको खिलने दे—अपने वक्ष की छाँव में—किसी फूल-सा । कुम्हलाने मत दे । यश—तीन भागों में बँटा—कभी माँ की सुनता, कातर होता, कभी राजीव की बद-मिजाजी से उदासीन होता, कुम्हलाता और कभी सुमि को पाने की लालसा में उछाह भरा, अपनी ही हथेली को चूमता—।

लगभग दो सप्ताह बीत गये । इस बीच सुमि चुप ही रही । कौन जाने अपनी विवशताओं, राजीव के प्रतिबन्धों के कारण या यश के प्रति अपनी ग्रामीण शुभकामनाओं में लिपटे रहने के कारण । कल वह कानपुर से लौटा है । उसका एक मित्र बाहर जा रहा है—उसी से मिलने गया था । उसको पता चलता है कि सुमि अपने पति के साथ उसके निवास पर गई थी । यश समझ नहीं सका है कि क्या वे लोग पटना होकर वहाँ गए थे ? यश मन ही मन शुभकामना करता है कि सुमि की यात्राएँ सुखद और

प्रभावी रही होंगी। सुमि के पत्र कमरे में मिले थे। दिन कैसे गुजरे हैं यश के? कोई विलाप नहीं करना चाहता वह अब और, इसलिए चुप ही रहेगा। मगर इतना तो लिखकर पूछेगा ही कि क्या वह इम्तिहान देगा? १ नवम्बर से है। कुछ पढ़ा नहीं उसने। हालाँकि मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहा और इतने समय भी पढ़ सका तो परिणाम कोई बहुत बुरा नहीं होगा। ऐसे भी रिजल्ट अच्छा करने में उसका कोई विश्वास न रहा, न है। हाँ यह होगा कि फिर वह काम्पीटीशन में बैठने का प्रोग्राम बनाएगा। फिर शायद दो जून की रोटी का प्रबन्ध हो जाए ढंग से। पर सवाल है, यदि, हाँ यह शर्त्त भी है, कि मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहा। रहने देगी सुमि? यदि हाँ, तो इसके लिए जरूरी है कि सुमि वहाँ जाये और दो-तीन दिनों के लिये किसी अच्छे होटल में ठहरे। वह कैसे जा सकता है, समय कीमती है। यदि परीक्षा देनी है यश को, परीक्षा दे पाए वह, इसके लिये सुमि से मुलाकात भी जरूरी है। और कुछ और नहीं कहेगा वह। अपने हाल से क्यों नहीं जान लेती उसका हाल वह?

यश ने सम्पूर्ण उत्तेजना से जिया है सुमि को, सुमि के साथ के, पीछे के हरेक क्षण को। क्या करे वह, बनावट ही कुछ ऐसी है उसकी कि सामान्य ढंग से अपने जीवन की इतनी महत्त्वपूर्ण घटना को नहीं झेल सकता। वैसे सुमि के लिये, सही है, इसमें कुछ अधिक उत्तेजित होने—रहने की कोई बात नहीं। सचमुच सुमि शब्द नहीं उछालती (गीतों के अलावा?) पर शब्द उछालना यश की मजबूरी है। हर शब्द उसका, उसके रक्त का एक भभका है, उसकी चमड़ी फाड़कर बाहर आया हुआ। राजीव जो कर रहे हैं, माँ जो करेगी सबके प्रसंग अलग हैं। पर जब तक सुमि नहीं जाती, प्रतिदिन उसके दो पत्र नहीं आये तो वह नहीं पढ़ सकेगा। यदि सुमि से मुलाकात नहीं होगी, वह परीक्षा नहीं देगा। लोग तो उसे कोस ही रहे हैं, सुमि चुप रहकर क्या उपकार करती है उसका? उसकी कविताओं पर भी बहुत-सी गालियाँ उसे मिल रही हैं: एकाध जगह तो सुमि ने भी देखा है। जब सुमि से अपनी कविताओं पर प्रतिक्रिया चाही

थी उसने तो लिखा था—'हे महान कवियित्री ! आप को पता नहीं, आप खुद एक कविता हैं, जिसको मैं फिर से लिख रहा हूँ।

इधर सुमि ने स्वयं सोचा है कि वह यश को मानसिक दृष्टि से शांत रहने देगी : टेनीसन की कविता के वातावरण की तरह। उसने तो कीट्स बना ही डाला उसको। फिर भी अब रहम करेगी। कुछ दिनों के लिये। कितना भी विरोध हो, पर प्यार भरा खत देगी। बहुत-बहुत लम्बा खत जो वह चाहता है। सुमि यह सब सोच ही रही है कि उसे एक अंतर्देशीय मिलता है। सिर्फ एक पंक्ति लिखी हुई है उसमें—'भूल गई ? ऐसा ही होता है।' और नीचे है यश का हस्ताक्षर। सुमि सोच में डूब जाती है कि इन दिनों कैसी मुरझायी-मुरझायी रही वह कि लिख ही न सकी।

यश सोचता है सबसे तो निबट लेगा वह किसी कीमत पर, लेकिन इस लड़की का क्या करेगा जो रह-रहकर इस तरह चुप होती है कि पता नहीं चलता कि शहर में है कि शहर से बाहर गई है। यश चाहता है कि पूछकर देखे कि वह चुप क्यों है ? नाराज है ? यदि है तो साफ-साफ लिख क्यों नहीं देती कि—भई सुनो, मैं तुमसे नाराज हूँ, गुस्सा हूँ, तुम बिल्कुल पोचे हो, मैं तुमसे बात तक नहीं करना चाहती। बस। पर उसने तो बिल्कुल गुम्मी साध ली है। तो व्यर्थ ही मन चिन्ताओं में उलझा है : कहीं सुमि का स्वास्थ्य तो खराब नहीं ? गीतम ठीक है ? उसके श्रीमान् तो ठीक हैं ?···आदि इन्हें शमित कर दे सुमि अपना अंतिम पत्र ही लिखकर। कहीं वह घर तो नहीं चली गई है ? दादी को देखती रहे, कुछ भी लिखे, पर लिखे जरूर।

इम्तिहान के लिए फार्म भरने की अंतिम तिथि कल तक है। आज तक नहीं भर पाया है यश। अब शायद कल भरे। सुमि की मर्जी नहीं जान सका। सुमि बहुत निश्छल किस्म की महिला है; सचमुच, लेकिन यश भी तो बालक किस्म का व्यक्ति है। उसको सुमि के उजले अंतस पर विश्वास है, पर अबके वह गुस्सा हुआ तो—बस—सोच ले सुमि, बोलेगा

ही नहीं वह—हाँ—लेकिन यह तो उसका इच्छित ही होगा। ठीक है। यश इतने पर भी राजी है।

तो अब सुमि न जाएगी, न लिखेगी? खुद न लिखे तो अपने श्रीमान् से लिखवा डाले कुशलता-समाचार। इन दिनों यश के मस्तिष्क में बिल्कुल एक शून्य भर गया है। लगता है, अब वह और गहरा होगा। और त्रासद, और जानलेवा।

रात जैसे-तैसे गुजरी है। आज उसने फार्म भर दिया है। अब क्या करेगा वह? कुछ भी नहीं कर सकेगा इस तरह इस शहर में? उसके मन में विचार आता है कि कहीं बाहर दो दिन रहकर अपने को स्वस्थ कर ले। और वह अपने एक मित्र के घर बिना अपने आने की सूचना दिए चला जाता है। चार दिनों के बाद लौटता है वह। फिर अपने उसी माहौल में और पिछली तमाम याददाश्तें लौट आती हैं। वह फिर अस्थिर हो उठता है। आँख ढाँपकर पड़ा है वह। फोर्थ पेपर के कुछ प्रश्न वैसे ही अनछुए हैं। उन्हें आज से देखना चाहिए। मित्र ने समझाया था कि और सब बातें तो हैं ही, पर अपने को सशक्त भी तो करना है। आत्मनिर्भर तो हो ही जाना है जल्द से जल्द। नहीं तो माँ क्या सोचेगी इतने समय में वह पढ़ने-लिखने के बजाय कुछ और ही कर रहा था। माँ को इस तरह कभी दुखी नहीं करेगा वह।

मरते को तिनके का सहारा। डाकिया अभी एक पत्र छोड़ गया है कमरे में। जोर से हाँक लगायी है उसने। डाकिया की इस हाँक को पहचानता है वह। जरूर सुमि का पत्र है। डाकिया ने भी इस एक लिखावट को कई-कई बार देखा है—एक ही तरह से लिखा हुआ नाम—साफ-सधी लिखावट में। तो अभी सुमि का पत्र मिला है। अभी-बिल्कुल अभी। सामने रखा है। उससे हल्की गंध आ रही है। क्वाँरी लड़कियों की देह से जैसी गंध आती है—वैसी ही। जैसी कि अनुराग के क्षणों में सुमि की देह से फूटती है। डाकिये को सीढ़ी पर देखते ही वह लपका था और पत्र छीन लाया था। हाँफते हुए उसे खोला है और अभी भी उसकी सांस संयत नहीं

है । सचमुच, कितना घबड़ा गया था वह । वह कितना घबड़ा गया था कि सुमि उसको भूल गई । कि वह भी आखिर उसके स्वभाव के अटपटेपन को बर्दाश्त नहीं कर सकी । कि···लेकिन अब वह सब क्यों ? अभी तो यह कि उसका पत्र सामने है । कि उसके कपोल अभी भी उसके लिये सुरक्षित हैं जिन्हें वह चूम सके और उसके होंठ । कि पिछले दिनों जिन खंडहरों में वह भटकता रहा वह उसके एकांत से बीमार मस्तिष्क ने गढ़े थे । कि सुमि उसकी है अभी भी उसकी उसकी उसकी है । अभी देख सकती वह यश को । सुमि के एक पत्र ने उसको कितना बदल दिया है । इस लड़की का यही खेल यश को पसन्द नहीं । साँस को टाँग देने वाला । और समय को स्थगित कर देने वाला !

सुमि ने लिखा है कि पटना होते हुए उसके शहर अपने पति के साथ वह अवश्य गई थी, पर एकाध बार अकेले भी उसके आवास तक गई थी । यश सीत्कार कर उठता है । हाय, उसने भी कैसे सौभाग्य को 'मिस' किया, घर रह कर । ऐसा भी कहीं होता है । कि भाग्य किसी के दरवाजे पाँव-प्यादे चलकर आये और वह वहाँ ऊबाऊ दलदल में फँसा रहा । कितना-कितना-कितना पछतावा हो रहा है यश को । सुमि ग्वालियर नहीं गई । यह अच्छी बात है । वहाँ सब कुछ फ़िजूल था, बराबर फिजूल ही रहता है । व्यर्थ का जमावड़ा । कुर्सी की छीन-पकड़ । अभी तक पर्दे के पीछे से नगेन्द्र उसके सूत्रधार हैं । नामवर सरीखा व्यक्ति उपेक्षित रहा ।

यश अपने से ऊबता-सा दीखता है । कहाँ की बात सोचने लगा वह । सुमि ने यह नहीं लिखा कि इस बीच वह क्या-क्या करती रही । कितना समय दोनों ने अलग गुजारा है । एक दूसरे से दूर । बगैर एक दूसरे को लिखे । ओह, सुमि कितनी क्रूर है ! सुमि क्रूर नहीं है , पर यश को इस समय ऐसा लग रहा है । समय के इस तरह बीत जाने का उसे काफी अफसोस है । सुमि ने इस पत्र में थोड़ा मजाक करके यश को दुखाना भी चाहा है । वह सोच रहा है कि यह कौन-सी समानधर्मा बीच में आ गई उन दोनों के ? आगे से ऐसी बात लिखेगी सुमि तो उसे दण्ड भोगना

होगा। और-और-और कितनी बातें करनी थी, जो सुमि ने की नहीं है। क्या-क्या पढ़ा है पिछले दिनों? क्या-क्या लिखा है? कुछ भी तो नहीं लिखा। वह उसकी हिम्मत को पुकारती है और बीच में पता नहीं खुद कहाँ खो जाती है। बात निर्णय की करती है और पता नहीं कितने अनिश्चयों और विकल्पों ओर दुश्चिंताओं के बीच यश के मन को भटकने की प्रताड़ना देती है। सुमि है ही ऐसी। आवर सोवरेन क्वीन!

यश का माथा झनझनाता है। कब आ रही है उसकी रानी कब? तुरन्त आएगी। नहीं तो फिर देर हो जाएगी बहुत! वैसे वह वहाँ से भी अपना तरल प्यार उसको भेज देती रहे तो वह बहुत कुछ आश्वस्त और सुस्थ रह सकता है। पर देती रहे तब न? सुमि तो उसमें भी कंजूसी करने लगती है और मिलावट भी—व्यर्थ की चिन्ताओं की। पर उसको जाना है जल्दी। जल्दी। जल्दी। यश को याद आता है कि कैसे एक बार उसने लिख दिया था 'मेरी पत्थर हृदया रानी' तो सुमि एकदम से नाराज हो उठी थी! और कहा था यह पत्थर तुम्हारे पहाड़ से ही तोड़ा है।

अभी तो सुमि को ढेर-सा जबाब देना है। कैसी रही पिछले दिनों? यात्रा कैसी रही? उससे दूर रहना और उसकी स्मृति तक से भी, अवश्य सुखद रहा होगा? क्या लिखा? और भी बहुत कुछ। पत्र लिखती रहेगी। जब तक वह नहीं जाती, यही तो उसकी साँसें होंगी—उसकी चिट्ठियाँ। आखिर पत्र खतम करना ही पड़ता है। हर बार यही होता है? जबाब देते-देते पसीना निकल आएगा सुमि को और तब कहेगी—'बहुत तंग करता है वह! बदमाश है पहले दर्जे का! अपने जैसा मुझ को भी स्वच्छन्द समझता है!'

बातें इसी तरह आई-गई हो जाती हैं। लेकिन यश अपने इतने बड़े भविष्य का क्या करेगा? क्या इसी तरह उँगलियों से रगड़कर समाप्त किया जा सकता है वह? पर सुमि के लिये जोर मारती इच्छाएँ—क्या करे वह उनका? अब किसी काम का नहीं बचा सिवा सुमि को पत्र लिखने के, सिवा माँ को समझाने के। पता नहीं यह चाहत की कौन-सी चीख है जो

बार-बार सुमि के कानों से होकर उसके भीतर उतर जाना चाहती है। अपने को पूरा-पूरा दिखा देना चाहती है उघारकर। अपने रेशे-रेशे को जो उसके लिये—केवल सुमि के लिये धड़क रहे हैं। क्या वह देख पाती है इसे ? जैसी कि यह है। जैसा कि यश है, केवल उसके लिये जिन्दा, केवल उसके लिये जागता, केवल उसके लिये, सुमि के लिये। सुमि इसे समझे — उसको समझे, यदि नहीं समझ सकी उसको अभी तो वह अदृश्य ढङ्ग से बढ़ता जाएगा अँधेरे में—बढ़ता जा रहा है यश, शायद। और खो जाएगा घुलता हुआ। सुमि इस पागल व्यक्ति को क्यों नहीं देखती जो अपने अनस्तित्व को उपलब्ध कर पाने के लिये उससे मिला था, अस्तित्व-यात्रा के लिये गया था उसके हाथों और होठों की ओर और अनस्तित्व में छितरकर रह गया। यह क्या हुआ—अच्छा या बुरा, समझ नहीं पाता यश।

ऐसा तो नहीं कि, सुमि ने कभी नहीं देखा अपने रोम-रोम में घुलते हुए, पागल बनते यश को। केवल वही तो उसके भीतर-बाहर बजता रहा है लगातार—किसी तेज उत्तेजक धुन की तरह। क्या किसी भी आदम-ज़ाद ने किसी लड़की को इससे अधिक उन्माद से प्यार किया था ? वह नहीं जानता, सुमि जानती है ?

कल शाम आठ बजे चतुरंग वालों ने दिनकर-संध्या आयोजित की थी—उनकी परवर्ती कविताओं की आवृत्ति के लिये। यश सम्मिलित होने गया था उसमें। एक बात कही दिनकर ने जो कितनी तो पुरानी है—जमाने के लिये भी, दिनकर के लिये भी, पर यश को बिल्कुल अभिनव लगी थी और जैसे वह सुस्थ हो गया था कुछ पलको—समाधित-सा, संतुष्ट-सा। कि जहाँ रक्त का उद्दाम आवेग नहीं होता, वहाँ प्रेम नहीं होता। यश के भीतर उछलता हुआ यह रक्त, उसकी शिराओं में उठीं सुमि को बुलाती कामना की उँगलियाँ—यह सब वही तो है आखिर—अदृश्य वह उसके भीतर की वह—उतनी वह जितनी उसके भीतर आ सकी है। केवल सुमि के लिये जीवित है यश अपना आँसू-भरा चेहरा लिये - किसी अनदेखे आनंद में झरझराता, किसी अनजाने क्लेश में सिहरता। यह वह—

यह पूरा का पूरा वह केवल सुमि के लिये है। किसी अक्षतयौवना की तरह ही यश ने भोगा है उसको। सुमि उसको वहाँ ले गई है—आनंद के उस आखिरी सिरे पर जहाँ तक कौन किसको ले जा सकता है! और सुमि के गाल पर जो उसका दंत-क्षत था—वह क्या नहीं कह रहा था उसके कान में फुसफुसाता कि उसने—उसके इस उन्मादी प्रेमी ने उसको किसी असूर्यम्पश्या की तरह भोगा है—उसी ललक और उद्दामता से उसको सहलाया-छुवा-पाया है जिस तरह किसी अनाघ्रात—अनछुवे फूल को छुवा-सूँघा-पाया जाता है। क्या वह यह नहीं समझी? क्या उसके चुम्बनों, स्पर्शों, उसके परिरम्भणों की पूरी भाषा उसकी अनपढ़ी रह गई! क्या उसने खोल कर उसकी आत्मा को नहीं देखा! अवश्य देखा है सुमि ने गर्दन झुकाकर अपने उरोजों को जहाँ अपनी आदिम नग्नता में वह लेटा था—शांत और परितृप्त।

अभी रोने लगा है यश। क्यों, पता नहीं। नहीं जानता वह कहाँ से, आखिर क्यों आँसुओं के बादल उमड़े चले आ रहे हैं। अभी वह सुमि की गोद में अपना सर छुपाना चाहता है उसकी साड़ी और पेटीकोट को सूँघता। अभी वह उसको छाती से चिपटाकर सोना चाहता है। सुमि को उसकी चाहत लपेट रही है। वह उसके पास जाना चाहती है, बँधना चाहती है उसके आलिंगन में। पर दूरी—बीच की दूरी—कहाँ से काटे इसको? कभी सुमि ने यश को समझाया था। आज वह उसको समझाता है। यह गतिरोध नहीं उनके बीच। अपनी पूरी तीव्रता से जब दो आत्माएँ संयुक्त होती हैं तो ऐसे ही द्वीप-खंड जन्म लेते हैं—जो किसी लहर से कम चंचल नहीं होते। यह बीच का अपरिभाषित और अपरिमित उन्माद ही तो है जो बताता है उनका प्यार कब तक युवा रहेगा और एक कच्चे हरेपन में उमगता रहेगा। यश इसे अब कहीं समझ सका है। और सुमि अब इसे विस्मृत कर देना चाहती है। किसी सहेली से पूछ ही लेती वह। या कोई सहेली ही उसकी ठुड्डी पकड़कर कह देती—मेरी नादान दोस्त, ऐसा नहीं करो···।

अभी तो सुबह है, दिन भर कहीं प्रतीक्षा करनी होगी, अपने मनोनुकूल किसी क्षण की। लेकिन वह आज आएगा या नहीं? कब से तो नहीं आया। यदि नहीं तो दिन भर की प्रतीक्षा ही निष्फल नहीं होगी, रात भी बेकार बीतेगी और बेज़ार। यश की आँखों का शीशा चमकता है। मतलब यह कि वह जानना चाहता है कि सुमि कैसी हुई है इन दिनों? मतलब कैसी लग रही है। स्वास्थ्य – वही! कमनीयता— वही! केश – वही। उरोज वही! सब कुछ वही? एक बार देखने को बुरी तरह तड़प रहा है वह। सुमि कहेगी तो वह कबूलकर लेगा कि यह उत्तेजना है, यह उन्माद ही है जिसमें वह है। पर यह शाब्दिक उत्तेजना नहीं। यह रक्त की चीख है। यह उसके फेफड़ों की पुकार है। आत्मा की ऐंठन है। वह नहीं रह सकता शांत और शीतल और अनुत्तेजित। सुमि चाहे जो कहे उसके लिए। जितनी भी समझदार और सामाजिक बने वह। वह खुद को संयमित रख सकती है। उन्मादित नहीं होती वह, कोई बलबला नहीं उठता उसके भीतर। पर अपनी बनावट का आखिर क्या करेगा यश? सुमि संयत शिष्ट पत्र लिख सकती है, पास रहने पर भी खुद को समेटकर रख सकती है, वह चाहे तो यश से निर्लिप्त भी रह सकती है – पर यश? अपने पोर-पोर पर उसकी कामना और प्यार की आग में सुलगता यश? समझ में नहीं आता कि वह क्या करे? करने को तो बहुत कुछ है, लगता है कुछ नहीं है करने को। मगर लिखने को क्या है? प्यार के अलावा और क्या लिखा जा सकता है। पत्र जहाँ से शुरू करता है, वही खत्म करता है यश—'सुमि, मेरी जान, मेरे हृदय, मेरी आत्मा!'

लेकिन क्या बात हुई कि सुमि इतनी कठोर हो गई यश के लिए! वह किन अनकिये अपराधों की सजा देने लगी? बीते माहों का कोई पल ऐसा नहीं बीता जब वह उसके भीतर तरंगित नहीं होती रही। उससे अलग होकर यश कैसे जीता रहा, वही जानता है, लेकिन वह जरा भी द्रवित नहीं हुई। अपने वही निष्करुण शब्दाघात उस पर करती गई।

उसको यह सब कुछ बहुत हास्यास्पद लगा, शायद। यश इतना करुण हो गया है कि सोचता है, इसलिए सुमि के ढंग से यह ठीक ही है उसके पत्र ऐसे ही हों और सुमि का व्यवहार भी उसके प्रति ऐसा ही हो। लेकिन सुमि ने कभी यश के ढंग से भी तो सोचा होगा! सोचा होगा जब समय मिला होगा। सुमि को जैसा पिछले समय में पाया है उसने, तब से कई-कई बार सोचा है कि कितना अच्छा होता यदि वह किसी निराश क्षण में किए गये अपने निर्णय को कार्यान्वित कर लेता। उसके किसी प्यार ने उसको जीवन की ओर फिजूल घसीटा। सुमि के लिए तो यह 'प्रसंगहीन ऋतु-संवाद' ही होगा। कैसे कह दिया होगा उसने कि वह उसकी बातों का बखिया उधेड़ता है। यह बात अभी याद आते ही यश की इच्छा हुई है कि वह अपनी एक-एक सीअन उधेड़ दे। खुद को कुत्ते की मौत मारने की इच्छा होती है उसकी। यदि सुमि को ऐसी ही बातें करने की इच्छा होती है तो करे ही नहीं। उसके भीतर भी तो कुछ ऐसा उठता ही होगा जिसे वह यश तक भेजना चाहे और जो सिर्फ औपचारिकता मात्र नहीं हो।

यश चाहता है कि एक बात तो साफ कर ही लेनी है कि सुमि उससे कैसा सम्बन्ध रखना चाहती है। औपचारिक ? साहित्यिक ? कैसा ? यह तो वह प्रेम सम्बन्ध नहीं है जिसे दृढ़ करने की बात उसने यश से हजार बार की होगी। यह दुत्कार, यह खरोंच, यह प्रताड़ना। सवाल अब भी सवाल है। सुमि को कहना ही होगा कि वह यश के साथ रह सकती है कि नहीं—'यथास्थिति को छोड़कर'—सुमि के शब्दों में। यह छलना नहीं तो और क्या है ? यश जैसे युद्ध हारे सिपाही की तरह प्रलाप करने लगता है कि जो उससे मिलना तक नहीं चाह रही, उससे वह पूछे कि वह उसके साथ उसके दुःख झेलेगी या नहीं। उसके दुर्भाग्य को झेल सकने के लिए खुद को वह दृढ़ बनाएगी कि नहीं—यदि प्यार जैसा सचमुच कुछ है उसके भीतर। नहीं तो फिर अपनी छोटी-सी, उष्ण-

सी, सुखद दुनिया में ही रहे वह और छोड़ दे उसको उसके अपने लाक्षागृह में।

स्थिति यह है कि यश के मस्तिष्क, उसकी देह, उसकी आत्मा में सुमि धुएँ-सी भरी हुई है। यश नहीं जानता कि यह अच्छा है या बुरा। लेकिन इतना भर जानता है कि अब उसकी नियति केवल सुमि है। उसके बिना बीतता हर दिन उसपर एक नहीं पूरा जा सकने वाला जख्म छोड़ जाता है। वह बहुत बुरी तरह छिद गया है, बहुत गहरे आहत हो गया है। सुमि जानें अपना विवेक कहाँ रख आती है कि यश की किसी बात का बुरा मान लेती है। प्रलाप समझ लेती है इस निवेदन को। यह जो इतने व्रण हैं उसपर, यह जो उसका मस्तिष्क छिटककर निकल जाना चाहता है उसकी देह से, यह जो बार-बार उसका मन उद्दाम वेग से आत्महत्या की ओर भाग रहा है, यह सब उसकी रुग्णता तो नहीं है। और इस चौतरफा ज्वार के भीतर जो सच्चाई है, वह केवल यह कि वह सुमि को प्यार करता है और अगर वह यश को नहीं मिली तो वह जीवित नहीं बचेगा।

वह कोई विवशता ही है जब सुमि शब्द-क्रीड़ा करके रह जाती है। यानी यश को समझाकर उसके विवेक को जाग्रत कर। मगर यह साहित्यिक शैली यश को उधेड़कर रख देती है। सुमि को मगर यह क्या सूझा है कि वह यश को एक हजार एक लोगों से जोड़कर देखती है। वह उनसे अलग है, बहुत अलग। यश की उम्मीद धुँधली पड़ती जा रही है कि अब कोई कभी सुमि का प्यार-भरा, अनुराग-भरा पत्र उसको मिलेगा। भविष्य बराबर अनिश्चित है। यह स्पष्ट है कि यश मानसिक तनाव की इस स्थिति को अब और झेल नहीं पाएगा। अगर वह मर नहीं सकता तो दक्षिण की यात्रा पर निकल जाएगा। घर उसने मनिआर्डर भेजने के लिए लिखा है। यात्राओं की भटकन ही शायद उसको थोड़ा बहला सके। तनहाई में सिकुड़कर वह कहना चाहता है—'तो मेरे दोस्त, जाओ, अपने काम में लगो, पढ़ो-लिखो या नौकर को डाँटो—डपटो—बहुत से काम

हैं—इस फ़िजूल पत्र को पढ़ने के अलावा।' तय है कि कुछ देर के बाद यश स्वयं ही क्षमा माँगेगा और कहेगा वह सचमुच स्वस्थ नहीं। अपनी बातों को जब दूसरी बार वह सोचता है तो लगता है कि उसके ज्वर का ताप इसमें यहाँ-वहाँ है जो सुमि को प्रताड़ित-तापित कर सकता है। इसीलिए तो वह क्षमा माँगेगा। प्यार की हद से गुजरने के कारण सुमि हर क्षण उसके खत में नाच रही है। ऐसे में उसका मान भी उसको विह्वल कर जाता है। लेकिन आहत होने की वजह से वह सुमि को मना नहीं सकता, अपनी मानिनी नायिका को समझा नहीं सकता। जाना सुमि को है अपने रूमाल से उसके जख्मों को पोंछने।

रात के अभी सवा बारह हुए हैं। यश की मुद्रा अत्यन्त विचित्र हो गई है। इम्तहान देने गया था वह। एक बजे। तब तक कोई पत्र नहीं आया था सुमि का। थोड़ा खिन्न था वह, पर उम्मीद थी कि शाम तक आये; लौटे तो मिले—दरवाजे के पीछे दुबका-उसके इन्तजार में (अचानक चीख कर चौंकाने की बाल हरकत!) पर कहीं कुछ नहीं। बिल्कुल बेसहारा-सा भटका है तब से—और पड़ोस में चाची थीं ना—सुमि के बड़े गुण गाती थीं—आज सुबह चली गईं—अपने घर—मथुरा के पास। मन सुबह-सुबह ही उसका करुण हो आया था। इम्तहान देकर निकला तो कमरे पर लौटने की तबीयत ही नहीं हो रही थी उसकी। पर आया, कि शायद कहीं जाने की जगह नहीं दीखी थी। किवाड़ को झटके से खोलकर भीतर घुसा है यश—पर शून्य। नहीं; एक मरी हुई चींटी को ढोकर ले जाती हुई ढेर-सी चींटियाँ।

टेबल पर घड़ी रखी हुई है। सुइयाँ घूम रही हैं। इसी तरह घूमती रहेंगी। एक-दो-तीन। पता नहीं कब तक जगेगा वह। आखिरकार सुमि को लिखना या याद करना बन्द करना होगा। तब शायद उसके चित्रों को देखने बैठ जाएगा यश। फिर शायद उन्हें बगल कर सुमि के खतों को पढ़ने लगेगा। फिर···। क्या यही तड़प वह प्यार है, जो सुमि ने यश को दिया है?

अब २२ नवम्बर के बाद (से) इम्तहान है उसका। वह नहीं जा सकता, सुमि के पास कोई मसविदा करने। पैसे नहीं हैं उसके पास अब (फिर)। अपने छोटे से (हो आए) मुँह से यह भी नहीं कह सकता कि सुमि ही आये। धीरे से कुछ बोल रहा है यश अपनी अस्थिरता में—'सुमि, मेरे आँसू लो, जो अभी मेरी आँखों में चमक आये हैं और दो—कुछ भी दो जो वहाँ से दे सकती हो तुम - कोई झूठा आश्वासन, प्यार में चलनेवाला कोई मुहावरा, कोई—कुछ भी। कुछ भी।'

यश अब क्या करेगा। क्या कर सकता है वह? इधर अचानक अपने को कमजोर महसूस करने लगा है वह। शायद अपनी असफलताओं से वह ऊब गया है। इन्हें वरा था कभी। आखिर अब तक उसने क्या किया? एक मरीचिका के पीछे दौड़ता रहा। कविता कविता कविता! होता है कविता से? क्या हुआ उसकी कविता से? क्या होगा? बिल्कुल कुछ नहीं। अपनी बुनियादी कमजोरियाँ इससे कबतक ढँकता रहेगा। सब कुछ फिजूल। एक नाकारा, आवारा, काहिल, कामचोर युवक हो गया है वह। सचमुच बड़ी हास्यास्पद स्थिति में है वह—और उसको बहुत संकोच हो रहा है कि सुमि उससे कैसे जुड़ी? खुद को कुचलना पड़ता होगा, है सुमि को उससे न कुछ के लिये।

कभी लिखा था सुमि ने कि वह पत्र नहीं देगा तो वह खाना भी छोड़ देगी। और यश ने अत्यन्त भावावेश में लिखा था जबाब में कि पगली! ऐसा क्या! वैसे मेरा पिछला पत्र मिला होगा और 'बकाया' चुक गया होगा। पर अपनी बात कह दूँ। मेरे इस पत्र का जबाब मत देना तुम। अब मैं तुम्हारा खत नहीं चाहता, तुम्हें चाहता हूँ—अपने सामने, अपने बाहर, अपने भीतर। तुम्हें सदेह।"

अभी, अँधेरा उतर रहा है—देख रहा है यश उसको फैलते अपना आँखों, अपने विस्तर और अटैची से होते हुए घूमती हुई घड़ी की सुइयों पर।

●

आठ

शाम तक सोये रहने पर देह में जिस तरल आलस्य और अकारण थकान का अनुभव होता है, कुछ वैसा ही हो रहा है। शील ने सीधा लेटकर बाँहों से चेहरा को लपेट लिया है। यह एक बड़ा सुखद अनुभव है कि वह (यानी उसकी देह) कुछ नहीं करना चाहे और कुछ करने बैठ जाए, चुप पड़े रहना चाहे, पर पत्र लिखने लग जाय, देह को और ढील देना चाहे और भीतर से कुछ उपलाकर आता महसूस करे, एक नाम तनु, सुरभिता, तनु—आज—तनु सुरभिता; नहीं कभी-कभी अजनबी हो जाता हुआ—तनुजा।

बात दरअसल यह है कि वह सचमुच अभी सोकर उठा है—शाम के साढ़े पाँच बजे। दोपहर में इधर-उधर रहा था वह। उठा, और बिस्तरे पर से ध्यान से देखता रहा—दरवाजे की ओर। नहीं, कोई कुछ नहीं। और एकाएक बुरी तरह भारी हो उठा। इसलिए वह सोचने लगा है कि उसकी बातों का कोई मतलब नहीं निकलता। मगर किसे कहें कि माफ़ करना। दोपहर में एक मित्र के यहाँ गया था वह। उसी वक्त उनके यहाँ डाकिया एक पत्रिका दे गया—'उत्तर बिहार'। वे इसे उलट-पुलटकर देखते रहे और सरकारी विज्ञापनों को देखकर सिर धुनते रहे। विज्ञापन-नीति की धारदार चर्चा के बाद उन्होंने शील के हाथ में थमा दिया वह अंक—'जरा देखिये इसे।'

'देखना क्या'—शील ने कहा और अंक परे कर दिया। फिर बातें। कि खेल-खेल में टेबिल से उठाकर पलटने लगा। कि अचानक मेरा नाम देखकर एक क्षण को स्तब्ध हो रहा वह—'सफल लेखिका तनु सुरभिता।' शील के मुँह से अचानक निकल जाता है—'वाह प्यारे, क्या बात है! 'साहित्यिकी' द्वारा तनु की कहानी शैली की समीक्षा। समीक्षक इन्दुमती सिंहा, शांतिलाल, रेखादास, आरती चौरसिया। बहुत

खूब।' वह बहुत देर तक 'उत्तर बिहार' की लिखत को पढ़ता रहा। उसको लगा सुरभिता क्यों लिखती हूँ मैं। एक बार उसने कहा भी था मुझको कि 'सुरभिता' लगाने पर मेरे नाम की कमनीयता समाप्त हो जाती है। शील को शिकायत है कि यह सब मैंने किया और उसको खबर तक नहीं दी। इधर बड़े रिजर्व्ड ढंग का सम्बन्ध मैं उससे रख रही हूँ। बहरहाल, उसने उस समय बधाई लिखकर मुझको भेज दी थी। मेरे इलाहाबाद जाने का उसने उपहास किया था यह लिखकर कि "तुम्हारी इलाहाबाद यात्रा भी कोई यशःकामी यात्रा होगी। शायद अपने समीक्षा-संग्रह को अब और आप नहीं रोक सकतीं छपने से। शुभकामनाएँ।"

मैंने काफी सोचा था और शील की शुभकामनाओं में मुझे ढेर-सा व्यंग छिपा मिला था। मैंने अपने को रोक लिया था। अन्यथा मैंने चाहा था कि मैं भी उसे उतनी ही मीठी गाली लिखकर भेज दूँ। मुझको उसपर दया आयी थी कि वह इसको बर्दाश्त नहीं कर पाएगा। इस बार भी मैंने खुद को उदास किया और इस उदासी से छुटकारा पाने की चेष्टा करती रही।

शील को फिर हलका-सा मजाक सूझा था शायद कि लिखते-लिखते उसने लिख दिया—'तनु जी, मुझ-सा साधारण आदमी क्या आपकी राह में पलकें बिछाये खड़ा ही रहेगा। आपकी राह देखेगा और थक जाएगा। थक जाएगा और आपकी राह देखेगा।'

मैंने सोच लिया था कि वह शील का अंतिम पत्र होगा क्योंकि उसने यह भी लिखा था —'तो यह मेरा अंतिम पत्र होगा न आपके इलाहाबाद-प्रयाण के पूर्व ? लिखिएगा। और जब वहाँ से कुछ अधिक लोकप्रिय और कीर्तिवान् और अनुभव समृद्ध और बड़ी होकर लौटिएगा, तो मुझे आदेश दीजिएगा, मैं आपकी सेवा में लिखूँगा। आपकी तो सीधी गाड़ी है न, मुजफ्फरपुर से इलाहाबाद की। अगर यहाँ से जाती तो आपको छोड़ने का आनन्द भी हासिल करता मैं। कौन जानता है (भय है) कि साथ भी

लग जाता। अतः वैसे ही जाना ठीक है।' इन बातों को पढ़ते ही जैसे आग लग गई थी मुझको—सिर से पैर तक। जब कभी वह मुझको बोर करना चाहता है, इसी तरह आप-आप लिखता चला जाता है। इस तरह वह लिखता ही क्यों है, मेरी समझ में नहीं आता।

पिछली बार जब वह मिला था, उससे पिछली, उससे भी, तो कहा करता था वह कि बुजुर्ग लोग कहते हैं; कल्पनाएँ अच्छी करनी चाहिए। इसमें क्या कंजूसी। अब मुझे देखो, मैं कल्पना कर रहा हूँ कि तुम आई हो। मेरे पास। और मैं खिल उठा हूँ। मेरी देह पर जमी हुई सन्देह और आत्महीनता की धूल को तुमने बड़े प्यार से छिः कहकर झाड़ दिया है—हथेली के हल्के इशारे से। और तुम मुझे खींच रही हो। मेरे साथ नहीं चलोगे? मैं हल्के इशारे से। और तुम मुझे खींच रही हो। मेरे साथ नहीं चलोगे? मैं कहता हूँ: मेरी नौकरी? तुम कहती हो; पगले, नहीं जानते मैं हिन्दी की शिक्षा पूरी कर रही हूँ—सब बता दूँगी तुम्हें रास्ते में। समझे उम्मीदवार महोदय! और तुम मेरा कान पकड़ लेती हो और मैं उठता हूँ और झुककर तुम्हें छूता हूँ।···हाँ कल्पनाओं में लगता ही क्या है?···' इन पंक्तियों को पढ़कर तब भींग उठी थी मैं। आज भी ये पंक्तियाँ मेरे पास हैं, पर अब मैं नहीं भीग पाती इनसे, उल्टे नाराज हो जाती हूँ, भीतर कुछ मथने लगता है। मन मन-सा नहीं रहा मेरा।

एक शील की बात। नौकरी मिल जाने में ही उसको कोई तुक समझ में नहीं आ रही। इसीलिए पशोपेश में हैं वह। वैसे क्या जल्दी है उसको। कौन-सा खब्त सवार है कि अपने पाँव पर खड़ा होकर ही रहेगा। मैंने तो कितना कहा था कि काम्पीटिशन की तैयारी करो। पर वह मेरी सुनता कब है? उसके मन में अनिर्णय का धुआँ रहता है। सब कुछ बेकार लगता है—अपना अस्तित्व तक—उसको। पहले उसको लगा था कि किसी उपलब्धि की तरह मिली हूँ मैं उसको और खुद पर—अपने भँवरीले दिनों में भी उसको गुमान हो आया था। पर जैसे-जैसे उसने मुझे हतप्रभ किया और मैं दूर जाने लगी—उसके भीतर का आवेग

घटता गया और भीतर की जर्जर सच्चाई साफ हो गई। अपने को छलते जाने से न जाने तब क्या फायदा हुआ था उसको जो अब हो रहा है। और मैं? अपनी आत्मा को दरका रहे इन दिनों में—जब यह पाती हूँ कि मेरे कांधों पर से उसके हाथ हट रहे हैं, तो लगता है खुद अपना ही गला क्यों नहीं दबोच लेती मैं। शील को यह सब शाब्दिक उत्तेजना ही लगेगी। ईश्वर करे, यह ऐसा ही हो। पर मैं अपने को इतना जान गई हूँ इधर के कुछ दिनों में, कि मुझे भय हो रहा है। कितना अटपटा है यह सब कि मुझे भय हो रहा है। मुझे खोकर शील को भी दुख होगा न,—थोड़ा ही सही। और उसके दुखी होने की कल्पना ही त्रासद है—मेरे लिये। और यह अहसास दिनोंदिन मेरे अन्दर गाढ़ा होता जा रहा है, कि कभी उसके लिए दुख की गाँठ बनूँगी मैं। एक दुखता हिस्सा—जो अब नहीं है, पर जिसकी पहचान छूट गई है—पीड़ा, वेदना—।

कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह मेरे लिये अपनी तरफ से आया। अपनी तरफ से,—बहुत धीरे से, उसको सुनाई न दे इतनी मद्धिम आवाज में। मेरे पास कहने को यह भी एक बड़ा दुख है।

उस दिन पता नहीं, क्या हुआ था। बहुत जोर की टीस उठी थी मुझमें। मैंने शील को लिखा कि 'फिर कभी दुबारा बुलाने का दुःसाहस नहीं करूँगी। एक ट्रेन से चले आओ—दूसरी से चले जाना। नहीं रोकूँगी। बहुत जरूरी बात करनी है, जिन्दगी से भी जरूरी।' शील हड़बड़ा गया था और अपने एक मित्र के द्वारा एक प्राइवेट कालेज के ऑफर का जवाब भी ठीक से नहीं दे सका था। उसकी शर्त्त विचित्र थी। ऐसा ऑफर शील को एक बार और मिल चुका था। उसी मित्र के यहाँ रह रहा था वह। तब उसे कसके भूख लगी थी और उसने एकाधबार माँगा भी था पर सामने आँगन की ओर खुलने वाले दरवाजे पर उसने मित्र की भाभी को अजीब सी मुद्रा में चावल बीनते देखा था। एक बार अपनी ऊब में ही उसने भाभी की ओर देखा तो लगा कि जानबूझकर ही चावल बीनने में वह देर कर रही हैं। 'आजकल' में उसने एक लेख लिखा

था। यदि उसके पैसे आ गये होते तो वह सीधे होटल में जाकर खा लेता फिर उसके पास मेरे पत्र पर सोचने का काफी समय होता। पहली बार शील ने चाहा इस इन्टरव्यू की बात मुझको क्या बताई जाय। इस पर अब अधिक बहस करना मेरे लिये निरर्थक था। मगर चुप्पी की परतें चढ़ाकर भी नहीं बैठ सकता था वह क्योंकि मेरा पत्र पढ़ते ही वह जैसे हिल उठा था। जैसे कोई जलती गर्म सलाख उसके बीचों-बीच पड़ गई थी। कई बार बरामदे में उसने चहलकदमी की, मगर इस पर भी जब किसी का ध्यान नहीं गया तो वह खीझने लगा। वह सोचने लगा था कि खीझने के अलावा उस मनःस्थिति का कौन-सा माकूल जवाब होता। कि अचानक उसका मित्र आता हुआ दीखा था। उसने प्रसन्न होकर कहा—'तुमने सोच लिया न, शील। यह इन्टरव्यू तुम्हें देना है। मेरे अपने कई लोग हैं इस बोर्ड में। मैं उनसे मलकर आ रहा हूँ। उम्मीद है, वे तुम्हें अवश्य बहाल कर लेंगे।'

कि सहसा खिल आया था शील का चेहरा। सामने मैं उसे उँगलियाँ नचाते हुए दिख गई थी। मगर यह सोचकर कि प्राइवेट कालेज में ज्वाइन करना मुझे कैसा लगेगा, वह विरोध करने के लिए बोल उठा था—

'मैं इस इन्टरव्यू में नहीं जाऊँगा।'

मित्र ने शील के मन का कशाघात समझा था और उसने समझते हुए कहा था—'बचपना मत करो शील, कब तक यों ही हाथ-पैर मारते रहोगे? कहीं काम पकड़ लेना अच्छा है। तुम्हारी भाभी भी यही कह रहीं थीं।'

शील अन्यमनस्क हो उठा था। उसने जान लिया कि भाभी कह रही थीं, इसीलिये मित्र ने वैसा कहा। भाभी के कहने से तो वह कुएँ में जाकर डूब नहीं सकता। यदि भाभी यह चाहती हैं कि उनके यहाँ रहे बहुत दिन हुए तो वह उनका घर छोड़ सकता है। उन दिनों आगरा में था, शील और उसी शहर में उसकी बहन भी रहती थी। उसके जीजा गवर्नमेन्ट गार्डेन में काम करते थे। लेकिन उनकी स्थिति उतनी अच्छी

नहीं थी और वह उनपर बोझ नहीं बनना चाहता था, इसीलिये मित्र के घर ठहर गया था। जब कभी बहन से मिलने जाता वह तो वह जिद्द कर बैठती कि तुम वहाँ क्यों हो ? शील कभी भी ठीक जवाब नहीं दे पाता और बराबर अपनी सुविधा की बात कर बहन को आश्वस्त कर देता।

मित्र ने फिर शील को समझाया था और भाभी ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'अपने पास कौन से हीरे जुगाये हैं आप, जिनके सहारे जिन्दगी कट जाएगी ? घर पर भी तो लोग परेशान ही होंगे !' दरअसल उनकी खीझ का कारण था। उस मित्र की एक बहन ने मैट्रिक की परीक्षा दी थी, जवान हो गई थी वह। किसी भी सेट्लड लड़के के लिए बीस-पचीस हजार रु० कैश से कम की तो बात ही नहीं हो सकती थी। शील ने जब पहली बार उनके यहाँ रहने की बात की थी तो वे प्रसन्न ही हुए थे कि चलो, कोई न कोई बात तो बन ही जाएगी। उस लड़की ने कई बार शील को खिलाया भी था। मगर शील की आँखों में उसके लिए उसी उम्र की अपनी छोटी बहन से अधिक का चित्र नहीं बन पाया था। और इधर मित्र और मित्र-पत्नी दोनों हताश होने लगे थे। और इस तरह उसको पीड़ित कर रहे थे। शील जानता था कि मित्र की संवेदना भी उसके लिए कितनी मँहगी है। मगर यह सब मैं उस वक्त नहीं जान पाई थी।

शाम को जब जीजा के साथ वह गार्डेन में बैठा था तो शील के अन्दर कहने लायक कोई बात नहीं थी। नौकरी के जिस मुद्दे को लेकर वे बैठे थे, उस पर बीसों बार उन दोनों के बीच बहस हो चुकी थी। जीजा ने कहा था—'आखिर आपने सहा ही कितना है ? मेरी तरह सहते तो जानते। किस सुख के लिए गार्डेन में पड़ा हूँ मैं। तीज त्योहार में भी नए कपड़े खरीदकर नहीं दे सकता बच्चों को। पढ़-लिखकर सिर्फ हाथ-पाँव मारे हैं आपने। भाग-दौड़ की है। पिंसिपल की विद्वता की तारीफ तो नहीं की आपने। किसी एम० एल० ए० अथवा एम० पी० के चुनाव में काम-

धाम भी तो नहीं किया। आजकल नौकरी एवज में मिलती है—कुछ करने के एवज में। पन्द्रह हजार सलामी भी तो नहीं दे सकते आप !'

और शील का माथा दुखने लगा था। मास्टर डिग्री लेने के बाद उसका यह दसवाँ इन्टरव्यू होता। उसने मन को समझाया था। 'उम्मीद नहीं हारूँगा'। इसी नाउम्मीदी के क्षण में टूटे स्वर से गाने जैसा कुछ करने लगा—'सँभलने दे मुझे ऐ नाउम्मीदी क्या कयामत है

कि दामान-ए खयाले-यार छूटा जाय है मुझसे।

मित्र के बहुत कोंचने पर शील तैयार जैसा हो गया था कि अचानक पूछ बैठा था—'प्राइवेट कालेज ही सही, पर तनख्वाह तो मिलेगी ?'

मित्र को जैसे असलियत का पता था। इसलिये उनका चेहरा अपराधी जैसा लगने लगा। बात स्पष्ट हो चुकी थी। इसीलिये शील प्रसन्न होना चाहता था। मित्र उसको इन्टरव्यू लेटर खोजने को कह रहे थे। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट जैसी कुछ आयी थी। वे कह रहे थे—'यह कालेज अभी नया है। दो-चार साल के बाद देखना, यही चमक जाएगा और पूरी तनख्वाह मिलने लगेगी। यहाँ शुरू के दिनों के लिए कर्मठ और मिहनती लेक्चर, की आवश्यकता है। तुम इस काम को बखूबी कर सकते हो। यदि तुम जम गये तो बाद में हेड ऑफ दि डिपार्टमेन्ट भी तुम्हीं बनोगे। इस बोर्ड के लोग इतने अच्छे हैं कि बाद में तुम्हारी उन्नति का ये पूरा ख्याल रखेंगे। और फिर टीचिंग एक्सपीरिऐन्स भी तो बड़ी बीज है। अभी तक वह भी तो तुम्हारे पास नहीं। तुम्हारे पास पैसा होता तो तुम कितना कुछ डोनेट कर सकते थे संस्थाओं में ! नहीं है तो कुछ अपने श्रम की कमाई ही सही। भविष्य के लिए ही तो आदमी वर्तमान का कुर्बान करता है !'

शील को कसकर गुस्सा आ रहा था। पर वह खुश दीखने की चेष्टा करने लगा। सोचने लगा कि कैसे इन्टरव्यू-बोर्ड के सामने प्रसन्न-मुद्रा लेकर जाना होगा। फिर अन्दर की जड़ता को तोड़ने के लिए वह इधर-उधर देखने लगा था। मित्र समझ न ले कि उसकी आवाज टूट रही है,

इसलिये वह अधिक बोलना नहीं चाहता था। तभी उसकी आँखों में अपने चचेरे भाई का चेहरा उतरा था। विपिन! बचपन में भाई-बहनों के मर जाने के कारण लोगों ने उसको विक्कू कहना शुरू किया था। बचपन का वही विक्कू अब विपिन था। मैट्रिक कर लेने के बाद ही कालेज के एक क्लर्क ने अपने पास रखकर उसको पढ़ाना शुरू किया। स्वयं नहीं पढ़ सकता था वह—अभावग्रस्त था। बाद में उसने बी० एस० सी० किया और पता नहीं कैसे बैंक में नौकरी भी लग गई। शील ने सोचा, विपिन कितना सौभाग्यशाली है, सिर्फ बी० एस० सी० है और पूरे परिवार को चला रहा है। मैं मास्टर डिग्री लेकर क्या कर सका? बहन ने एक बार आँखों में आँसू भरकर जाने क्या-क्या समझाया था उसको! बहन के वे आँसू याद आते ही उसका चेहरा ऐसा बन गया कि जैसे शोक सभा में शरीक होने जा रहा हो।

इन्टरव्यू को अभी चार-पाँच दिन देर थी। मित्र के कहने पर एप्लिकेशन उसने भर दिया था। सोचा था बाद में देखूँगा, इन्टरव्यू में टर्नअप होना है कि नहीं। तब तक और बातें खुलेंगी। उम्मीदवारों का पता भी चल जाएगा। कितने तो उसमें से बोर्ड के भाई-भतीजे ही निकल आयेंगे। शेष जो बचेंगे वे किसी-न-किसी कमिश्नर, एस० डी० ओ०, मंत्री के सिफारिशी पत्र लेकर पहुँचेगे। कितनों ने सीमेंट और मैदा पहुँचाया होगा। यहाँ मेरिट को देखता कौन है! मित्र ने जब उसको बहुत उदास होते हुए देखा तो पलंग पर बैठने का आग्रह करने लगा। उसने अपनी बहन को पुकारकर एक ग्लास शर्बत भी बनाने को कहा। ठीक उसी वक्त उसका ध्यान गया कि उसके कपड़े किस तरह तुड़-मुड़ गये हैं। बालों और चप्पलों पर धूल की परतें थीं। उसने कहा था कि वह कपड़े ठीक कर लेता है, पर मित्र ने टोक दिया था कि 'इतने फैशनेबुल न बनो यार'। और वह सकुचा गया था कि कहीं उसकी बहन ने तो नहीं सुन लिया। अचानक उसको याद आया कि परसों चौथे दिन के सारे बदले हुए कपड़े उसी तरह पड़े हैं। कमीजों और शर्टों के

कालर धूल और पसीने से गंदे हो गये थे। उसके होंठ सूख गये थे, पर धूल के कारण वह उन्हें चाट नहीं रहा था। वह शर्बत का इन्तजार करने लगा था कि भाभी बुदबुदायी थी—'चीनी कन्ट्रोल में भी नहीं मिलती। आज बगलवाले आदमी के हाथ पैसे और झोले राशन-कार्ड के साथ भेजे थे, लेकिन वह अब तक लौटकर नहीं आया। शाम तक कहीं लौटकर आवे।' फिर भी शर्बत आ गया था। इस वक्त तो वह बहुत मीठा लगा था। उसने राहत की साँस ली थी। ९ बजे के बाद जब सभी सो गये थे तो वह चुपके से मित्र की पलंग के पास गया था और बताया था कि इन्टरव्यू में अभी देर है। एक दिन के लिए वह घर जाना चाहता है, बहुत जरूरी काम है। मित्र ने केवल सिर हिला दिया था जिसको उसने अन्धेरे में ठीक से देखा भी नहीं था।

और वह भागकर मेरे पास पहुँचा था। भरी दोपहरी में जब वह मेरे घर पहुँचा तो घर में कोई नहीं था। माँ और बाबूजी फुआ की लड़की की शादी में गए थे। छोटा भाई पता नहीं अपने किसी साथी के साथ सिनेमा गया था या कहाँ। छोटी बहन सो रही थी। नौकर सभी आराम कर रहे थे। एकाएक कॉलबेल बजी थी। मुझको आश्चर्य हुआ था कि इस भरी दुपहर में कौन आ सकता था। यदि मामा होंगे तो मुझे बड़ी खीज होगी। इस ऑड ऑवर में आदमी बैठकर चाय ही बनाये। मेरे हाथ में एक किताब थी जिसको मैं पलंग पर फेंककर आँचल ठीक करते हुए आगे बढ़ गयी थी। दरवाजा खोलते ही मेरी आँखें चौंधिया गईं। पता नहीं बाहर कयामत ढाती धूप के कारण या द्वार पर खड़े आठवें आश्चर्य के रूप में अभ्यागत को देखकर। मैंने तपाक से मुस्कराने की कोशिश की थी और जल्दी बाजी में घर में आने के लिए कहना भी भूल गई। इन दिनों काफी तेजी से जो मेरे मन में सन्देहों के बादल उगे थे, अभी साफ नहीं हुए थे। शील ने स्वयं कहा था—'चलो अन्दर चलें। भीतर चलने नहीं कहोगी?' और तभी मैंने उसका हाँथ खींच लिया था। पलंग पर बैठाते हुए मैंने पूछा—'कहो कैसे आये?'

—'तुमने बुलाया या नहीं ?'

—'हाँ' मैंने कहा और सोचा कि इधर-उधर की बातें तो होती ही रही हैं, अभी सिर्फ मूल बातें ही करूँगी।

मैं उदास होती कि उसने पहले ही पूछ लिया उदास क्यों हो ? वैसे वह मेरी उदासी का कारण जानता था, जान सकता था, पर कहना मुझे था, क्योंकि उसने मुझसे ही पूछा था। मैंने नौकर को आवाज दी और जल्दी से नाश्ता लगाने के लिए कहा। अमूनन ऐसे मौकों पर पहले वह मना कर दिया करता था। 'नाश्ता में क्या रखा है बातें करो।' पर अभी उसने मना नहीं किया। मैंने सोचा शील अब अधिक बोल्ड हो गया है। परिस्थितियाँ इसी तरह आदमी को बोल्ड बना देती हैं।

नाश्ता करके उसने चाय का पहला सिप लिया और हँसने की कोशिश की। पर उसकी हँसी होंठों में ही फँसकर रह गई, पहले की तरह चेहरे पर नहीं फैल सकी। मुझको वह कुछ-कुछ नर्वस लगने लगा था। तभी उसने बताया था कि 'मुझे एक इन्टरव्यू में जाना है। मैं जल्दी ही बातें कर दूसरी ट्रेन पकड़कर चला जाऊँगा। मैंने सोचा कि कोई जरूरी बात है। इसीलिए आ गया हूँ। जानना चाहता हूँ कि वह कौन सी बात है जो तुम्हारी जिन्दगी से भी जरूरी है।'

जिस बात को कहने के लिए दिन, माह, वर्ष जाने कितने-कितने गुजारे थे मैंने, अब उसका समय आ गया था। मगर मेरे होंठ बैठने लगे। मैं अजीब तरह से नर्वस होने लगी और मुस्कुराने की कोशिश में तो और। दरअसल मैं हँसते रहना चाहती थी। क्योंकि पिछले समयों में जब कभी हम मिले हँसते ही रहे थे। बात-बात पर हँसना यही मेरी विशेषता थी। मैंने अपने माथे को उँगली से छुआ और देखा कि वहाँ कोई पसीना तो नहीं है। एकाएक मेरी आँखें चमकने लगीं। जैसे कड़ी धूप के बाद अँधेरे में आने पर होता है। मैं पलंग से उतरकर सोफे पर बैठ गई। तब शील मुझको इस तरह देखने लगा जैसे मैं कभी सोफे पर नहीं बैठी होऊँ। मैंने उठकर पंखा को और ऑन कर दिया। टेबुल पर सोफकेश में रखे लेबे-

न्डूर ड्यू की खुशबू उड़ी और हवाओं में भर गई। मैंने इस खुशबू के बारे में कुछ कहना चाहा, पर व्यर्थ की बहस में समय खोना गवारा नहीं किया। उसने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से कहा—'कहो न, जो कहना चाहती हो।' स्पष्टतः मैंने उस की आँखों में सहानुभूति देखी। और जैसे किसी गली के लड़के के हाथ से गुलेल की गोली छूटकर दूर जा गिरे, मैंने आँखें झपकाकर चारों तरफ देखने के बाद कहा—'ब्याह नहीं करोगे ?'

—'ब्याह ! अभी ? खुद को कहीं स्थिर कर लूँगा, तब।' उसने दाँयी हथेली को बाँयीं पर रखते हुए कहा ?'

—'देखो यह मेरे लिए एक बहुत बड़ा सवाल हो गया है।'

—'जानता हूँ, मुझसे बड़ा सवाल नहीं होगा।'

—तो तुम टाल रहे हो ?'

—बिल्कुल नहीं। आखिर तुम घबरा क्यों गई हो ? किसी भी चीज का एक निश्चित समय होता है। आने दो उसको। हम लोग एडजस्ट करने के क्रम में ही आगे बढ़ रहे हैं तनु ! मगर देखता हूँ, तुम पीछे छूट रही हो। यही स्थिति यदि ब्याह के बाद हुई तो क्या करूँगा ? इसीलिए सभी अनचाही स्थितियों को पहले ही भोग लेने दो।'

यह कहते हुए वह अत्यन्त कातर हो गया था। पर मुझको उसकी कातरता कहीं से भी नहीं दीख रही थी। मेरा मोह भंग हो गया था फिर जीने से गिर कर भी किसी का सिर इतना लहूलुहान नहीं होगा जितना मैं हो गई थी। पता नहीं, कहाँ हमारे सोचने-विचारने में दृष्टिदोष था। दो क्षण के लिये वह मेरी दृष्टि को बचाकर निःशब्द घूमते हुए पंखे की ओर देखने लगा था। अब शील में मेरे लिये कोई खास आकर्षण नहीं रह गया था। इसीलिए तो वह उन औसत युवकों की तरह लगने लगा जो शहर के छोटे मुहल्ले में रहते हैं, जिनके दिन की शुरूआत साइकिल की घंटी से होती है, जिनकी दुपहर दरवाजे में कपड़े बदलने से और शाम सब्जियाँ खरीदने, सड़कों का शोर बनने में गुजरती हैं। शील मुझको एक औसत मध्यवर्गीय की तरह लगने लगा था—झिझक में जकड़ा, बहुत

बेचारा की तरह। उसका यह स्वरूप उसके पिछले स्वरूप से अलग था। नये फैशन का ग्रे कलर का फुलपैंट पहने हुए भी वह पाजामा-कुरता वाला किसी-क्लर्क सा लगने लगा। घुटने पर उसके फुलपैंट की सलवटें टूट गई थीं। मुझको लगने लगा कि—उसका कपड़ा बहुत घिस गया है। जानती हूँ कि उसके कंधे पर काफी जिम्मेदारी थी और वह उसके बोझ से परेशान था। पर इसमें मुझे उसकी मूर्खता भी दीखती थी। वह किसी से कह सुन नहीं सकता था? हाल ही में तो देखा कि रामनाथ जी जातीयता और कुछ रुपयों के बल पर कालेज में नियुक्त हो गए थे। शील इनमें से कुछ भी नहीं कर सकता? मैं एक तरह से गिड़गिड़ाने लगी थी—'हम दोनों साथ ही मिलकर संघर्ष करेंगे? शील, मुझे हताश मत करो। नौकरी मैं करूँगी, मुझे मिल जाएगी। तुम काम्पीटिशन की तैयारी करना।'

—'मैं एक लेक्चरर की ज़िन्दगी चाहता था तनु, अफसर मैंने कभी बनना नहीं चाहा।'

उसकी मूर्खता पर मैं फिर झल्लाने लगी। मुझको लगा मेरे अन्दर मशीनी खट-खट बराबर चल रही है—बड़े-बड़े पैनल जिनपर सैकड़ों रंगीन बटन।

मेरी आँखों में आँसू आ जाते कि शील बोल उठा था—'मेरे लिये जीवन का अर्थ अब केवल इतना है कि मैं किसी तरह भूखा-नंगा होने से बच जाऊँ। इसको तुम नहीं समझोगी, तनु!'

—'बेकार की बातें मत करो।' मेरे होठों और आँखों पर तब भी दया के बदले व्यंग्य और तिरस्कार झलकने लगा।

अब तीन-चार घंटे बीत गये थे। शील के चेहरे पर व्यंग्य की हँसी थी। उसका वह संकोच समाप्त हो गया था, जिससे पहले वह अकसर जकड़ा रहता था। उसने कहा—'देखो मुझे दो जिन्दगी से बेहद नफरत है—क्लर्क और स्कूल मास्टर की। मैं इन दोनों के अतिरिक्त ही कोई काम करूँगा। और अफसर तो मैं हो नहीं सकता।'

शील की बदलती मुद्रा के साथ मेरी भी मुद्रा बदलती गई, पर विभिन्न दिशाओं की ओर। एकाएक हम दोनों के बीच काफी गहरी चुप्पी आ गई थी। मैं खीझ गई बुरी तरह। वह बोलना क्यों नहीं चाहता। झूठा ही सही, अब प्यार का कोई मुहावरा उसके पास नहीं? और मैंने कह ही दिया—

'तो जाओ, फिर पलट कर मेरी ओर रुख नहीं करना। तुम्हारे जैसे लोग दायित्व से घबड़ाते हैं। किसी लड़की का आकर्षण केन्द्र तो बन जाते हैं वे, पर वह आकर्षण लोहे की तरह जितनी जल्द गर्म होता है, उतनी जल्द ठण्डा भी। मुझे गलतफहमी हुई। अब कभी आँखों में तुम्हारे लिये कोई प्यास नहीं होगी।'

मेरे अन्तिम वाक्य को शील सुन नहीं सका था और धीरे से ब्रीफकेस उठाकर कमरे के बाहर हो गया था। चलता-चलता चौराहे तक आकर दायीं ओर मुड़ने ही वाला था तब तक मेरे कण्ठ से कोई आवाज नहीं निकली। दुःख, क्रोध और अपमान के कारण मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था। धीरे-धीरे शील स्टेशन-रोड की ओर बढ़ने, लगा। फुटपाथ की भीड़ उसे चलने नहीं दे रही थी। घंटियों की टन-टन और रेलमपेल। यह सड़क आज आशातीत रूप से गहमागहम थी। वक्त की नजाकत को पहचानते हुए शील सीधे प्लेटफार्म पर जाकर दम लेना चाहता था। अगल-बगल फुटपाथों पर खड़े लोग आइसक्रीम, पेस्ट्रियाँ, ठण्डा-गरम, चाट या पान-सिगरेट, रसभरी, खा-खिला रहे थे। उनकी बातचीत का अन्दाज प्रशंसनीय लगा, काफी सरगोशियों—भरा। पर इन चेहरों में कोई शील का नहीं था। इन लोगों के बीच कहीं मैं भी नहीं थी।

अब शील मित्र के पास पहुँच गया था। मैं अकेली हो गई थी। अपनी एकाकी दुनिया में भटकने के सिवा अब मेरे पास कोई उपाय नहीं था। मगर मुझको अपने पर कोई कोफ्त नहीं थी: इसीलिये मैं अधिक टूट गयी थी।

सुबह के आठ। शील अभी खाकर लेटने आया है। मित्र के यहाँ सब

लोग मार्निङ्ग काम पर चले जाते हैं ! इसीलिये नहीं चाहकर भी शील सुबह में ही खा लेता है। कल की लिखी हुई चिट्ठी मेज पर रखी है। शाम या रात गिरा नहीं सका है। फिर अभी मुझे वह क्यों लिखेगा, इसका कोई स्पष्ट कारण उसके दिमाग में नहीं है। इसे भी कहीं मैं उसका बचकानापन समझकर एक फीकी हँसी के साथ पढ़कर परे कर दूँ ! शायद थोड़ी चिन्ता तो उसके पत्र मुझे देते ही हैं (और दे भी क्या सकते हैं ?) और अभी जैसी स्थिति में वह छूटा हुआ है, चिन्ताएँ, विलाप, दर्द, वेदना इन सबके अलावा वह दे भी नहीं कुछ सकता। रात कैसे बीती है, नहीं जानती। आँखें बन्द करते ही जब दुःस्वप्न गला घोंटने लगे, कोई प्रिय आवे कुहरे को हाथों से हटाती—सुर्ख होंठों वाले किसी रोशनी के फूल के तरह और अपनी पंखड़ियाँ बन्द कर ले अचानक—ठीक उसके होंठों के सामने, हवा में उठे उसके हाथ एक बेचैन कम्पन में । इसके अलावा कुछ और नहीं, कुछ नहीं।

रात देर तक शील मेरे पुराने पत्रों को पढ़ता रहा। सारे पत्रों को क्रम से रख लिया एक पर एक और पढ़ता रहा। भीतर से रुदन लावे की तरह उठ रहा था, जिसे बलपूर्वक रोके रहा ! आह, कितना प्यार करती थी मैं उसे। पहले कितना डरती थी कि कहीं वह मेरी पलकों से गिरकर खो न जाए ! अब यह क्या हो गया ? इन कुछ दिनों में। उसकी आत्मा को निचोड़कर निकला हुआ विलाप, मेरी आँखों को एक बार भी तरल तक नहीं बना सका। मैं उसी तरह रही-पाषाणी—अपने अहं के खोल में बन्द। अपने गीतों को मन ही मन आत्म मुग्ध गाती, टाँगे फैलाकर ऐसी, उससे घृणा करती, कभी-कभार 'दया' भी, प्यार नहीं; पीठ देकर सो जाती, कहीं भीतर यह चाहती कि किसी तरह उससे पीछा छूट जाए। मुझे याद है, पास-कोर्स की परीक्षा के पहले जब गई थी अनोखा साहस दिखाकर—उसको अपने उजले पारलौकिक प्यार से भरती हुई—कितना-कितना अपने प्राणों से भी अधिक—नहीं प्राण लघु शब्द है यहाँ,—उसको उससे भी अधिक। चाहती हुई। यह मेरा वादा था कि ऑनर्स

की परीक्षा के पहले मैं वहाँ जाऊँगी। मैं वहाँ जाऊँगी और एक बार फिर उसे स्नेह और संकल्प से भर दूँगी। लेकिन कहाँ हुआ वैसा! मैंने सम्मेलनों के लिये छुट्टियाँ लीं, उसके लिये नहीं। इस सस्ती ख्याति, या मान लूँ किंचित् अर्थ, को कैसे उसकी बगल रखकर मैं चुन लेती थी? यह क्या हो गया था अचानक! और शील ने भी तो क्या यह जान लेने के बाद कि मैं अब उसके बिना नहीं रह सकती, नहीं जी सकती, उसने ऐसी निष्करुण हरकतें शुरू कर दीं? उसकी प्रतीक्षा किए बिना मैं आजमगढ़ गई। आने पर क्रूर बनी रही। मैंने उसे एक बार भी सहलाया होता! अपनी गोद में खींचकर दुलार से लोप दिया होता। किस चीज की प्यास थी उसमें? क्यों आया था यहाँ वह? क्या है इस विश्व में उसका मेरे प्रेम के अलावा? और मैं भी यदि उसे पूरा-पूरा पाना चाहती थी तो इसमें गलत क्या था? उसके पास बहुत से बहाने हैं जीने के, पर मेरे पास क्या है? घर नहीं, किसी का स्नेह नहीं, कोई कारण नहीं, कुछ भी नहीं। मैं आसानी से मर भी नहीं सकी थी। जिन्दगी और मौत के बीच का वह झूला झेल पाना मेरे लिये मुश्किल हो गया था। यहीं, इसी शहर में मरने को कटिबद्ध होकर मैं मर नहीं सकी थी। बराबर उसका इन्तजार करती रही थी। जानती थी, वह मुझे प्यार करता है— कहीं गहरे, चाहे हल्का ही सही। ऐसे में कैसे मर सकती थी मैं, एक बार आई मौत को भी धकेल सकती थी। जब जानती होऊँ कि कहीं पीली धूप में एक पूरा वसंत का जंगल मेरे लिये गमक रहा है। मेरी उस दुविधा को उसने नहीं समझा। इस बार भी गई थी खुद को भरने, क्या मिला अंब के? निराशा, खीज, अंधेरा। उखड़ा के लिये जाते समय सब कुछ ठीक हो गया। एक साफ दिन। धूप। फिर स्नेह। लेकिन फिर क्या हुआ? क्या वह मेरे लिये कुछ खोने का खतरा नहीं उठा सकता? यदि कभी चुनाव की समस्या ही आ जाए? सच कहूँ तो आ ही गई थी। उसका रुकना कितना जरूरी था। क्या वह यह नहीं समझता था?

मैंने अपनी स्थिति के बारे में सोचा। लगा अब क्या होगा? मैं कुछ नहीं समझती। वह मुझे छोड़कर गया है। प्रतिज्ञाओं को तोड़कर उसे आना होगा। नहीं भी आ सकता है वह, यदि चाहेगा। यदि चाहे कि मैं जीवित नहीं बचूँ। कैसे जीवित हूँ, कभी-कभार इस पर अचरज होता है। आकर नौकरी का चक्कर बताकर ढोंग कर लेना उसको ही आता है। मैं वैसे ढोंग को देखना भी नहीं चाहती न उसका जबाब देने की आवश्यकता समझती! चाहकर भी डर के मारे अब शील को हल्के मूड में कुछ नहीं लिख सकती। हल्का मूड उस शील के लिये होता था जो मेरे प्रति आशंकित रहता था, मेरे लिए तड़पता था, भागा-भागा मुजफ्फरपुर चला आता था। अबके मैंने उस शील को खो दिया सचमुच? क्या उस शील को जीवित कर सकता है वह? मैं उस शील को ही प्यार कर सकती हूँ। मैं तो कह रही हूँ, वह निर्णायक है। अब मैं इस तनाव को और झेल नहीं सकती। बुरी तरह थक गई हूँ। कैसे स्वप्न बुने थे मैंने इस बार। उन सारे स्वप्नों को तोड़कर वह चला गया, मेरी आत्मा पर पैर रखता। क्या वह यह नहीं जानता और एक भी आँसू उसकी आँख में नहीं था। कैसे वह इतना कसाई हो गया? बधिक। पत्र मत लिखे; उससे कुछ नहीं होता। आह, कैसे मैंने उसे अपने आने की सूचना तुरन्त देने को कहा था। किसी तरह। मैं नहीं सुनना चाहती थी नौकरी, घर या किसी भी व्यस्तता की बात। मैं ठीक विक्षिप्त हो जाऊँगी। उसे तो आना था मेरे प्यार, मेरे लिए, मेरे जीवन के लिए।

एक विन्दु होता है जब लिखना बन्द कर देना चाहिए और उसके चित्र को आखिरी बार चूमकर तकिए में सिर छिपा लेना चाहिए—उसका नाम बुदबुदाते और स्मृति चित्रों को उकेरते। वह विन्दु आ पहुँचा है। रात के बारह बजे हैं। वह अभी सोया होगा—निश्चिन्त—पारिवारिकता के उष्ण माहौल में टाँगे फैलाये। इधर मेरा क्या हो रहा है, इसकी फ़िक्र ही क्या है उसे? हो ही क्यों। कम से कम रात के इस वक्त? दुपहर में कभी 'फुर्सत' जब अधिक हो और सोना नहीं हो—याद कर लेने की

चीज हूँ मैं और एक अर्द्ध-औपचारिक पत्र लिख देने की : प्रिय तनु, अच्छी हो, सिन्सियरली पढ़ो, तुम मुझे याद करती हो, वह मैं भी तुम्हें भूल नहीं पा रहा, अच्छा अब अगले पत्र में तुम्हारे उत्तर के बाद, हाँ— तुम्हारा — ।

शील, प्यार से भी अधिक प्यारा लड़का जो था, कभी नहीं बता पाया कि प्यार में ऐसा ही होता है ! मतलब कि कुछ नहीं होता। धुँआँ, तड़प, आग, भाप, पत्र, जलन और एक मूक चीख जिसे कोई नहीं सुनता ।

इन्द्रजित्—(उसे इन्द्रजित् कहना बड़ा अजीब लगता है—कम से कम मन की इस अशांत दशा में, लेकिन एक अनजाना-सा सुख मिल रहा है) उसके इस नाम को पहले अपना बना लूँ कई बार दुहराकर इन्द्रिजत् इन्द्रजित् इन्द्रजित्—हाँ, वही है यह । मैं वही थी न ! साटन के बस्ते को छाती से चिपका स्कूल से घर और घर से स्कूल जाती हुई बालिका ! मैं तनु क्यों हुई ! रात को कभी पलक यूँ ही खुल जायेगी तो पाऊँगी कि उसकी बाँह पर मेरा गाल है और उसके होंठों पर एक अबोध निद्रित हँसी जिस पर मैं खिंची हुई हूँ ।

अपनी डायरी में लिख लिया है मैंने कि यह मेरा अंतिम पत्र है । मेरी तरफ से यह आखिरी आवाज है उसे । अब उसे लिखने का सवाल नहीं आता । लिख भी सकती हूँ तब जब एक बार और मुजफ्फरपुर स्टेशन से उसे बिदा ले लूँगी । वादा रहा कि उसे छोड़ते ही आकर लिखने बैठ जाऊँगी । पर यह वाक्य पूरा कैसे हो गया, अधूरा ही रहने देने का मन था । प्रेम याचक बनाता है, पर मैं नहीं समझती थी तब कि दुनिया का कोई पुरुष उससे बड़ा याचक बना होगा—प्रेम में कभी । नारी—वह भी प्रेम में पड़ी नारी—अधिक करुण, स्निग्ध स्त्रियाँ और दयाशीला मानी जाती है । मैं इसमें से कुछ बन पाती हूँ, कुछ नहीं । हाँ, वैसे मुजफ्फरपुर की गर्म और आनन्द-तप्त वातावरण में पसरी हुई मैं उससे सम्बन्धित एक समाचार अवश्य

सुनूँगी निकट भविष्य में—वह समाचार कैसा भी हो सकता है, पर वह मुझे मुक्त करने वाला समाचार होगा विश्वास है।

हाईस्कूल के दिनों में मुझसे बड़ी उम्र की लड़कियाँ बातें करती थीं कि—हवाई चुम्बन कैसे फेंका जाता है। मीरा जो अब मिसेस मीरा प्रसाद है, इस फ़न में बहुत माहिर थी। हम कुछ लड़कियाँ चोरी-चोरी उसके करतब देखा करती थीं। नीलम ने मुझसे कहा था ऐसे हाथ उठाओ और ऐसे करो और मैंने विवशता में अपने दोनों हाथ जोड़ दिये थे। कामो ने मेरा कान पकड़ लिया था और फिर भी मैं हाथ जोड़े रह गयी थी। फिर नीलम ने कहा था—'जाने दो, बुद्धू है।' मुझे अपने पर नहीं, उनपर झेंप हुई थी। मगर उन दिनों बहुत कम बोलने की आदत थी मेरी। इसलिये बहुत बातें बगैर कहे रह जाती थीं।

लेकिन अभी तो शील नींद में होगा—होशोहवास खोता। मुझे अब कोई जरूरत नहीं कि उससे कहूँ, सुनो, मुझे इस भ्रम में रहने दो कि अभी तुम्हारे स्वप्न में मैं हूँ—अपने छाया-तन में तुम्हें दुलारती। अब आगे लिखना बहुत कठिन हो रहा है। कहाँ देख पायी थी मैं उसे अस्त-व्यस्त, मेरे लिये रतजगों का मारा : यदि नहीं तो यह भी कहाँ हुआ था कि यह शहर मुझे स्टेशन पर पाकर—इस पूरे शहर और इससे जुड़ी हर याद के लिये हाथ हिलाते देख सका।

लगातार एक-एक कर छः महीने बीत गये। मैं अपने गाँव चली आई। पिता जी को मेरे विवाह की चिन्ता थी। वे इधर-उधर देख रहे थे। लेकिन मेरी देह पर इतना बड़ा परिवर्तन नहीं आया था कि वे आवश्यकता से अधिक चिन्तित होते। मेरे मन से धीरे-धीरे शील का नाम मिट गया था। मैं अपने वातावरण में रमती चली गई थी। अब मैं मानसिक दृष्टि से काफी स्वस्थ लग रही थी कि अचानक एक दिन सुमि का लिफ़ाफ़ा मिला। लिफ़ाफ़ा काफी वजनदार लगा। एकाएक मैं सोच नहीं सकी कि इतने मोटे लिफाफे में सुमि मुझे क्या लिख सकती थी। खोलकर देखा तो सुमि का तो छोटा सा पुर्जा था जिस पर लिखा था, शील एक बार बड़ी

अस्थिर मनःस्थिति में मुझको खोजता हुआ वहाँ पहुँचा था—उसके घर। पर सुमि को जो कुछ मैं कहकर आयी थी—वह सुन लेने के बाद वह हताश हो गया था। सुमि के रोकने से दो दिनों तक ठहर गया था वह। एक दिन दुपहर में जब कहीं बाहर गया था शील, सुमि ने उसके उघड़े ब्रीफकेस को ठीक करने के ख्याल से जो खोला तो उजले चार पन्नों पर कुछ लिखा हुआ मिला। तिथिक्रम से लिखा गया था सब कुछ। वे उसकी मानसिक अभिव्यक्तियाँ थीं जो मेरी अनुपस्थिति में जनमी थी। सुमि ने उसको निकाल कर पढ़ा था और अपने पास रख लिया था। शील के आने पर उसने बताया था कि वह उन पन्नों को मुझे भेज देगी। शील ने उसपर कोई आपत्ति नहीं की थी। ये वही कागज थे। मेरे हाथ में सिर्फ कागज थे, शील की आकृति कहीं से नहीं थी। मैंने तत्काल पढ़ना शुरू कर दिया—

'५-१२ : सुबह :

कल का पूरा दिन कैसे गुजरा है, रात कैसे गुजरी है, यह तुम्हें नहीं बता सकता तनु। रात देर तक आँसू मेरी कनपटियाँ सहलाते रहे हैं। तनु, रात भर में ही मेरा कलुष धुल गया है। तनु, रात जो मैं रोया हूँ, वह न तुम्हारे लिये, न अपने लिये : निष्कारण।

जब मैं दिन के करीब ग्यारह बजे यहाँ पहुँचा कल, तो पता चला तुम मिरजापुर होती हुई गाँव चली गई हो। दो क्रूर, मेरा उपहास उड़ाते हाथों ने, मेरे अन्तर्मन को मरोड़ कर रख दिया। परसों शाम मेरी लिखित परीक्षा समाप्त हुई थी। रात देर तक यहाँ आने के ही क्रम में, व्यस्त रहा था। पटना होकर आया था। सुबह छः बजे स्टीमर पकड़ी थी। सारे रास्ते भीतर कोई गत बजती रही थी, धीरे-धीरे, धीरे धीरे तेज होती। रेलिंग पर टिका ठण्डी हवाओं को और-और छूने के लिये अपना माथा निकाले मैं भीतर अनजानी उष्मा और ऊर्जा में तिप रहा था, पहलेजा में एक्सप्रेस बस मिली थी। रास्ता लम्बा लग रहा था, लग रहा था सड़क कितनी लम्बी है जो मेरे-तुम्हारे बीच इस बुरी तरह से अड़ी हुई है। बस-स्टैण्ड

पर उतरकर, पत्रिकाओं की दूकान की ओर बढ़ते, अपने हाथ का दैनिक अखबार मैंने एक ओर फेंक दिया था। इस तरह अपनी पूरी शहराती दुनिया, अपने सभ्य सम्बन्ध, अपना तनु-विहीन वर्तमान अपने पीछे छोड़ दिया था।

और जब सुमि के यहाँ आया, रास्ते भर सोचते हुए कि आजकल हल्की आहट पर भी तुम चौंक उठती होवोगी, किवाड़ खोलनेवाली तुम ही होओगी - किताब का बहाना लेकर बैठीं—तो भीतर घुसने पर जान सका तुम अपने गाँव चली गई हो--एक हिकारत,--एक,--हाँ मिचलती घृणा मेरे भीतर उबकाई की तरह उठने लगी। तुम जानती थीं, मैं आऊँगा, मैं आ ही जाऊँगा, तुम्हारे लिये;—कि मैं कभी भी आ जाऊँगा—क्योंकि आये बिना मैं रह नहीं सकता। फिर भी—। इच्छा हुई, तुम्हारे घर पर थूककर चला जाऊँ। पर यह घर सुमि का था। क्या अहं का अर्थ इतना बड़ा होता है और झूठी प्रशंसाओं का मूल्य इतना अधिक—कि तुम मुझे और मेरे मस्तिष्क को जानती हुई भी गईं। मुझे लगा, तुमने चुनाव कर लिया, वह चुनाव, जिसकी बात तुम्हें पटने में उस पार्क में रात टहलते हुए मैंने कही थी। मैं तुम्हें कुछ दे नहीं सकता प्रतिदान में। न अर्थ, न प्रशंसा, न तुम्हारा मार्ग ही प्रशस्त कर सकता हूँ, इसलिये मैं अवश्य ही मूल्यहीन, व्यर्थ और—और कुछ भी—एक ठीकरे या पत्थर या दुनिया के किसी भी गैर आदमी की तरह हूँ, जो न तुम्हारे लिये आवश्यक है, न वांछनीय।

मैंने सुमि से कहा, मैं लोटूँगा। मैं दृढ़ था, मुझे लौटना ही है। सुमि मुझे रुकने को कहने लगी—कुछ करुण होकर। लेकिन मैं रुक नहीं सकता था। उस नफ़रत से मेरा कभी का परिचय नहीं था, जो मेरे भीतर किसी पहाड़ी नाले की तरह बहने लगी थी। सुमि शायद मेरे स्वागत की तैयारियों में व्यस्त हो रही थी। अपमान का जो तमाचा मेरे मुँह पर पड़ा था, उससे मैं सुन्न था। मैं क्या कर सकता था प्रतिकार में? मैं क्या कर सकता था? केवल यही न कि तुम्हारे पूरे परिवेश और तुम्हारे सम्बन्ध पर थूक

कर चला जाऊँ—चला जाऊँ और अपनी गलीज़ दुनिया से जाकर चिपट जाऊँ—पूरे ज़ोर से और खुद को गारत कर दूँ। उसी कमीने क्रोध में मैं तुम्हारे कमरे में आया था (सुमि के साथ नहीं तुम सोती थीं) और किताबें पलटने लगा था। किताबें,—और घृणा दुगुनी हो गई थी—पता नहीं क्यों,—! तभी तुम्हारी एक नोट-बुक उलट पड़ी थी। तुम्हारी ही थी नोट-बुक—छोड़कर चली गयी होगी; इसलिये केवल तुम्हारे अक्षर देखने के लिये उसे फिर से खोला था। आखिरी बार, एक कमज़ोर क्रोध में काँपते हुए :—

'पटना में थी तो मन पटना में नहीं था, यहाँ हूँ तो मन यहाँ नहीं है।···कौन समझेगा यह अकह दुख···।'

यह एक तमाचा था, जिसे मैं बर्दाश्त करने को कतई तैयार नहीं था। मैंने जल्दी से पन्ने उलटे-पलटे। मेरी कुछ पंक्तियाँ तुमने वहाँ लिखी थीं—

''तुम्हारे उदर तुम्हारे लिये जो हो मेरे लिये भविष्य भूमि है···''

और भी—वे पंक्तियाँ वहाँ थीं, जो खुद को मजबूत बनाने के लिये तुमने वहाँ लिखीं थीं ! 'सुनो, तुम इस पवित्रता को सुरक्षित·····'

तुमने अपने शील को रखा था वहाँ—शब्दों में, – मुझको,—मैं, जो तुम्हारा प्रकाश था, प्रिय था, तुम्हारा भविष्य था, मैं जो —

मैं कितना कमीना···(सुनो तनु, यह लिखते हुए मैं अचानक रोने लगा हूँ। बेतरह रो रहा हूँ। आँखें धुँधली हो गई हैं।···अभी-अभी गीतम चप्पलें चटखाता हुआ आया है और पीछे खड़ा हो गया है। मैं धीरे से आँखें पोंछ रहा हूँ)···।

—तभी सुमि आयी थी। मैं जल्दी से खुद को संभालता निकला था। जैसे उनके आग्रह की रक्षा के लिए कहा था, अच्छा शाम तक तो रुक ही सकता हूँ, जब तक सुविधाजनक गाड़ी नहीं मिलती, आगे की पीछे सोचूँगा। मैं जानता था, उस कमरे में, मकान में,—रहकर मैं प्रकृतिस्थ नहीं रह सकता था। मैंने सुमि से कहा, यहाँ कृपया कुछ भी नहीं मँगवायें मेरे लिये; चलिये बाहर चलकर चाय पीते हैं। उसके साथ निकलना

मुश्किल था। फिर राजीव आये। उनके साथ दीपक होटल आया। डरते हुए; कि कोई शहरी मित्र देख न ले। भीतर जो डाँवाडोल था, मैं जानता था, वह बाहर से राजीव की तरह का व्यक्ति तो नहीं समझ सकता था, पर वह कभी भी किसी विस्फोट में निकल सकता था। खैर लौटा! खुद को शमित करता। बार-बार अपने को ओछा कहता। पर शाम मुझे नहीं लौटना है, इसके लिये खुद को मैं बिल्कुल तैयार नहीं कर पा रहा था। एक रुकी हुई स्थिति में विभाजित हो जाना एक पीड़क अनुभव है। इसे तुम नहीं जानतीं शायद।—या शायद जानती भी होवो।

सुमि ने बताया, तुमने अपनी किसी दोस्त को बताया कि जीवन अब सलीके से जीना है। समयाभाव के कारण अब तुम गाँव से बाहर नहीं जा पाओगी। कुछ काम करोगी। फिर भी, वहाँ तुम्हें कोई व्यग्रता मुझे लेकर होगी,—यह मैं नहीं सोचना चाह रहा था।

दोपहर में तुम्हारा वह नोट-बुक फिर पढ़ा था। हाँ, उसका एक-एक शब्द। नहीं जानता, नैतिकता क्या कहती है! मेरा संस्कार और मेरा कौलीन्य क्या कहता है! यह मैं जानता हूँ, मैंने वह नोट-बुक पढ़ा। पूरा। दो बार। मैं जान सका कि छठ के दिन तुम उत्फुल्ल नहीं थीं क्योंकि मुझे छोड़कर आई थी या मैं छूट गया था कि—हाँ, डाकिये के इन्तजार में तुम खुद को घुलाती रहती थीं। मैंने बराबर अपनी ही वेदना को समझा था। ऐसा क्यों था, कि तुम्हारी अभिव्यक्तियों को मैंने क्रीड़ा से बहुत अधिक भिन्न नहीं समझा था। एक हिकारत मुझमें जगी--खुद अपने प्रति।

मैं कोई भी तरीका नहीं ढूँढ़ सकता था—खुद को दंड देने का। उस कमरे में मैं चकराता फिरा—यहाँ—वहाँ—किताबें पलटता—तुम्हारे हस्ताक्षर पढ़ता। हाँ, जब तुम्हारा नोट-बुक टेबल पर रख रहा था—तभी नजर पड़ी तुम्हारे गाउन पर। हाँ, वह तुम्हारा ही था। इसमें मैंने एकबार तुमको देखा था। नहीं, नजर नहीं पड़ी थी, त्वचा पर कुछ रेंगा था—उष्ण—अभी भी याददाश्त से ठीक-ठीक कह सकता हूँ। एक मसृण

गंध । अवश्य उसमें सुमि की गंध भी होगी, पर तुम्हारी गंध मैं जानता था । मैंने जल्दी से उस गाउन को सूंघा था—भीतर से-जहाँ गंध के जाले पड़े थे । और मैं देर तक विभोर सूँघता रहा था । वहाँ तुम थीं;—अपनी छोटी, स्नेह में भींगी आकृति के साथ—उदार—मेरे कपोलों को अपने स्पर्श से भिगोती—तुम-तुम । उस गाउन से लिपटकर मैं देर तक रोता रहा था । रोता रहा था, क्योंकि और कुछ मैं नहीं कर सकता था ! तुम्हारी देह गंध थी वहाँ —बाहु-मूलों के नीचे —तुम्हारे कोमल सूर्यातीत रोमों की गंध—ठीक-ठीक वही ।

रात में उसी बिस्तरे पर सोया था जिसपर बैठकर कभी तुमसे बतियाया था । अकेला । वह रजाई ओढी थी जिसे तुम पहले कई बार ओढ़ चुकी हो । उस चादर पर अपनी देह पसारी जो कभी तुम्हारे शरीर की उष्मा से तिप रही थी । तुम्हारे केशों की गंध - मसहरी की बन्द हवा में थी कि नहीं ? थी, शायद, थी । और मैं रोने लगा था । रजाई तब माथे तक खींची थी, तभी जाने कहाँ से और क्यों रुलाई फूट पड़ी । क्या कहूँ उसे ? वह क्या था ? रुदन नहीं था वह । आँसू थे ! केवल । कुछ गर्म उँगलियों की तरह मेरी कनपटियों को छूते—सहलाते । क्यों ? क्यों ? फिर मैं फफकने लगा । जाने कब तक सशब्द रोता रहा ।

फिर अचानक चौंका । घबड़ाकर उठा । दूसरे कमरे में सुमि और गीतम गहरी नीद में थे । खैर, राजीव भी नहीं थे वहाँ । लौटकर कमरे में आ तुम्हारी स्मृतियों से घिर गया । तुम्हारा धड़कता दम । मुझे शीतल करता । चुप कराता । पर कहाँ चुप हुआ मैं ? आँसू दुगने वेग से निकलने लगे । उस नोट-बुक को चुराकर मैं फिर मसहरी में ले आया और फिर रोने लगा । नहीं, कोई कारण नहीं था । कोई याद नहीं थी - तभी— तुम्हारी भी नहीं । न कहीं अतीत था न कोई भविष्य-भय । कुछ नहीं । कोई वर्तमान-बोध भी नहीं था । कुछ भी नहीं था—कुछ भी नहीं था । अँधेरा और शून्य । केवल आधी रात को कभी उठा था । जब अँधेरे में अपने पाँव से चप्पलें टटोल रहा था, अचानक लगा, मैं पवित्र हो गया हूँ ।

अचानक। उतना—जितना कभी नहीं था। भीतर-बाहर से पवित्र। उजला।

और सुबह और आज का दिन। हाँ, इन दो दिनों में मैंने तुम्हारे पिछले वर्षों के यात्रित पथों को देखा है। तुम्हारी जड़ों को कुरेद-कुरेद कर देखा है—देखा है और खुद को अपनी अनास्था के लिये कोसा है, लताड़ा है। गालियाँ दी हैं। तुम्हारे अतीत के सफे-सफे को पढ़ा है—हाँ; यह कह दूँ—चाहे अनाधिकार (पता नहीं यह शब्द यहाँ गलत है या सही); पढ़ा है और एक भयंकर आत्म-ग्लानि में भरता गया हूँ। चाहे मैं हर सतर पढ़ने के बाद रोता गया होऊँ, मेरी सुद्रता इतने से नहीं धुल सकती।

तुम कितनी भोली हो, कैसी आदिम पवित्रता है तुम में। अभी तक तुम किस तरह अक्षत-यौवना हो, यह जानकर—यह अच्छी तरह जानकर मैंने अपने को अनायास ही कहीं क्षुद्र हो गया महसूस किया है। यह जानकर कि तुम उन घटिया मनःस्थितियों से किसी विवशता के कारण समझौता करती हो, किसी आंतरिक मरोड़ या प्रशंसाकामिता या और किसी कारण से नहीं, तनु मैं बेतरह रोया हूँ। मुझे माफ कर सकोगी?

उन सारे सम्बन्धों की सच्चाई मैं इन दो दिनों में देख सका हूँ, जिन्हें मैं रंगीन काँच के पीछे से देखा करता था। क्या हर प्रेमी-मन अविश्वास-दूषित हो जाता है? मैं जहाँ पाँव रखकर, उचककर तुम्हारे अतीत में झाँक रहा था, वहीं-कहीं तुम्हारा हृदय था—नन्हा, धड़कता ममता से भरा, मेरे लिये उष्म। कहीं तुम्हें कुचला है मैंने। कभी। मैं खुद को माफ नहीं कर सकता। तुम चाहे कर दो।

तुमने कुछ छोटी-छोटी बातें मुझसे छुपाईं। छुपायीं। क्यों? उत्तर शायद तुम भी नहीं दे सको। लेकिन तुम भी नहीं जानतीं, यह तुम्हारा भोलापन ही था। बहुत सारी-सारी छोटी बातें। जो मेरे लिये, तब भी महत्वहीन थीं, अब भी हैं।

तुम यहीं आ रही हो। आज रात तो बिल्कुल नहीं। कल सुबह भी नहीं। लेकिन मैं रुँआसा हूँ। पूर्वतत्। अब मैं कभी-कभी हँसमुख नहीं

हो सकता। जैसे-जैसे तुम्हें जानता गया हूँ, तुममें धँसता गया हूँ। तुम नहीं जानतीं। इन दो दिनों में मैं तुम्हारे अतीत में भी समा गया हूँ। उसकी सारी नीली नसों में। रुधिर की तरह। और अब—तुम्हीं कहो, तुम्हारे अधूरे 'तुम' से मैं कैसे तुष्ट हो सकता हूँ? कैसे? मेरे जीवन? कैसे? लेकिन जहाँ तुम जुड़ी हो, नहीं, जहाँ तुम—जिस शाख पर पत्ती की तरह अविच्छिन्न खिली हो,—वहाँ से तुम्हें मैं तोड़ कैसे सकता हूँ—केवल अपने लिए? तुमने यह क्या किया? क्यों प्यार दिया मुझे? मेरी मुश्किल तुम नहीं समझ सकतीं। मैं अब जबकि तुमको त्वचा की तरह पहनना चाहता हूँ, अपने माँस और प्राण से अभिन्न,—तुम्हारी सप्ताह भर तक मुझे तृप्त रखने वाली देह और टुकड़ों में बँटे मन से कैसे संतुष्ट हो सकता हूँ? कोई बड़ी बात नहीं, जो अब मैं तुम्हारी देह में प्रवेश नहीं कर सकूँ। नहीं कर सकूँ, क्योंकि मैं विजड़ित और सुन्न और जीवनहीन हो रहा हूँ। मैं तुम्हें तोड़ नहीं सकता, न तुम्हें न तुम्हारे लोक को मुरझने दे सकता हूँ। वैसे यही मेरी अकेली परिणति है, मेरी निश्चित परिणति। मैं तुम्हारे साथ क्रीड़ा-भाव नहीं रख सका, यही गलती हुई,—ज़माने के कायदे के विरुद्ध। मैं इन दिनों जिस अवस्था में हूँ, जानता नहीं, वह किसकी अवस्था अधिक है,—जीवन या मृत्यु की? तुम्हीं कहो, अब क्या संभव है? क्या किया जा सकता है अब? यही अकेला प्रश्न है, यक्ष-प्रश्न, जिसका जबाब दिये बिना तुम अपना अनुराग मुझे अब और नहीं देना।

क्या हो गया मेरे साथ? पता नहीं, आज तक किसी पुरुष के साथ ऐसा कुछ हुआ था या नहीं? मैं तुम्हारे शरीर के रंध्र-रंध्र में उतर जाना चाहता हूँ, तुम्हारी आत्मा के रेशे-रेशे में, तुम्हारे अस्तित्व के हर विन्दु में, मैं तुम्हारे गर्भाशय में उतरकर रचा जाना चाहता हूँ, फिर से, तुम जैसा रचो उसे। मैं पता नहीं क्या करना चाहता हूँ, तनु, पता नहीं। लेकिन मैं जीवित रहना नहीं चाहता। मैं तुम्हारे अँधेरे लोक में उतर जाना चाहता हूँ। मृत्यु-मृत्यु मृत्यु।

७-१२ : सुबह के छ :

दो तारीखों में कितना अंतर होता है ? एक या दो, कम या अधिक, खुश या उदास का अंतर ही नहीं, अंतर जीवन और मौत का। नियति जो मेरी थी, देर-सवेर जिसका वरण करना ही था, आज बिल्कुल इनएविटेबल होकर सामने खड़ी है। सामने। बुलाती। धीरे-धीरे हँसती। मैं पिछले कई सालों से इसे धोखा देता रहा हूँ। जब से होश सँभाला है तब से। क्यों ? किसलिये ? खुद को अच्छी तरह जानता हुआ और अपनी परिणति को।

कहाँ है वह दूसरा लोक ? कहाँ पहुँच सका कभी मैं उसमें ? कब पहुँचा ? उस लोक ने तो मुझे बराबर छला ही है। एक बहुत झीना—विरल आभास मिलता था मुझे—उस लोक का,—अपनी कुछ रचनाओं में, जब मैं इस लोक का संक्रमण नहीं करता था, इसी लोक में रहता था—यहीं,—बस एक धुँधला असांसारिक आलोक, जिसे मैं सर्वथा अनैन्द्रिय ढंग से महसूस करता था—कभी-कभार। और तभी वह पुल टूट जाता था जिसपर मैं खड़ा होता था। वह कौन-सी चेतना होती थी, जिसे मैं अपने भीतर उगता महसूस करता था, और डूबते देखता था। याद है, कभी-कभार, वर्ष में एकाध बार ऐसा होता था। कहीं,—कभी,—किसी रचना के मध्य-क्रम में मैं भारहीन हो जाता था, गुरुत्वाकर्षण-मुक्त। लेकिन कुछ हो नहीं पाता था। पैरों के जमीन से उठते-न-उठते—फिर वही 'कुछ नहीं।' मैं जानता हूँ, इसे कोई समझ नहीं सकता। नहीं, इसे सशब्द महसूस करना भी हास्यास्पद है। पर ऐसा है। मेरी कुछ रचनाओं में वे संधियाँ हैं, जहाँ से वह रोशनी फूटती है; किसी दूसरे लोक की। किस लोक की ? कौन-सा लोक था वह, जिसने मेरे दोस्त अहबाब मुझसे छुड़वा दिये। मेरी माँ, मेरे पिता के सम्बंध, गाँव के रिश्ते : सब कुछ। मुझे एक विजन एकांत में धकेल दिया। मैं जानता हूँ, यह कोई आध्यात्मिक अनुभव नहीं, पर निरा भौतिक ही नहीं। कहीं कुछ है—कुछ है जो रहस्यमय है। भूत (matter) से जब चेतना का उन्मोचन होता है, तब ऐसा ही रहस्यमय कुछ पैदा होता है क्या ? एक बहुत परिचित-सा, जन्मों-पहले कभी

सुना-सा,—दूरागत संगीत। मरता या फिर धीरे-धीरे जीता, पता नहीं, क्या करता,—एक मद्दिम संगीत-क्रम। जो अचानक बीच में टूट जाता है, और आदमी अपनी तमाम मूर्खताओं के बीच छूट जाता है।

मैं जानता हूँ, यह मूर्खता मुझसे ही जुड़ी है। यह मूर्खता। नहीं तो और क्या है कि तुममें मैंने वही लोक देखा। हाँ उसकी एक अचानक कौंधी चमक। एकबार। जब तुम कविता सुना रही थी 'गेलैंड' में। अचानक देखी थी मैंने वह कौंध। बिल्कुल अचानक। और मैं बिजड़ित रह गया था। वैसे मैं यह जानता था, उसे कोई और नहीं देख रहा, नहीं देख पा सकता, पर एक अकारण निराशा, वायु के वाष्पाणुओं से आ ढरनेवाली निराशा, —मुझमें भर गई थी। एक निराशा—जिसने मेरे रोएँ खड़े कर दिये थे। इसे तुम नहीं जानतीं। कोई नहीं जानता। जान भी नहीं सकता। कविता सुनाते वक्त तुम्हारा चेहरा थोड़ा उठ गया था। साड़ी का पल्ला असावधान हो गया था और बाँहों पर टिक गया था। मैं सामने था। तभी देखी थी मैंने तुम्हारे वक्ष के ऊपर, तुम्हारी गर्दन के नीचे—वह दमक। तुम्हारी गेहुँई त्वचा पर अचानक वह अतीन्द्रिय दमक उभरी थी, बस एक पल को। वहाँ, और घुटनों को बाँधे तुम्हारे बाहु-मूलों के निचले हिस्सों में। साँप का जो हिस्सा धरती से लगा होता है, उसे देखा है कभी? सफेद, चिकना, छुओ तो रोमांच पैदा कर दे। धरती के सारे रहस्य होते हैं वहाँ। धरती की गन्ध। उसके ठण्डे अणु। कुछ वैसा ही पारलौकिक चमका था वहाँ।

वह एक पल था, जहाँ मैं खुद को नहीं सँभाल सका। मैं जानता था, कविता मेरे हाथों से छूटती जा रही थी। कभी मुझे वह तन्मयता नहीं मिलती थी कविता में कि एक बार मैं अपनी चमड़ी फाड़ सकूँ। फिर कविता की अपनी सीमाएँ। अघुलनशील शब्द। बहुत-कुछ था जो नहीं घुलता था, उस एक पल में भी। यही मेरी पीड़ा थी। एक अस्पष्ट वेदना। यह थी, मैंने तभी महसूस किया। तुम्हारे सामने बैठे हुए। वहाँ। तुम्हें अनुराग में देखते हुए। उस रात, रिक्शे पर जो मैं तुम्हारो

बाँह छू रहा था, कहीं अपनी उँगलियों से कविता को छोड़ रहा था,—छोड़ रहा था अपनी कमज़ोर, अशक्त कविता को। यह आज महसूस कर सकता हूँ। तुम्हारी बाँह पकड़कर मैं यह पूरा लोक छोड़ देना चाहता था, जो मुझे मिला था, हर किसी को मिलता है।

वह एक अतीन्द्रिय चमक। अब कहाँ गई वह ? फिर मुझे मेरे विजन एकांत में छोड़कर। वह कहीं नहीं थी वहाँ। वहाँ थी ही नहीं। जिसे उस दिन देखा था—पहली बार। या फिर एक बार और देखा था – तुम्हारे होठों पर—एक तृप्त कर देनेवाले सम्पर्क के बाद। तुम्हारे होठों पर चमचमाता हुआ उसी इतर-लोक का जीवन-रस। मैं उसे देखता रहा था, धुँधलके में, अभिभूत। पर जबतक तुम्हारे होठों को चूम सकूँ, देर हो गई थी। वहाँ इस धरती की गर्द पड़ चुकी थी। कोई बासी गीत या तुम्हारे उस मित्र के जुमला या कोई स्मृति। कुछ भी। मैंने अपने होंठ हटा लिये थे वहाँ से।

मैं जानता हूँ, यह मूर्खता है। रक्त में अनवरत बज रही मूर्खता। प्रलाप। मृत्यु-विमूढ़ित मस्तिष्क। शायद।

ठीक किया तुमने, कि सारी बातें साफ़ कर दीं। तुम जो हो, हो। तुमने कभी कहा था न, 'एक व्यक्ति'। मुझे क्या अधिकार था भला, तुममें मैं कुछ आरोपित करके देखूँ। अपने किसी सुख के लिये। तुम्हारा लोक है एक,—जिसकी तुम भोक्ता हो। तुम क्यों किसी का लोक बनो। क्यों वायवीय हो जाओ तुम—अपना माँस अपनी चमड़ी छोड़कर। मैं अब समझता हूँ। मैं अब समझता हूँ और स्वयं को कोस रहा हूँ। शायद यह भी व्यर्थ है। चीजों को ऐसे ही होना था। इसी क्रम में। एक मृत्युमुखी क्रम। मेरे लिये। तुम्हारे लिये एक स्वाद परिवर्त्तन। कोई भी विजातीय गंध नहीं रहेगी—मेरे अस्तित्व की,—तुम्हारे लोक में। रंजित, खन्ना, कान्तिकुसुम, देवेन्द्र कुमार, सुरजीत, अरविन्द, विक्रम और बहुत सारे लोग—सम्मेलन, बुलावे, सम्मान, पारिश्रमिक, स्नैप्स, प्रशंसाएँ, ख्याति—यही तुम्हारा लोक है; जिसमें मैं त्रिशंकु की तरह घुसना चाहता था। पर

मेरी परिणति त्रिशंकु-परिणति नहीं। मैं लौट रहा हूँ। लौट रहा हूँ, अपने अस्तित्व के छोर की ओर। अगला जन्म होता है? नहीं जानता। क्या, यह यात्रा जो अब तक मैंने की है, संस्कार-रूप में मेरे साथ रहेगी? व्यर्थ, व्यर्थ, व्यर्थ। किसी और के जुमले में तुम कहोगी: प्रसंगहीन ऋतु-संवाद। ऋतु संवाद किसके लिये? मैं छला गया, तो अपनी किन्हीं अपेक्षाओं के कारण। तुमने शायद कुछ नहीं किया। तुम इस धरती की अब भी सबसे प्यारी रचना हो मेरे लिये। हाँ, अब भी। अब यदि तुम मेरे लिये, मेरा वह अनगया लोक नहीं बन सकीं, अपनी हड्डियों को नहीं तोड़ सकीं, तो इसमें तुम्हारा दोष ही क्या? क्यों कोई, किसी के लिये माध्यम-मात्र बनकर रह जाये। क्यों? मैं समझता हूँ इसे, और निश्शब्द जा रहा हूँ। वहाँ जहाँ मुझे बहुत पहले चला जाना था। बहुत पहले।

कभी कोई असुविधा तो नहीं हुई मेरे चलते?

भूल जाना (मुझे भी)

भूल जाना किसी दुःस्वप्न की तरह।

विदा।' पंक्ति-पंक्ति को मैंने पढ़ तो लिया था, पर अपनी प्रतिक्रियायें नहीं जान सकी थी। जान भी नहीं पाऊँगी।

नौ

यश ओवर-ब्रिज की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए आश्वस्त दीखने लगा। रेल-गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर खड़ी थी और डाकवाले डब्बे से डाक के थैले चढ़ाये-उतारे जा रहे थे। यह गाड़ी मुजफ्फरपुर तो आती ही थी, उससे आगे भी जाती थी। इस बार आखिरी ही सही, मुलाकात हो जाएगी

सुमि से और यश मन में कोई मलाल लेकर नहीं लौटेगा। सुमि जब उसके साथ नहीं रह सकती—अपनी किसी विवशता के कारण तो वह उसके पीछे यों कब तक पड़ा रहेगा। वह इन्तजार करेगा—खामोश—उसकी किसी अगली सुविधा तक। सुमि अपना जीवन आबाद करना चाहती है, पर अपने पति की जिन्दगी उजाड़कर नहीं! उसका क्या उपाय होगा? और राजीव इतना दकियानूस है कि जल्द वह अपनी मर्जी नहीं बतायेंगे! फिर उसके लिये रास्ता क्या है? यही न, कि सब कुछ महसूसते हुए विरत रहे। यश को पूरा विश्वास है कि सुमि जानबूझकर उसकी अवहेलना नहीं कर रही। उसने तो कहा था – 'गीतम को थोड़ा और बड़ा होने दो। उसे किसी पब्लिक स्कूल में रख दूँगी। असली जिम्मेदारी तो वही है।' यश ने उसको भी मान लिया था। पर क्या तब राजीव नहीं रहेंगे और उनसे इतनी आसानी से मुक्त हो सकेगी सुमि? वह खूब जानता है राजीव की अभिजात मुद्राओं को और उनसे उपजी बेचैनियों को।

सुमि तलाक की बात भी नहीं करना चाहती क्योंकि कचहरियों के घपले, उसे पसंद नहीं। वह नहीं समझती कि पति से इस तरह विदेह हो जाने के बाद भी किसी तलाक की आवश्यकता होती है? सम्बन्ध की कौन सी ऋजुता अब उन दोनों में शेष है? अतीत रास्ते पर फेंक दिए गए केंचुए से अधिक अब उनके लिये महत्त्व नहीं रखता। घर की जिन दीवारों को वे अपना कहते थे, उनकी पीठ पर ही गहरा गई हैं। एक दूसरे को गैर-वाजिब ढंग से सहने के अलावे वे कुछ और नहीं कर पाते। अब तो कोई भी सवाल सुगंध की तरह नहीं महकता उनके बीच। गीतम की जिम्मेदारी भी शत-प्रतिशत सुमि की है। राजीव की आँखों में अब उसके लिए भी कोई अनुराग शेष नहीं रहा। सुमि और राजीव के बीच वह महीन तार भी बाकी नहीं जो कभी उन दोनों के बीच किसी सम्बन्ध की अनुगूँज पैदा कर सके। इसको ठीक से जान रहा है यश—पर सुमि को वह गिरवी नहीं रखना चाहता राजीव के घर। वह पूरा-पूरा उसको पाना चाहता है। यश को लग रहा है कि सुमि किसी कर्णफूल की तरह राजीव के घर रेहन पर

लग गई है जिसको राजीव पहन नहीं सकता, उसका कोई उपयोग भी नहीं कर सकता, पर जब तक वह छुड़ा नहीं ले, तब तक वह उसी तरह उसके घर पड़ी रहेगी। और यह उसके लिये अत्यन्त त्रासद है।

यश ने तो कहा था कि वे दोनों साथ रहने लग जायेंगे तो सारी बला स्वतः समाप्त हो जाएगी। माँ को भी संतोष हो जाएगा। खैर, माँ का तो वैसे भी बड़ा सवाल नहीं था। उनको यश समझ ही लेता। पर वह कौन-सी अभेद्य दीवार है जिसको सुमि तोड़ नहीं सकती। किस सुख के लिये पड़ी है वह। कहाँ गई उसकी 'म्यूचुअल अन्डर-स्टैण्डिग' की नीति। यश ने तो उसको भी मान लिया था। क्या-क्या नहीं मान लिया यश ने? मगर सुमि? ओह, वह एक औसत भारतीय लड़की से अधिक नहीं हो सकती, कायर, कमजोर और दब्बू। उसके पैर डगमगाते क्यों हैं? जब थामनेवाला यश उसके सामने खड़ा है—आँखों में बेशुमार इन्तजार लपेटे!

इसीलिये तो जा रहा है यश कि उसको चलने के लिये कहने पर सुमि भौंचक होती है, खुश होती या सहम जाती है? क्या निकलता है उसकी आँखों से? आश्वासन, प्यार, घृणा या अस्वीकृति। एक हाँ या ना पर यश का जीवन अटका हुआ है।

स्टेशन पास आ गया शायद। इंजन ने सीटी दी। फिर धक्का खाकर सामने की बोगी आगे सरकी और गाड़ी रुक गयी। जल्दी-जल्दी चलकर वह प्लेटफार्म पर आया। वह सोच रहा था, धकियाती भीड़ में से कोई उसे रूमाल दिखाये और रोके, पर रिक्शों, टैक्सियों में भरकर लोग भागने लगे। पैदल चलने वालों की एक अलग भीड़ हो गई। सीने के बायीं ओर कुछ दुखने लगा। कनपटियों में जैसे खून तेजी से दौड़ रहा था और शिराएँ फूल रही थीं। लगा कि सर फट जाएगा—इतनी उपेक्षा! इतनी लापरवाही? आखिर सुमि स्टेशन नहीं आ सकी थी? जब वह स्टेशन नहीं आ सकती तो उसके साथ जाने का साहस कैसे कर सकती है? गँवार लड़की! मेरी स्थिति का कोई एहसास उसको नहीं।

रास्ते में थोड़ी वर्षा हुई है और कुछ भींग भी गया है यश, लेकिन उससे कोई खास परेशान नहीं है वह। सुमि के द्वार पर रिक्शा रुकते ही अजीब सन्नाटा-सा दीखा है। यश समझ नहीं सका, आखिर ऐसा क्यों है? नौकर-चाकर कहीं कुछ नहीं! दस्तक देने पर एक छोटी सी लड़की घर से निकली है—

—'आप किसको खोजते हैं?'

—'सुमि जी हैं, उनको खोजता हूँ।'

—'बैठक में चलिये'

और फिर गेहुँई गदबदी देह की जगह एक पीली कृश प्रतिमा सामने खड़ी हो जाती है। एक क्षण को यश पहचान नहीं पाता। दूसरे ही क्षण वह देखने लगता है अपने सामने किसी कविता की मौत! ऊपर से नीचे तक काँप जाता है यश और मुँह से सिर्फ 'तुम' निकल पाता है! बड़ी-बड़ी आम की फाँक जैसी आँखों पर बिहार की धूप! क्या यह का यदि मुहावरा काफ़ी दिन चलने वाला नहीं था! देह तपकर कुन्दन कहाँ हुई थी! वह तो गलकर मिट्टी हो गई थी। पर यश उसे कुन्दन ही कहना चाहता था। सुमि की इस संपूर्ण कृशता पर वह अपने को ही खिंचा पाता है। कि अचानक कहती है सुमि :

'चार बज रहे हैं, तुम्हें अधिक देर यहाँ नहीं ठहराऊँगी। उनके आने पर जो दृश्य होगा उसको तुम झेल नहीं सकोगे। तुम किसी होटल में ठहर जाओ। मैं ही आऊँगी वहाँ।'

यश अत्यन्त उत्तेजित होकर जबाब देता है—'इस बार किसी होटल में ठहरने से अधिक अच्छा मैं लौट जाना चाहूँगा। तुम मुझको अब तक कमजोर करती रही हो सुमि अब भी यही करोगी? तुम्हारे यहाँ कोई मेहमान नहीं ठहरता? किसको-किसको तुम होटल में ठहराती हो? किसी वैसे अदना मेहमान की तरह ही सही, मुझे यहीं ठहरालो। मैं राजीव से भी कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूँ। वे बहुत जरूरी हैं मेरे लिये।

'नहीं यश, नहीं, तुम यहाँ कुछ भी बातें नहीं कर सकते। तुम्हें मेरी कसम, सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दो। मैं सब ठीक कर लूँगी।'

'तुमने यही ठीक किया है सुमि, पीपल के पात की तरह जो पीली पड़ गई हो।'

कुछ भी नहीं हुई हूँ मैं। यश तुम जाओ। मेरी यह एक बात मान ला। जीवनभर तो तुम्हारी ही मानती रहूँगी।'

'तुम्हारा यह भय मेरी समझ के बाहर है। तुम कुछ कह नहीं सकती!'

'तुम अगर उनके सामने आये होते तो मैं अधिक बोल्ड हो जाती, पर पीछे आये हो, मैं इसी से तुम्हें जाने कह रही हूँ। हमें कोई षड्यंत्र तो करना नहीं है।'

सुमि नहीं चाहती थी कि यश राजीव का थोड़ा भी अपमान करे। इस भावना में न जाने उसकी कौन सी धार्मिकता काम कर रही थी। पर ऐसा वह चाहती थी। खुद उसने राजीव को जो भी कहा हो, यश के कुछ भी कहने का उसने हमेशा एभॉय्ड किया है।

शाम के साढ़े चार हुए हैं अभी। सुमि को छोड़ने के बाद वह होटल के एक कमरे में आया है। किसी तरह नहाया है और बिस्तर पर गिर गया है। वैसे बिस्तर पर गिरने के पहले थोड़ा इन्तजार करना पड़ा था—नहाते ही, सुमि को बालकनी से आते देखने, पर पता चल गया कि अभी उसके आने पर काफी देर हो सकती है। खा नहीं सका वह। अभी भूख में—पेट दाबे हुए है। शायद अभी बाहर निकलकर कुछ ले।

यश ने एक नीला कागज उठाया है और लिखने लगा है। अक्सर अपने एकांत में वह यही करता है। पता नहीं क्यों यह खत लिख रहा है? अब खत लिखने ही चाहिए उसे? क्यों? कोई उत्तर नहीं मिलता। डर के मारे वह यह प्रश्न फिर से नहीं दुहराता।

सुमि ने बाहर गेट तक छोड़ दिया था उसको और चली गई थी अन्दर—और अपने अँधेरे उदास कमरे में कैद हो गयी थी। वह चली तो

गई। चली गई वह और यश ने उसको जाते वक्त देखा तक नहीं। उसने सुमि को देखा तक नहीं और उस वक्त उसके भीतर कोई चीख-चीख कर केवल यही कह रहा था : अभी सुमि की आँखें देखो, उसकी आँखें, उसकी आँखें। पता नहीं उसकी आँखों में से क्या-क्या चुरा लेना चाहता था वह। पर उसने माथा नहीं उठाया। भीतर वह कुछ भी करे, किसी का गला भी दबा दे, बाहर कोई गुंगुवाहट नहीं सुनाई पड़ती। वह जानता है। सुमि ने भी कुछ नहीं सुना था न! दरअसल वह सुमि को किसी भी ऑकवर्ड पोजीशन में नहीं डालना चाहता था : उसके पति के सामने, घर के सामने : क्योंकि वह सुरक्षा के लिए सयत्न थी—थी—यह उसने जाते ही देखना शुरू कर दिया था। इसलिये उसने बैठने नहीं दिया था पास, अचानक खड़ी हो आई थी। वह कुछ कर नहीं सकता था, सिवा इसके कि रोए। और उससे क्या होता है? क्या होता है जो वह माथा पटककर मर ही जाए, हुआ ही क्या है?

सुमि देख ही रही है, वह कितना बचकाना है : यहाँ से वहाँ तक बचकानी हरकतें। उसके सम्मान के क्षरण का भय है। अब वही न, उस दिन नहीं-नहीं करने पर भी उसने सुमि को चूम लिया। वह मूर्ख। वह ठीक ही कहती है यश से। इसीलिए टेबुल पर बैठी हुई, दरवाजे से निकलती हुई पैर बचाती रही।

क्या करे यश? जितना कर सकता था, किया। वह यही है? यही भर है—उसे प्यार करता—केवल प्यार करता एक आदमी। और प्यार से क्या होता है आज कल? केवल प्यार से? जितने भर का यह है, उतना सुमि देती ही है—'उदारतापूर्वक', अपने घर, पढ़ाई, काव्यलोक और नींद से समय निकालकर। सुमि ठीक कहती है, उसे इतने में ही तुष्ट क्यों नहीं होना चाहिए? लेकिन यश नहीं हो सकता। वह समझ नहीं पाता कि खुद के साथ क्या करे। सुमि जो कभी-कभी कोमल हो जाती है, क्यों नहीं इतनी निर्मम हो जाती कि वह मर सके। जीवन

की हर सम्भव टटोल उसने कर ली। वह कहीं नहीं है उसके लिए। उसके लिए जो है, उसे ही किसी तरह उसको पा लेने दे।

पिछले दिनों में क्या किया सुमि ने उसके साथ? उसके लिए उसकी नींद और घर अधिक कीमती है और राजीव का मान। उसने इसमें व्यतिक्रम डालने की कई बार असफल और मूढ़ कोशिश की। सपने पाल रखे कि उसके साथ लखनऊ में दिन बिताएगा, खुद को भरेगा। उसको कसते और कसते और···यह सब बचकानापन नहीं तो और क्या है? इतने दिन सुमि साथ रही, खाती-पीती, अपने बिस्तर पर सोती—क्या उसके लिये यही कम है?

अब कुछ नहीं कर सकता यश। शायद वह वैसा पुरुष नहीं हो सका, शायद नहीं हो सकता – जैसा कि सुमि चाहती है! बहुत ऊब चुकी होगी सुमि। यश के मन में अकारण सन्देह उग आया है। कहाँ उसने उसे अपने घर-संसार से उकताकर अपना सान्निध्य दिया था, स्वाद-परिवर्तन के लिए। कहाँ वह उसके मस्तिष्क पर एक बोझ बन गया। वह शर्मिन्दा है। लेकिन मुश्किल है कि उसके प्रसंग में वह यहीं भर रह सकता है। सुमि अपने से काट दे उसको। तभी सुखी रह सकेगी। उसके मर जाने के बाद भी कोई कोलाहल नहीं होगा। किसी का कुछ नहीं घटेगा। यही अकेला रास्ता। उसके लिये, शायद सुमि के लिए भी।

यश जो कुछ कहना चाहता है, जानता है, शब्दों में नहीं कहा जा सकता। आँसुओं में ही वह पूरा-पूरा कहाँ-कहाँ जा सका! सुमि ने तब भी कहाँ समझा उसे? कभी। ठीक भी है। वह उसका बचकानापन है, कमजोरी है, भावुक मूर्खता है, अपौरुषेयता है—।

लेकिन इतने सबके बाद भी एक अकेला सच—कि वह उसके बिना रह नहीं सकता मर भी नहीं सकता। यदि वह पूरा कारण नहीं दे दे कहाँ मर सका तबकी बार। कहाँ मर सका आज होटल के रास्ते प लगातार चलते और खुद को थकाते। नहीं मर सका। मार भी क सका राजीव को। लेकिन सुमि को यही भय था कि कहीं वह ऐसी हरक

की हर सम्भव टटोल उसने कर ली। वह कहीं नहीं है उसके लिए। उसके लिए जो है, उसे ही किसी तरह उसको पा लेने दे।

पिछले दिनों में क्या किया सुमि ने उसके साथ? उसके लिए उसकी नींद और घर अधिक कीमती है और राजीव का मान। उसने इसमें व्यतिक्रम डालने की कई बार असफल और मूढ़ कोशिश की। सपने पाल रखे कि उसके साथ लखनऊ में दिन बिताएगा, खुद को भरेगा। उसको कसते और कसते और···यह सब बचकानापन नहीं तो और क्या है? इतने दिन सुमि साथ रही, खाती-पीती, अपने बिस्तर पर सोती—क्या उसके लिये यही कम है?

अब कुछ नहीं कर सकता यश। शायद वह वैसा पुरुष नहीं हो सका, शायद नहीं हो सकता - जैसा कि सुमि चाहती है! बहुत ऊब चुकी होगी सुमि। यश के मन में अकारण सन्देह उग आया है। कहाँ उसने उसे अपने घर-संसार से उकताकर अपना सान्निध्य दिया था, स्वाद-परिवर्तन के लिए। कहाँ वह उसके मस्तिष्क पर एक बोझ बन गया। वह शर्मिन्दा है। लेकिन मुश्किल है कि उसके प्रसंग में वह यहीं भर रह सकता है। सुमि अपने से काट दे उसको। तभी सुखी रह सकेगी। उसके मर जाने के बाद भी कोई कोलाहल नहीं होगा। किसी का कुछ नहीं घटेगा। यही अकेला रास्ता। उसके लिये, शायद सुमि के लिए भी।

यश जो कुछ कहना चाहता है, जानता है, शब्दों में नहीं कहा जा सकता। आँसुओं में ही वह पूरा-पूरा कहाँ-कहाँ जा सका! सुमि ने तब भी कहाँ समझा उसे? कभी। ठीक भी है। वह उसका बचकानापन है, कमजोरी है, भावुक मूर्खता है, अपौरुषेयता है—।

लेकिन इतने सबके बाद भी एक अकेला सच—कि वह उसके बिना रह नहीं सकता मर भी नहीं सकता। यदि वह पूरा कारण नहीं दे दे कहाँ मर सका तबकी बार। कहाँ मर सका आज होटल के रास्ते प लगातार चलते और खुद को थकाते। नहीं मर सका। मार भी क सका राजीव को। लेकिन सुमि को यही भय था कि कहीं वह ऐसी हरक

नहीं कर बैठे। केवल इसीलिये उसने खुद को पूरी तरह थकाया। कमजोर—बहुत कमजोर—हो जाना चाहता था। अपने खत को रोक देना चाहता था। वही किया। शायद कोई बड़ा बचकानापन घटते-घटते रुक गया। पर जो हुआ, जितना हुआ वही क्या कम है?

लेकिन यश चाहता क्या है? यह सब सोचकर। रोकर। तड़पता रहकर। नहीं मर पाकर। वह नपुंसक। वह कुछ नहीं कर सकता। छिः।

अब नहीं पढ़ेगा वह। परीक्षा को छोड़कर कहीं भी भाग जाना चाहता है। सरो सामान के साथ। अभी यही सोचा है। नहीं तो घर ही। ताकि पैसे लेकर कहीं के लिए निकल सके। लखनऊ में किसी तरह नहीं रह सकता। वैसे नहीं जानता, कहीं भी रह सकेगा या नहीं। फिर भी एक बार कोशिश करके देखना चाहिए। कुछ महीने भी जी पाता है या नहीं। परीक्षा छोड़ ही देगा। अब कुछ नहीं हो सकता। इस मानसिक स्थिति में कतई नहीं पढ़ सकता। यदि सुमि रहे उसके साथ—तो कुछ हो सकता है। अकेली वही शर्त्त। वह फिर से मजबूत हो जाएगा। कुछ कर सकेगा। नहीं तो उसकी राह देखने के बाद चला जाएगा—लखनऊ छोड़कर—कहीं भी। यह निश्चित है अब। और यह भी कि वहाँ—सुमि के यहाँ नहीं जाएगा उसको आना होगा। वहाँ पागल हो जाएगा वह अबके। उसे आना है यदि यश को जीवित पाना चाहती है। सुमि को ही आना है। वह शून्य में बैठा है—बिना खाये-पिये। सुमि के लिए।

शायद है कि उसे सुमि अब धीरे से छोड़ देना चाहती है। तब तो ठीक! वह अपनी अनिवार्य नियति चुन लेगा। नहीं तो वह साथ रहे किसी तरह। वह जानता है उसकी दिक्कतें। पर क्या उसके लिए खतरा नहीं उठाएगी। उठाए। जाना है उसे। वह उसी के लिए जीवित है।

अब तक सुमि मिलने नहीं गई है। अकेले अब पूरी तरह उकता गया है यश। अब वह और नहीं ठहरना चाहता यहाँ। दिन के ग्यारह

हो रहे हैं। क्या करे, कुछ भी समझ में नहीं आता। सचमुच कुछ समझ नहीं पाता। अभी दो घंटे पहले एक खत लिख चुका है। फिर लिख रहा है। हालाँकि खतों से कुछ नहीं होता। लिखते वक्त भी कुछ नहीं होता। पहले होता था। सुमि को लिखते वक्त उसकी देह-गंध कुछ इस तरह मन-प्राण में भर जाती थी, जैसे वह अनजाने ही, औचक ही वसंत के आम-बगीचे में चली गयी हो। मंजरियों की धूल नथुनों और त्वचा पर धीरे-धीरे गिरती रहती थी। पर अब ऐसा कुछ नहीं होता। वह धुँधलका जो उसके आगे छाया हुआ है, नहीं हटता। कोई रोशनी की बाँह नहीं होती। वह किन उँगलियों को पकड़े?

कितनी बार कहा यश ने—'छोड़ दो वह सब कुछ जो तुम पकड़े हुई हो, अपने हाथों से छोड़ दो, मैं तुम्हारी पतली, छोटी उँगलियाँ पकड़ना चाहता हूँ। अपने लिए। अपनी उँगलियाँ मुझे दो सुमि, केवल मुझे। कुछ भी कर सकता हूँ मैं इनके लिये, इन्हें केवल अपने लिए सुरक्षित रखने के लिए पूरे विश्व से अकेला लड़ सकता हूँ।'

यश को अभी भी यह बात प्रताड़ित कर रही है कि वह उसे छोड़ कर कैसे भीतर चली गई? कैसे जा सकी? क्यों साथ रहने के दौरान भी उससे बचती रही? ऐसा क्यों हुआ? उस बार भी उसने पूछा था—

'मेरे प्रेम पर तुम्हें जरा भी गौरव नहीं? खीज है?'

सुमि ने कोई जबाब नहीं दिया था। सिर्फ आँखें उठाकर देखती रही थी। वह संतुलित नहीं रह सकता, संयत नहीं रह पाता, यह तो उसके लिए अभिमान का कारण होना चाहिए।

तबके जो मेरे सामने मिला था वह तो कह गया था—

'यह भी सुनलो, मैं दूसरे ढंग से, शरीफ़ाना ढंग से, दुनियाबी ढंग से—तुमसे प्यार नहीं कर सकता। मैंने कोशिश की। एक स्वस्थ, लौकिक व्यक्ति—प्रेमी दिखने की। पर यह मेरी प्रकृति के लिए सम्भव नहीं। अब यही हूँ मैं—एक बहुत लम्बी चीख की तरह उठा हुआ,

चाहो तो इसे अपने वक्ष में सहेज लो, या फिर शून्य में छोड़ दो निरुद्देश्य भटकने—मरने के लिये। कुछ भी करो, पर जल्दी करो।'

सुमि ने यश के भीतर मरोड़ को देख लिया था और काफी पीड़ित हुई थी। अपना सारा आभिजात्य उसने नोंचकर फेंक देना चाहा था। मेघ बरसने लगा था उस समय और यश डबडबा आया था—

'माफ-सी बात है। तुम तो मेरे बिना रह भी सकती हो, पर मैं तुम्हारे बिना रह नहीं, जी नहीं सकता। मेरा कोई लोक नहीं; तुम्हारे अलावा।'

और जब यश को लगने लगा कि उसका यह लोक उससे दूर होता जा रहा है, किन्हीं और नक्षत्रों की ओर खिचता हुआ, तो उसका पागलपन अनिवार्य हो उठता है।

सुमि ने भी अपनी ओर से पूरी कोशिश की है और कहा है कि वह उसके प्यार की ऐकान्तिक सच्चाई और गहराई को समझती है। यश देख भी रहा है कि उसके हर कोण पर वही है। सुमि को भी एहसास है कि उसने यश को इतना चाहा है जितना इस विश्व में आज तक किसी ने किसी को नहीं चाहा होगा। उसका अस्तित्व अब उसका नहीं है। वायु के अणुओं की तरह वह यश के चारों ओर लिपट गई है। पर यश का यह प्रश्न हथौड़े की तरह चल रहा है—

'क्या तुम अपने को अस्तित्वहीन नहीं बना सकतीं? क्या तुम मेरे शून्य में नहीं मिल सकतीं? पूरी। अपनी चमड़ियों को खोलकर।

कितना दंश दिया है सुमि ने उसको इन दिनों में। देख ही रही है। यश को उसके अलावा किसी चीज की परवा नहीं। घर, परीक्षा या कविता तक की भी। बिल्कुल नहीं। यह तय है अब सुमि के घर नहीं जा सकता वह। चाहे सुमि आए या न आए। आह, यदि वह आती तो उसे बेबी कहकर पुकार लेता वह। उसके ऊपर यह मृत्यु की जो पर्त छाती जा रही है, सुमि जाती तो उसे एक हल्की मुस्कान के साथ उतारकर फेंक देती। उसके भीतर जो पूर्ण है, वह उसकी उँगलियों

की कुरेदन की प्रतीक्षा कर रहा है। आना अब सुमि को है। और कुछ नहीं लिखना। यदि नहीं आएगी तो फिर कुछ नहीं हो सकेगा। किसी के भी किये। परीक्षा ही नहीं—अब तो जीवन भी महत्त्वपूर्ण नहीं लगता। सुमि ने उस रक्तपात का अनुभव किया है जो यश के भीतर अजस्र चल रहा है। और हद यह कि यह उसकी उँगलियों की खरोंच है। उसकी उन उँगलियों की जिन्हें वह चूमता और चुभलाता ही नहीं, पूजता भी है जिनके लिए वह किसी भी दृश्य-अदृश्य शक्ति से टकरा सकता है। सुमि को अफ़सोस है। वह कुछ बोलती नहीं। सुमि को पछतावा है। यश के भीतर बसंत को उसी ने जगाया है। उसे इस तरह वह नहीं समेट सकती। उसके भीतर से यदि वह खुद को समेटती है तो यह तय है कि वह उसकी सांसों के खोलने के बराबर है।

अभी यश बराबर यह सोचकर उद्विग्न होता रहा कि कहाँ क्या अघट हुआ कि सुमि एक-ब-एक किसी निष्करुण अपरिचय की ओर लौटने लगी। वह क्यों नहीं आती? संभव हो तो सब कुछ छोड़कर, उसका भविष्य मुरझने के पहले।

कितनी कमजोर हो गई है सुमि? उसने किसी चिकित्सक से परामर्श किया या नहीं! क्या कहा उसके लेडी डॉक्टर ने? यश की चिन्ता को समझे वह! 'उस' पर उससे अधिक उसका अनुराग है। उसके प्रति पूरा-पूरा सचेत-सावधान क्यों नहीं रहती सुमि! यश 'उसे' देखने के लिए व्याकुल है। उस बार रूमाल और सेंट बचा गई थी वह। यश उलझन में पड़ गया था। क्या उसके इस उन्माद को सुमि अति-रंजना समझती है। उसने कहा था—

'अब जब मैं मर जाऊँगा, तभी तुम्हें विश्वास होगा, और पछतावा भी।'

राजीव ने कहा कि पूरा निर्णय हो जाने के बाद ही सुमि उस घर से बाहर पैर रख सकती है, नहीं तो उसके पैर काट दिए जायेंगे। नहीं कुछ मतलब होते हुए भी वह उस घर की मर्यादा है। श्राद्ध में

ब्राह्मणों को खिलाने, दान-दक्षिणा देने से क्या होता है ? फिर भी लोग श्राद्ध करते हैं, दान-दक्षिणा देते हैं। सुमि का उस घर में रहने से कुछ नहीं होगा, पर वह वहीं रहेगी—अपनी सीअन उधेड़ती। पता नहीं, कौन सा मृत्युमुखी भय उसके चारों ओर घिर गया है। यश नहीं देखे उसकी यह दशा—यही ठीक। सुने भी नहीं। लौट जाए वह वैसे ही लौट जाए। राजीव आज दफ्तर भी नहीं गया। वह तब तक दफ्तर नहीं जाएगा जब तक सुमि के चेहरे पर पढ़ नहीं लेगा कि यश चला गया। क्या थे वह ? एक क्षण भी नहीं रह सकने की स्थिति में वह रह रही है। उसके भीतर की वेदना को कौन समझेगा ? अब कुछ नहीं कर सकती वह। अपने निर्वायु एकांत में मर नहीं पाती हुई बैठी हुई है। लोग आते हैं और हाथ बढ़ाते हैं, हाँ उसके चारों तरफ़ एक नहीं दिखती काँच की दीवार होती है। ठण्डी उँगलियों को तोड़ती। आज शाम कुछ लड़कियाँ आयी थीं—बगल की—शिकायत भरी—कि मैं कहाँ अदृश्य हो गई थी। सुमि उनसे बात तक नहीं कर सकी। खिन्न वे चली गयीं। पीड़ा ने खुद उसको उससे काट दिया है, दोस्त अहबाबों और दुनिया की तो बात ही और है।

शाम को जब यश कमरे से निकला तो समझ नहीं सका। सोच नहीं पाया—कि कहाँ जाए। कहीं जाए—क्यों जाए ? क्यों ? क्यों ? एक तरल निरर्थकता उसकी चारों ओर मरे साँप की तरह लिपटी हुई है। क्यों यह जीवन ? निष्कारण। जी करता है उड़ता हुआ जाए और सुमि के पल्ले को पकड़कर खींच ले। उसकी भीनी-भीनी महकती गोद में माथा रख दे और कभी नहीं उठे। सुमि के मुस्कुराते होंठों को और एक अजीब से उजले स्नेह में चमकते दाँतों को देखता रहे—देखता रहे—सामने बैठा, पूरी दुनिया से मुक्त, अपनी पिछली कविताओं से मुक्त, पूरा नंगा, त्वचा-हीन। अदृश्य।

पता नहीं, किन-किन सड़कों पर शाम भटकता रहा—छोटी कल्याणी, पुरानी बाज़ार, रामबाग रोड, आमगोला, रामदयालु नगर···पता नहीं

क्यों भटकता रहा। इधर-उधर। मस्तिष्क में कुछ नहीं। शून्य। पूरा अतीत तो व्यर्थ हो ही गया है, यह वर्त्तमान भी त्रासद ढंग से निरर्थक हो उठा है। सुमि ने ऐसा कर दिया ? अपनी दुनिया में लौट गई वह, और जो भी रेत का घर था उसका—उसे तोड़ गई। उसके कमरे की हवा तक लेती गई। अब क्या कर सकता है वह ? यह प्रेम का प्रलाप नहीं, एक सीधी-सी अकेली सच्चाई है।

सुमि उसके भीतर का शून्य भरने आएगी, यह सोचकर वह जी पा रहा है। नहीं तो इस तरह जीने में बड़ा कष्ट है।

सुमि ने कहीं टूटकर समझौता नहीं किया है। वह आएगी और उससे मिलेगी। उसके वर्त्तमान को भर देगी। उसका भविष्य बनेगी। उसके जीवन को केन्द्र देगी। सब कुछ छोड़ देगी वह उसके लिए। छोड़ रही है।

सुमि जब उसका बगलगीर बन जाएगी तो यश कुछ भी कर लेगा, प्रकृति के विरुद्ध भी, अँधेरे ही नहीं, देवताओं के विरुद्ध भी। पर किन असमर्थताओं ने बाँध लिया है अभी उसके प्यार, उसके जीवन, उसकी आत्मा, उसके सब कुछ को !

यश की तबीयत खराब होना चाहती है। और कौन-सा खतरा उठाना बाकी रह गया है ? वह सुमि है जिसके लिए थोड़ा-बहुत आवश्यक है वह। वह सुमि ही है जो सँभाल सकती है उसको।

राजीव ने चाय का प्याला सरका दिया है और इलस्ट्रेटेड वीकली देखने लगे हैं। उनके चेहरे पर गजब की दृढ़ता है और शांति का वह भाव जो पहले पुरुषार्थ के प्रदर्शन पर होता है। कई दिन पहले से प्राची ने सुमि को पिक्चर जाने के लिये कह रखा था। आज अचानक वह आई है और सुमि से जिद्द करने लगी है। प्राची छुट्टी के समाप्त होते ही शिमला चली जाएगी। इसका खयाल कर सुमि उठती है, तैयार होती है और एक बार राजीव की ओर देखकर उसके साथ हो लेती है। राजीव अकबका गए हैं शायद। इसलिए कुछ कह नहीं पाये हैं। सुमि और प्राची

के साथ है उसकी बहन पूर्वा। पूर्वा अपनी चंचलता को रोक नहीं पाती है और वापस जाकर राजीव से आग्रह करने लगती है साथ चलने को। पर राजीव ऐसे मौकों पर कभी साथ नहीं होते। इसीलिये अभी भी अस्वीकार ही कर देते हैं। सुमि ने संतोष की साँस ली है। बिना रिक्शा मँगाये सबको खींचती चली गई है। प्राची ने बार-बार कहा है—'तुम थक जाओगी सुमि···' पर सुमि को फुर्सत नहीं है जबाब देने की। आखिर मोड़ पर रिक्शा मिला है। सिनेमा शुरू होने में अभी देर है। सुमि रिक्शा को यश के होटल की ओर मोड़ती है। प्राची के पूछने पर बताती है कि एक-एक कप कॉफी लेने से ठीक रहेगा।

कॉफी ले चुकने पर सुमि सारी बातें प्राची को बताती है। कहती है कि वे सिनेमा जरूर देख लें, नहीं तो फिर उसकी खोज होने लगेगी। सिनेमा छूटने तक वह वहाँ पहुँच जायेगी। प्राची और पूर्वा सिनेमा की तरफ बढ़ जाती हैं और सुमि कमरा नं० का पताकर यश की ओर।

यश अपना सारा सामान बाँध चुका है। शाम की गाड़ी पकड़ लेना चाहता है। सुमि को आते देखकर वह खिल उठता है···फिर एकाएक खिन्न हो जाता है। यह हरापन कब तक के लिए है? फिर सुमि चली जायेगी, फिर वह अकेला हो जाएगा। ढेर-सी बातें करनी थीं। क्या-क्या कहे वह, अभी तो कुछ भी याद नहीं आ रहा। उसने सुमि के हाथ को धीरे से छुआ है और वक्ष से लगा लिया है। स्वर्गिक शांति मिली है उसको। सुमि का चेहरा किसी अज्ञात, अल्पज्ञात, भय के कारण और पीला हो गया है। मगर यश अभी उसका पीलापन नहीं, उसकी उपस्थिति से भरा हुआ है। अभी उसको सिर्फ सुमि दीख रही है—अपने एकांत समर्पण में। कमरे की हवा किस तरह सुगंधित हो गई है। सारी दुनिया जैसे, उस छोटे कमरे में सिमट आई है।

'सुमि, चलो, साथ नहा लें उसी बार की तरह। कुछ देर भींग लें साथ-साथ फुहारे में।'

सुमि ना नहीं कह पाती। नहाने के बाद तैयार होकर उसे समय का खयाल होता है। वह यश से कल का वादा कर चली आती है। नहीं जानती कि कल कैसे आ पाएगी? यश ने कहा कि वह अधिक-से-अधिक कल ग्यारह बजे तक उसकी राह देखेगा। यदि नहीं आई तो इस तरह घुट-घुट नहीं मरेगा वह और स्टेशन चला जाएगा। पौने बारह बजे उसकी गाड़ी है। सुमि सफाई नहीं देती क्योंकि प्राची उसका इन्तजार कर रही होगी। एक-एक कदम आगे बढ़ते हुए सुमि को देख रहा है वह। किस तरह उसकी जिन्दगी उससे दूर होती जा रही है। मगर क्या करे, यही नियति है उसकी—स्वीकृत नियति।

और फिर ग्यारह बजे दिन तक यश ने सुमि का इन्तजार किया है। सुमि फिर उसी कठघरे पर है—कहीं न हिलती, न डुलती। किस तरह भूख-प्यास और नींद को बाँध रखा है उसने। राजीव किसी विजेता के उन्माद में कहकहे लगा रहे हैं। मगर सुमि अत्यन्त दयनीय हुई जा रही है। उसके दुःख का ही अंत नहीं है, शायद। यश एक पत्र लिखकर, डालकर विदा हो जाना चाहता है। अब कौन-सा इन्तजार करे वह? मगर उसे लिखते डर लग रहा है। क्यों लग रहा है यह डर? पहले तो कभी नहीं लगा था, तब भी नहीं, जब सुमि रूठी होती थी; जब वह आशंकित होती थी, तब भी नहीं जब यश कमजोर होता था, खुद को कोसता होता था। तब फिर यह अब क्यों? कहें-कहें क्यों है, किसका जवाब मिलता है उसे?

कैसे छूट गया सब कुछ उसकी मुट्ठियों से? क्या सचमुच छूट गया? कौन कहे, क्या सचमुच छूट गया? आखिर तंग आकर सुमि ने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया। शायद यह होना ही था। सुमि ने कुछ नहीं बताया घर का हाल, वरना यश यह नहीं सोचता कि इसे ऐसे ही होना था। आखिर वसंत की भी एक अवधि होती है।···लेकिन यह वसंत कभी दुहरेगा नहीं, नहीं न?

यश के सोचने में कोई व्यतिक्रम नहीं आ रहा है। आखिर सुमि चली

गई। उसने पत्र नहीं दिये। एक क्रूर चुप्पी···। वह उसी तरह उसका पद-चाप सुनने को व्याकुल बनता रहा, संवाद सुनने की प्रतीक्षा करता रहा और पढ़ने का नाटक। लेकिन सुमि ने ऐसा क्यों किया, अकारण ? पहले भी उसका भविष्य झूठा था, अब भी है। लेकिन उसने तो अतीत दिया है उसको, उसे क्यों गलत साबित करना चाहती है ? वह, उसका रहस्य जो उसके भीतर है, जो 'वह' है, उसके फोटू। उसके पत्र, उसके रूमाल, उसकी गंध। सुमि, सुमि, सुमि।

सुमि इसे गलत नहीं करेगी। उसकी आँखों में अभी आँसू हैं···, इन्हें गलत नहीं करेगी। उसके कहने से यश उसका घर छोड़कर चला गया। वह करेगी तो वह शहर छोड़कर भी चला जाता। इतने विश्वास को कहाँ रखेगी वह ? कौन-सी जगह होगी वह ?

मगर ये आँसू जो यश की आखों में हैं; उनकी निष्ठा की तह तक कौन जा सकता है ! सुमि कह देती तो वह यह शहर छोड़ देता। वह कह देती तो फिर वह उसे कहीं नहीं देख पाती। पर उसके पास यह भ्रम रहना कितना जरूरी है कि उसे किसी ने प्यार किया था। किसी ने उसके आँसू पोंछे थे, सीने से लगाया था, थपकियाँ दी थीं।

सुमि इसको कैसे तोड़ेगी ? नहीं तोड़ेगी। और नहीं चाहिए उसे, बिलकुल कुछ नहीं। लेकिन कुछ है कि यश को तोड़ रहा है। उसकी इतनी गिड़गिड़ाहट, उसकी घिघियाहट···क्या कुछ भी नहीं ? यह कैसे हुआ कि वह इतनी आसानी से चुप हो गई ? कितना छोटा हो गया है यश ! पति के पास नौकरी है और नौकरी के पैसे हैं। क्या रुपये इतनी बड़ी चीज होते हैं ? यश के लिए तो कभी नहीं रहे। उसको यह पता नहीं था कि सुमि इस तरह सोचती होगी और उसकी पूरी चाहत को कोरी भावुकता कहकर टाल देगी।

सुमि कुछ कह के भी नहीं गई। परीक्षा के बाद वह मुक्त हो जाएगा। उसने यह सोचा था कि उसके बाद लखनऊ ही रहेगा। शायद कभी उधर गई सुमि तो दिख जाएगी। या यहीं आकर देख जाएगा – कालिज जाते

या किसी से बतियाते। पर लगता है कि नहीं, उसके भीतर से निकलकर जो खारा समुद्र उनके बीच पसरने लगा है, वह उसे उसके गाँव को धकेल देगा—जहाँ धूल, उपालम्भ, उदास-लम्बे नहीं कटते दिन उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—उदास दोपहर की सड़क, एक भटकता विलाप···एक क्रमिक आत्महत्या, एक अजीवन। आखिर क्यों रहे वहाँ, किसलिये ? अब क्या होना है ? सब कुछ कितनी जल्दी झुठल जाता है ? कहाँ गईं वे कविताएँ, जिनको पढ़कर अक्सर उसे आत्मतोष होता था ! Drayton का एक सॉनिट वह अक्सर गुनगुनाया करता था।

'Since there is no help, come, let us kiss and, part.

क्या यही सच होने जा रहा है ? सुमि यही चाहती है तो यही होगा। मगर उसके बगैर जिन्दा नहीं रह सकेगा। उसे सुमि लिखते डर लग रहा है। क्या अभी भी लिख सकता है यह ?

और यश अपने मन को पूरी तरह बाँधकर एक पत्र लिखता है। पत्र, जिसमें वह सुमि नहीं लिख पाता। पत्र को वह स्टेशन पर ही आर० एम० एस० में डाल देगा और चला जाएगा अपने किसी अन्तहीन अँधेरे में। यश की आँखों में आँसू हैं और हाथ में कलम। वह लिख रहा है और रो रहा है। कभी-कभी वह लिखे कि रोये—यही समझ नहीं पाता। पहले तो 'सम्बोधनातीत' लिखते ही वह फूट पड़ा है। चाहता है कि काटकर सुमि लिख दे, पर किसके लिये ? शाम तक—उसके भी बाद तक ठहर गया है वह, पर सुमि कहीं नहीं दीखी। सुमि जब गई थी दिन के साढ़े पाँच बजे थे अब तक दूसरी रात के १० बज चुके हैं। साढ़े नौ बज गये घूमकर यहाँ पहुँचते-पहुँचते। आकर कपड़े खोले हैं, नहाया है, खाना मँगाया है और उस सहज आलसी की स्फूर्ति का क्या मिशाल कि लिखने भी बैठ गया है। हालाँकि इसके पहले तक, यानी यह नीला कागज सामने खोलकर रखने और अपनी कलम को नंगी कर इस पर रखने के पहले तक यह नहीं जानता था कि उसे लिखना है। लेकिन अभी एक मैले बादामी रूमाल को मुट्ठी में कसे इस तरह लिखने को झुका हुआ है, जैसे यही होना था।

यही और ऐसे ही। आज की तिथि में एक बेगाने शहर के उदास कमरे में लेटे-लेटे एक युवक को एक नीले कागज पर इसी तरह अपने भविष्य का नक्शा बनाना था। भविष्य का वह नक्शा जो उसके अतीत के टूटे-ढहे खम्भों, भग्न बुर्जियों और प्रतिमाओं और जमीन पर बिछी दीवालों से तनिक भी भिन्न नहीं होने जा रहा।

'वह वीरान नगर आबाद हो गया है। मेरे भीतर का। फिर। दूध वाले मटके लिए चलने लगे हैं, रिक्शे इसके ओर-छोर को जोड़ने लगे हैं, माँएँ बच्चों के साथ उठने लगी हैं, स्कूली बच्चे कवायद करने लगे हैं, औरतें इतर की तरह महकने लगी हैं : पूरा नगर—मेरे भीतर का पूरा मृत-नगर एक बार फिर जीवन में मुँह बाने लगा है। इसके निर्जीव मकान नाचने लगे हैं। इसकी सोई हुई सड़कें शाखों की तरह दीखने लगी हैं। एक बार फिर राख की पर्तों को हटाकर पुराना जंगल उगने लगा है।

पर फिर वही होगा। यह जाग रहा नगर फिर अँधेरे, अन्तहीन दुःस्वप्न में खो जाएगा। उठता हुआ। जंगल फिर धूल के नीचे दब जाएगा। फिर उसकी उदासी बहेगी—साँय-साँय हवा रुकी रहेगी। फिर वही होगा। स्थगित मृत्यु। जीवन को एक बार फिर जानकर एक धारा-वाहिक मृत्यु। इसलिये···

वह पत्र नहीं है जिसकी ओर मुँह किए—अपने पीछे लौटना चाहते पाँवों को चलाते—यहाँ रुका रहा। तुमने लिखा नहीं। झूठ कहा। या मिला नहीं। जो भी हो। वह यहाँ नहीं है। वह लिखावट यहाँ नहीं है; जिसके अक्षरों की संधों के बीच झाँककर अपनी सूरत देखना चाहता था। ठीक है। वह भी ठीक है। अब वयस्क हो गया हूँ। कुछ भी बर्दाश्त कर सकता हूँ।

कल-परसों गाँव जा रहा हूँ। वहाँ से लिखूँगा कि नहीं, नहीं कह सकता। आकर तुमने एक बार मिलकर जो कृतार्थ किया। उसके लिए धन्यवाद।

दरअसल इसी उम्र में मुझे अपनी उत्तेजना की, अपने स्वप्नों और संकल्पों की—निस्सारता समझ में आ गई है। अच्छा ही हुआ। कुछ भी नहीं होता – बस वही 'सधा हुआ जीवन-क्रम।' चाहे हीन क्रम के भीतर मैं कितना ही परेशान होऊँ—बेचैन, पागल-होता। मेरे चारों ओर घूमता हुआ एक बहुत बड़ा चक्र। पर अपनी धुरी पर। मुझसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन मेरी इस गति—चाहे बेमानी की धुरी ? कभी भ्रम हुआ था। वह भोला भ्रम फिर जगे; इसके पहले उसे सुला देना अच्छा।

कभी तुमने पत्र लिखने से मना किया था। तब मर्माहत हुआ था। सारी दुनिया अचानक अँधेरी हो गई थी—बेरंग और मनहूस। आज इस पत्र को लिखते हुए छिल रहा हूँ। आखिर बार-बार निष्कवच—नहीं निश्चर्म हो जाने से फायदा ? तुम्हारे कशाघात मैं जानता हूँ। तुम्हारे नहीं हैं, मेरी नियति के हैं। 'यही है मेरी कमाई-धमाई···।'

संगम प्रकाशन
१२४ शहरारावाग, इलाहाबाद